विनय

अलवर-अंक

प्रधान सम्पादक

डॉ० जयसिंह नीरज

१९६९

प्रकाशक

राजर्षि कॉलेज, अलवर

संरक्षक : श्री विशन सिन्हा

प्रबन्ध सम्पादक : श्री पुरुषोत्तम सिन्हा

प्रधान सम्पादक : डॉ० जयसिंह नीरज

सहयोगी सम्पादक : श्री जुगमन्दिर तायल
श्री ओमप्रकाश दर्शन
श्री शादीलाल गुप्त
श्री नारायणवीर सिंह
श्री शिखरचन्द जैन

प्रकाशक : राजर्षि कॉलेज, अलवर

प्रकाशन तिथि : जनवरी १९६९

आवरण : नीलकंठ-मन्दिर

मुद्रक : शर्मा ब्रदर्स इलैक्ट्रोमैटिक प्रेस, अलवर

मूल्य : १५.०० रुपया

प्राक्कथन

विनय के अलवर अंक के संबंध में दो शब्द लिखते हुए मुझे बहुत हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस अंक में अलवर राज्य के भूतपूर्व और आधुनिक गौरव की एक बहुत सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गयी है। इतिहास, साहित्य, कला और संस्कृति तथा राजनैतिक, आर्थिक प्रतिवेदन, इन तीन भागों के अन्तर्गत लेखकों ने बड़े सुन्दर ढंग से सहज, सरल विश्लेषण प्रस्तुत किया है। छात्रों के लिए और सामान्य शिक्षित जनता के लिए तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा ही, साथ ही मेरा खयाल है कि इस छोटे से फिर भी निरन्तर प्रगतिशील आज़ादी से पूर्व के राज्य और आज़ादी के बाद के जिले के सांस्कृतिक इतिहास के गंभीर विद्यार्थियों एवं विद्वानों को भी इसमें बहुत सी उपयोगी सामग्री प्राप्त होगी।

यह ग्रंथ किसी पत्रिका का केवल अंक ही नहीं वरन् अपने आप में एक साहित्यिक कृति है। मुझे खुशी है कि इसकी कुछ प्रतियाँ पुस्तक के रूप में भी छपवाई गयी हैं। इस प्रशंसनीय प्रयास के लिए सभी लेखकगण और विशेषकर इस अंक के प्रधान सम्पादक डॉ० जयसिंह नीरज बधाई के पात्र हैं। आशा की जा सकती है कि इस अंक से प्रेरणा लेकर राजस्थान के अन्य महाविद्यालय अपने अपने जिले या अंचलों के संबंध में इसी प्रकार के कॉलेज पत्रिकाओं के अंक प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे।

बिशन सिन्हा

सम्पादकीय

अलवर-अंक की योजना हम पिछले कई वर्षों से बना रहे थे, किन्तु हमें उसे कार्यान्वित करने का अवसर प्राप्त न हुआ। अब यह कार्य राजर्षि कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'विनय' के माध्यम से परिपूर्ण हो पाया है, जिसके लिए हम प्रो० पुरुषोत्तम सिन्हा के आभारी हैं, जिन्होंने इसके प्रकाशन का ही प्रबंध नही किया; वरन् समय-समय पर हमें इसकी तैयारी हेतु प्रोत्साहित भी करते रहे हैं।

देशान्तर का ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व प्रत्येक अध्येयता के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह सर्व प्रथम अपने गांव, अपनी तहसील और अपने जिले के परिवेश को जाने। इसी भावना को लेकर हमने अलवर-अंक के प्रकाशन को हाथ में लिया।

महाभारत काल से ही अलवर जिले का अचल राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। विराट एवं मत्स्य प्रदेश का महाभारत कालीन इतिहास किसी से छिपा नही है। पठान, मुगल एवं राजपूतों के शासन काल मे अलवर दिल्ली के द्वार पर होने के कारण अनेक हलचलों एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का केन्द्र रहा है।

इस ग्रंथ को हमने तीन भागों मे विभाजित कर प्रस्तुत किया है। प्रथम भाग 'इतिहास का दर्द' अलवर की ऐतिहासिक धरोहर को अभिव्यक्त करता है। दूसरे भाग में इस अंचल के साहित्य, कला और संस्कृति का विवेचन किया गया है और तीसरा भाग है 'राजनैतिक, आर्थिक प्रतिवेदन' जिसमें इस क्षेत्र की राजनीति एवं अर्थव्यवस्था का व्यौरा देने का प्रयत्न किया गया है। निश्चय ही इतना कुछ करने के उपरान्त भी यह कार्य अपने आप में अधूरा सा लगता है, पर जो कुछ आपके सम्मुख है वह सामान्य जानकारी के लिए उपयोगी एवं शोधकर्त्ताओं के लिए सहायक होगा।

इस ग्रथ के लिए बार-बार निवेदन करने पर भी जिन लेखको ने सहयोग नही दिया, उनकी जड़ता के प्रति हम नतशिर है तथा जिन लेखको के लेखों को पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया गया है; उनके परिश्रम के प्रति हम आभारी है। प्रथम और द्वितीय भाग का प्रस्तुतीकरण डा. नीरज एवं तृतीय का श्री तायल ने अन्य सहयोगी सम्पादकों के सहयोग से किया है। सामग्री जुटाने में श्री हरिशंकर गोयल एडवोकेट ने हमें विशेष सहयोग दिया, इसलिए हम उनके प्रति आभार प्रकट करते है। शर्मा ब्रदर्स इलैक्ट्रोमैटिक प्रेस ने जिस तत्परता एवं सफाई से इसे मुद्रित किया है, इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

और अन्त में हम प्रधानाचार्य महोदय श्री विशन सिन्हा के आभारी है जिनके संरक्षण में ऐसा कार्य हो पाया। यदि आप इस ग्रंथ से तनिक भी लाभान्वित हो पाये तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

जयसिंह नीरज

सरक्षक प्रधानाचार्य श्री बिशन सिन्हा

सम्पादक-मण्डल
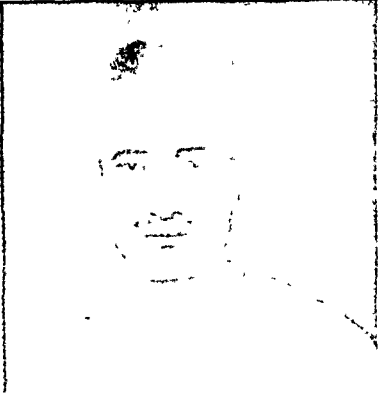
डा. जयसिंह नीरज

प्रो. जुगमन्दिर तायल

प्रो. ओमप्रकाश दर्शन

प्रो. पुरुषोत्तम सिन्हा

प्रो. शादीलाल गुप्ता

श्री नारायणवीर सिंह

श्री शिखरचन्द जैन

अनुक्रम

राजनैतिक, आर्थिक प्रतिवेदन

परिशिष्ट

इतिहास का दर्द

अलवर

१. आधुनिक प्रमुख नगर और कस्बे

२. प्राचीन नगर

41222
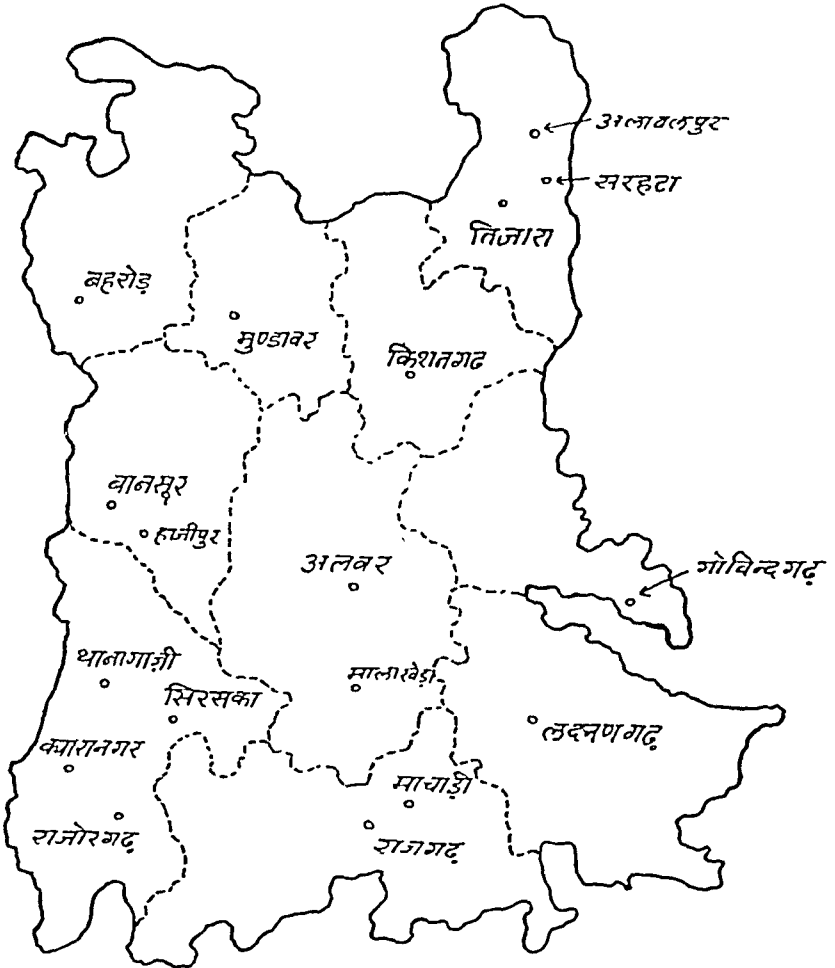
भारत की पेरिस नगरी जयपुर। सवाई राजा जयसिंह की कलात्मक अभिव्यक्ति। चौड़ी सड़कें और सीधे रास्ते। गुलाबी नगर और उसकी प्राचीन दीवारों को तोड़कर दूर-दूर तक फैले हुए उपनगर, पर हमें जयपुर का सौंदर्य निरखने का समय नहीं है। हम बढ़ रहे हैं अम्बर की ओर। भारमल, मानसिंह और मिर्जाराजा जयसिंह की राजधानी की ओर। बिहारी की नायिकाएँ सरोवर मे मुँह धो रही हैं। मध्यकालीन किला सरोवर मे अपनी परछाइयाँ देखकर अतीत को गुनगुना रहा है, पर अतीत को देखने की किसी को फुर्सत नहीं है। सब भागे जा रहे हैं वर्तमान को भोगने के लिए, आखिरी बूंद तक।

समय की गति के साथ-साथ हम बैराठ अर्थात् विराट नगरी तक आ गये हैं। विराट राजा का वैभव कभी इन पहाड़ियो के बीच फैला पड़ा होगा। पाचो पाण्डवो ने द्रोपदी के साथ अज्ञातवास यहीं कहीं बिताया होगा। ब्रहृनला बनकर अर्जुन और दासी बनकर द्रोपदी यहीं कहीं रही होगी। भीम की कथाएँ पूरे अंचल मे आज भी बड़े चाव से कही जाती हैं। बौद्ध-धर्म की गाथाएँ अशोक के शिलालेख एव स्तभो के माध्यम से यहा गुंजरित हुई हैं। यही है वह विराटनगर जो राजस्थानी चित्रण के प्रारम्भिक स्वरूप को अपने भित्ति चित्रो मे सजोए हुए है।

हम ठीक स्थान पर आ पहुँचे हैं। यही से अनूर, अलोर, उलवर अर्थात् अलवर ज़िले की सीमा-रेखा प्रारम्भ हो जाती है। एक खेत जयपुर में तो दूसरा अलवर मे। कभी राजाओ के समय मे हदबदी के लिए यहा युद्ध छिड जाते थे, इसलिए चौकियाँ और नाके अपनी अतीत गाथा को दोहराने के लिए आज भी जर्जरित हालत मे खड़े हुए हैं।

अरावली पहाड़ की उपत्यकाएँ वैराठ से ही प्रारम्भ हो जाती है तथा थानागाजी और सरिस्का के बीच मे अपनी चरम-सीमा पर पहुँच जाती है। टेढ़ी-मेढ़ी सर्पिल सड़क बलखाती हुई इन घाटियों से गुजर जाती है। बरसात होते ही धौक-वनी गुलजार हो उठती है। नदी, नाले और पहाडी झरने मुखर हो उठते है। पशु-पक्षी-विहार सरिस्का के वन्य-जन्तु आत्मविभोर होकर विहार को स्वच्छन्द होकर निकल पडते है। इस गहन वन में महाराजा जयसिंह जी द्वारा निर्माणित सरिस्का की कोठी अथाह जंगली सागर में जहाज के समान तैरती हुई प्रतीत होती है। शिकार और महफिले। महफिले और शिकार, सभी कुछ होता था यहां पर, पर यह सब बाद की बाते हैं।

हां तो गहन जगल को चीरते हुए हम बारा की नदी रूपारेल को पार कर आगे बढ़ चुके है। अलवर का प्राचीन दुर्ग दिखाई पड़ रहा है। जयपल्टन, राजपूत-होस्टल, मालाखेड़ा दरवाजा……पर वह दरवाजा है कहां ? कही नही। अब कहीं नही है। पुराने शहर के चारों ओर का कोट और तथाकथित दरवाजे अब केवल यादगार रह गये हैं। शहर बिफ़र कर फैल गया है। प्राचीन प्राचीर सभी शहरों की भांति हटादी गयी है। बड़े-बड़े दरवाजे जैसे मालाखेड़ा दरवाजा, लाल दरवाजा आदि तोड़ दिए गए हैं पर शहर के बीच त्रिपोलिया, दिल्ली दरवाजा आदि खड़े हुए आते-जाते राहगीरों को अपनी अतीत गाथा कह रहे हैं।

दिल्ली ! सदा सुहागिन दिल्ली ! ! ग्यारह बार बनी और उजड़ी अठ्ठारह स्वामियों को तलाक देने वाली दिल्ली ! ! ! हां केवल १०० ही तो मील दूर है यहां से।

महाभारत से लेकर आज तक का ऐतिहासिक दर्द छिपाए पडा है अलवर। पीढ़ियां आई और गयी अलवर ने भी अनेक रूप बदले और बदल रहा है, पर अलवर है अ 'लवर'।

भूगोल और सरसों की बोरी

पृथ्वी गोल है, पर अलवर जिले का मानचित्र सरसों की भरी हुई बोरी के समान अपनी अकड़ दिखा रहा है। यहां के सरसो पैदा करने वाले लोग और खासतौर से सरसों के व्यापारी जब अकड़ दिखा सकते है तो भला अलवर का मानचित्र भी क्यों पीछे रहेगा ?

राजस्थान प्रान्त के उत्तरी पूर्वी भाग में २७·५ से २८·१० अक्षांश तथा ७६·१० से ७७·१५ देशान्तर तक अलवर जिला लगभग उत्तर से दक्षिण मे ८० मील और पूर्व मे पश्चिम में ६० मील की दूरी तक फैला हुआ है। इस भाग का क्षेत्रफल ३२१७ वर्ग मील है। भौगोलिक दृष्टि से अलवर जिला अत्यधिक महत्व का है। उत्तर में हरियाणा, पूर्व में भरतपुर, पश्चिम और दक्षिण में जयपुर की सीमाओं को छूता हुआ यह जिला अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण सुविधा के लिए तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। अरावली पर्वत की श्रेणियाँ इसे तीन प्राकृतिक भागों में विभक्त कर देती है। १. मध्य पर्वतीय भाग २. पूर्वी पठार ३. पश्चिमी रेतीला भाग।

१ मध्यपर्वतीय भाग—अर्बुदाचल अर्थात् अरावली भारतवर्ष के सबसे पुराने पर्वतो मे से है। अलवर जिला भारत के दक्षिणी पठार के उत्तरी कौने पर स्थित है। अरावली पर्वत की श्रेणियाँ उत्तर पूर्वी कौने से दक्षिण पश्चिम की ओर फैली हुई हैं। थानागाजी, राजगढ, अलवर तहसीलो मे इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं तथा उत्तर पूर्व की ओर किशनगढ तिजारा तहसीलो मे ये शाखाएँ सकडी एव नीची होती चली गयी हैं। कडी रेवेदार चट्टानो से बनी पवतमालाएँ गहन जगलो से आच्छादित हैं, जिनमे सर्वप्रकार के प्राकृतिक उपकरण उपलब्ध होते हैं। पहाडी ढलानो पर धौक छाए हुए हैं, जो गर्मिया मे नग्न खडे रहते हैं और वरसाती फुहार लगते ही हरिया जाते हैं। भरी गर्मी मे तो पलाश की घाटियाँ लाल हो उठती हैं। इस पर्वतीय भाग का दक्षिणी अश घास तथा जगली पेड-पौधो से जितना ही ढका हुआ है उत्तरी भाग उतना ही शुष्क और नगा है। बढती हुई जनसख्या के कारण अब धीरे-धीरे इन पर्वतीय स्थानो मे खेती के लिए जमीन तोडी जा रही है।

२ पूर्वी पठार—पूर्वी पठार दक्षिणी पठार का ही एक भाग है जिसका ढाल पूर्व की ओर है। इसमे प्रमुखतया लक्ष्मणगढ और रामगढ तहसीलें आती हैं। यहा चिक्नौट और मटियार मिट्टी पाई जाती है जो उपज के लिए विशेष महत्व की है। नदी और नाले काप नामक उपजाऊ मिट्टी लाकर एकत्रित करते रहते हैं। बाधो मे चिक्नौट मिट्टी पाई जाती है।

३ पश्चिमी रेतीला भाग—इस भाग मे वहरोड, बानसूर तथा मुण्डावर तहसीलो का पश्चिमी भाग है। यह एक विस्तृत मैदान है जिसमे अरावली पर्वत श्रेणी की पृथक्-पृथक् छोटी पहाडिया है। लगभग सारे भाग मे भूड पाई जाती है जो हवा के साथ इधर-उधर उडती रहती है। यह भाग जयपुर के शेखावाटी के भाग से मिलता-जुलता है। स्थान-स्थान पर बिजली की व्यवस्था होने के कारण अब सिंचाई की व्यवस्था होने लगी है, जिससे पैदावार बढने लगी है।

अलवर जिला राजस्थान के अन्य जिलो से अपनी प्रकृति के कारण अलग ही व्यक्तित्व रखता है। अलवर को देखकर कोई नही कह सकता कि यह राजस्थान है।

राजस्थान मे कोटा बूदी को छोडकर यहा वर्षा भी अन्य जिलो से अधिक होती है किन्तु अधिकतर नदिया वरसाती हैं, जो वर्षा होते ही हहरा उठती हैं। जिले की सबसे बडी नदी साहबी है जो वर्षा-ऋतु मे अपना विकराल रूप धारण कर लेती है, किन्तु गर्मियो मे स्थान-स्थान पर सूख जाती है। जिले की दूसरी किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नदी रूपारेल है, जो थानागाजी के बीहड पहाडों से निकलकर अलवर, रामगढ, लक्ष्मणगढ तहसीलो मे बहती हुई भरतपुर जिले मे चली जाती है।

अलवर का तीसरा भाग पहाडी होने के कारण यहा सिंचाई-हेतु बडे-छोटे अनेक बाध हैं जिनमे सीलीसेड, जयसमद, मगलसर, हरसोरा आदि बाध अत्यधिक महत्व के हैं।

पिछली जनगणना के आधार पर यहा की जनसख्या लगभग १०९०२६ है, जो नौ तहसीलों में फैली हुई है। अलवर बीच की तहसील है। जिसके चारो ओर आठ अन्य तहसीलें क्रमश

राजगढ़, लक्ष्मणगढ़, किशनगढ़, तिजारा, मुण्डावर, बहरोड, बानसूर तथा थानागाजी उसे घेरे हुए हैं।

अर्बुदाचल की पहाड़ियाँ, राजस्थान का रेगिस्तान और उत्तर-प्रदेश की सी समतल भूमि, सभी रस है अलवर के भूगोल में। गेहूँ, जौ, मक्का, बाजरा, ज्वार आदि पैदा करने वाले किसान सरसों की बोरी पर ज्यादा विश्वास करते हैं। कारण यही है कि अलवर का मानचित्र भी तो सरसों की बोरी की तरह अकड़ा खड़ा है।

जाति और जातियाँ : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

आज के इस बौद्धिक-युग में जाति-पाँति की चर्चा करना पिछड़ापन लगता है, किन्तु ऐतिहासिक तथा सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से भारतवर्ष की जातियों-उपजातियों और विभिन्न महत्वपूर्ण कबीलों का आज भी महत्व कम नहीं हुआ है। यह बात दूसरी है कि प्रजातंत्रीय-युग मे भी जाति के आधार पर वोट लेकर यहाँ सरकार खड़ी होती है और शासन करती हैं।

अलवर जिले की लगभग ११ लाख-की जनसंख्या भी अनेक जातियों एवं उपजातियों में विभक्त है; जिसका विस्तार से समाज शास्त्रीय अध्ययन होने की विशेष आवश्यकता है। स्थानाभाव के कारण यहाँ पर केवल सामान्य जानकारी ही दी जा सकती है। वैसे तो अलवर के इस छोटे से जिले में शताधिक जातियाँ और उपजातियाँ है, किन्तु प्रमुख जातियों मे राजपूत, मेव, मीणा, अहीर, बनियाँ, ब्राह्मण, जैन, माली, हरिजन आदि प्रमुख रूप से व्याप्त है।

राजपूत—

अलवर जिले मे मध्यकाल से ही राजपूत जाति यत्र-तत्र बिखरी हुई है। शासक जाति होने के कारण इसका प्रभुत्व स्वतंत्रता के पूर्व तक रहा है, किन्तु अपने आलस्य, निरक्षरता तथा मद्यपान के कारण इसकी दशा धीरे-धीरे गिरने लगी। अब समयानुसार धीरे-धीरे शिक्षा की प्रगति एवं आर्थिक समुन्नति के कारण इसमें नयी चेतना आने लगी है।

राजपूत शब्द बहुत पुराना नहीं है। मध्यकाल में राजपुत्र शब्द का प्रचलन होने के कारण यह शब्द क्षत्रियों से विशेषत: जुड़ गया। राजपूताना प्रान्त के नामकरण की संभावना भी इससे आंकी जा सकती है। जिले में प्रमुखतया राजपूतों की तीन खांपे है—१. बड़गूजर २. चौहान और ३. कुशवाह। वैसे राठौर, भाटी, जादू, गौड़ आदि भी जहाँ-तहाँ हैं।

१. बड़गूजर—मध्यकालीन परिभाषा के अनुसार राजपूत जाति का अलवर से संबंध ९वीं शताब्दी से जोड़ा जा सकता है। इस दृष्टि से गुर्जरप्रतिहार प्रथम राजपूत है, जो इस प्रदेश में प्रभावशाली रहे है। कन्नौज के राजाओं की अधीनता में गुर्जरों का प्रभाव मत्स्य (माचैड़ी) व्याघ्रराज (राजगढ़) पारानगर (राजोरगढ़) तथा देवती आदि स्थानों में ९वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक रहा। देवता की भाँति पूजा जाने वाला राजा बाघराज राजगढ़ का महत्वपूर्ण एवं न्यायप्रिय राजा था। सावट का पुत्र मथनदेव जिसने नीलकंठ के

मन्दिर का निर्माण करवाया था इसी जाति का था। १५वी शताब्दी मे आसलदेव के पुत्र गोगादेव प्रसिद्ध एव पराक्रमी राजा हुए हैं। इनकी राजधानी माचैडी थी, जो उस समय धन-धान से परिपूर्ण थी। देवकुण्ड बडगूजर ने देवती नामक नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया और गुर्जर-प्रतिहारों मे बडगूजर शाखा विशेष को महत्वशाली बनाया।

१६वी शताब्दी के बाद राजा ईश्वरमल ने अकबर की आधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया इसलिए अकबर ने बडगूजरो की प्रभुसत्ता को तहस-नहस कर दिया और वे बेचारे अपने वैभवशाली राज्यो के लिए मर मिटे। जो बचे वे उत्तर की ओर बढ आये। तसीग आज भी बडगूजरो का महत्वपूर्ण ठिकाना माना जाता है। उसके आसपास के अनेक ग्राम भी बडगूजरो के हैं। हो सकता है पहाडी प्रदेश मे भैंसे पालकर गुजारा करने वाले गूजरो का सबध भी गुजर-प्रतिहारो से हो, पर यह अलग शोध का विषय है।

२ चौहान—मुण्डावर, बहरोड और बानसूर तहसीलो मे चौहान राजपूतो के अनेक गाव हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से चौहान राजपूतो का भी महत्व कम नही है। कहते है कि ५वी शताब्दी मे अलवर जिले के पश्चिमोत्तरीय भाग पर मोरध्वज चौहान का राज्य था। यह ईश्वर चौहान का बेटा और राजा उमादत्त का छोटा भाई था। इसकी राजधानी साहबी नदी के तट पर मोरध्वज नगरी थी। इस प्राचीन बस्ती के चिन्ह नदी के कटाव पर अब भी पाए जाते हैं। अलवर जिले मे चौहानो का प्रताप पृथ्वीराज चौहान के समय से अधिक रहा है। १३वी शताब्दी से पूव अजमेर के राजा वीसलदेव चौहान के अलवर के निकुम्भो को अपने अधीन कर लिया और सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने निकुम्भो से अलवर छीनकर अपने वशवालो के अधिकार मे दे दिया। पृथ्वीराज के समय मे अजमेर से लेकर दिल्ली तक चौहानो का आतक था और अलवर जिला भी इसी आतक से प्रभावित था।

सम्राट पृथ्वीराज के वशज राव सक्ट के वशज इस जिले के चौहान हैं। १४वी शताब्दी के आरम्भ मे मदनसिंह चौहान ने मदनपुर (मुण्डावर) गाँव बसाया। इन्ही के वशज रावहासा के पुत्र राव भामा बडे भक्त एव कट्टर हिन्दू थे। बादशाह फीरोजशाह तुगलक की सेना ने मुण्डावर पर चढाई करके राव भामा को जीवित पकड लिया और अन्त मे बादशाह ने इनको बलात् मुसलमान बनाकर मुण्डावर प्रान्त लौटा दिया, पर यहाँ पहुँच कर इन्होने हिन्दू-धर्म ही ग्रहण किया। यद्यपि फिर पकडे जाकर मारे गये पर विधर्मी होना स्वीकार न किया। इनका बेटा चाँद जो छोटी अवस्था मे था, मुसलमान बनाकर मुल्लाओ की देख-रेख मे रखा गया।

अब चाद के चाचा राजदेव ने मुण्डावर छोडकर सन् १४६४ मे नीमराना को अपनी राजधानी बनाया, जिसके वशज वतमान नीमराना के राजा, ततारपुर और पेहल के ठाकुर है। मुण्डावर और नीमराना के चौहानो ने मामाड, कूल और रामपुर मे अपने ठिकाने बनाये, किन्तु कुशवाह वशीय महाराजा उदयकरण के पुत्र राव बालाजी के वशजो (शेखावतो) ने चौहानो को कूल और मामोड आदि स्थानो पर टिकने नही दिया। तेजसी के पुत्र मानसिंह और शक्तिसिंह

ने कूल के चौहान राजा को मार कर अपना अधिकार कर लिया और मानसिंह के पुत्र नारायण दास ने नारायणपुर बसाया। चौहान ठाकुर अधिकतर खेती-बाड़ी करते हैं और पृथ्वीराज चौहान की महत्ता को गर्व से आज भी दोहराते रहते हैं।

३. कुशवाह—कुशवाह या कछवाये राजपूतों का जयपुर और अलवर ने विशेष संबंध रहा है। पूरे राजपूताने में उपर्युक्त दो स्टेटें कुशवाहों की थी। सूर्यवंशी कुश के वंशज कछवाये प्रमुखतया यहां पर भी तीन खांपों में विभाजित हैं। १. नरुका २. राजावत और ३. शेखावत। लक्ष्मणगढ़ और राजगढ़ के पूर्वी भाग में नरुकों के ग्राम अधिक हैं इसलिए इसका नाम नरुखंड भी कहलाता है। थानागाजी में राजावतों का और बानसूर मे शेखावतो का आधिक्य है।

भगवान रामचन्द्रजी के उपरान्त महाराजा कुश ने अयोध्या को त्याग कर विन्ध्याचल की तलहटी मे कुशावती नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। जयपुर तथा अलवर राज्यवंश के पूर्वज कुशवाहवंशीय राजा सोढदेवजी ने १२वी शताब्दी में ग्वालियर से आकर बड़गूजरों से दौसा नगर लिया। इनके पुत्र दूलहरायजी ने मीणा जाति के राजाओं को हटाकर खोह पर अधिकार किया तथा इनके पुत्र काकिलदेवजी ने मीणाओं से छीन कर अम्बर (आमेर) को अपनी राजधानी बनाया। काकिलदेवजी के पुत्र अलघुरायजी ने मैड़-बैराठ यादवों से छीनकर इधर के पूर्वी पर्वतों तक अपना अधिकार कर लिया।

इस प्रकार कुशवाहवंश का प्रवेश अलवर जिले में १३वी शताब्दी से मानना चाहिए। जयपुर से संबंधित अधिकतर राजपूत खांप राजावत के हैं। थानागाजी तहसील में राजावतों के होने का भी यही कारण है कि वे जयपुर से जुड़े हुए रहे हैं। इसी तहसील में आमेर नरेश भगवानदास ने अपने नाम पर भानुगढ़ नगर बसाया, जिसको उनके पुत्र माधवसिंह ने अलवर से पृथक् राज्य बनाकर भानुगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। इनके पीछे चतरशाल, अजबसिंह, हरीसिंह, काबुलीसिंह और जसवंतसिंह भानगढ़ के राजा हुए। आपसी झगड़ों के कारण १८वी शताब्दी के अन्त में सवाई जयसिंह ने जसवन्तसिंह को हराकर भानगढ़ को उजड़ कर दिया। वहां के राजावत राजपूत आसपास के गाँवों में जाकर बस गए जिनमें आगर, नांगल, नरहट (नरैठ) आदि ग्राम प्रसिद्ध हैं। राजावत राजपूत अधिकतर खेतीवाड़ी करते है तथा कुछ एक शिक्षित है जो राजकीय नौकरियां भी करते हैं।

जैसा कि पूर्व कह चुके है कि कुशवाह-वंशीय राजा उदयकरण के पुत्र राव बालाजी ने बानसूर तहसील में चौहानों को नही टिकने दिया और अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। शेखावाटी के शेखावत राजपूत १५वी और १६वीं शताब्दी में इधर अत्यधिक प्रभावशाली रहे। इस वंश के राव सूजाजी ने बसई और जगमालजी ने हाजीपुर, हमीरपुर में अपना ठिकाना जमाया। राव सूजाजी के पुत्र लूणकरणजी, रायसालजी, चाँदाजी और भैरूँजी बड़े प्रतापी हुए

हैं। क्रमश रायमालजी के वशज कौयल और ईंदगाडा, चाँदाजी के बसई, गिरुडी और बिसालू तथा भैरूँजी के हाजीपुर, हमीरपुर, खेडा, श्यामपुरा आदि ग्रामों मे हैं। सम्राट अकबर ने हाजीपुर मे स्यामलजी के वशज राव दूदाजी के घर एक दिन अजमेर को जाते हुए ठहरकर मेहमानी ली थी। तेजसिह के पुत्र मानसिह और शक्तिसिह ने कूल के चौहान राजा को मारकर अपना अधिकार कर लिया। जैसाकि पूर्व कहा जा चुका है कि मानसिह के पुत्र नारायणदास ने नारायणपुर बसाया। नारायणसिह के पुत्र बलभद्रसिह बडे दानी और वीर पुरुष थे। इनके समय के अनेक दान-पत्र प्राप्त होते है। हो सकता है नारायणपुर के आस-पास के इलाके का नाम 'वाल' इन्ही के नाम पर पडा होगा। शेखावत राजपूत भी अन्य राजपूतो की भाति खेती-बाडी करते हैं। शिक्षा के प्रति भी धीरे-धीरे इन लोगो मे रुझान आती जा रही है।

अलवर की दृष्टि से कुशवाह वश मे नरूका राजपूतो का विशेष महत्व रहा है, क्योकि पिछले दो सौ वर्षों से सारे शासन प्रशासन का कार्यभार इसी शाखा पर रहा है। कुशवाह-वश मे नरूजी परम प्रतापी राजा हो गए है, जिनके कारण कुशवाहो मे नरूका खाप पृथक् से अपना *विशेष महत्व रखती है। राव नरूजी के पुत्र लालाजी (सन् १४८५) से लालावत* और दासाजी से दासावत उपशाखा का विकास हुआ। लालावत उपशाखा मे कल्याणसिहजी बडे वीर और प्रतापी राजा हुए हैं। इनके वशज कामा-खोहरी, खोहरा, पाडा, पलवा, पाई, माचॅडी तथा बीजवाड आदि गावो मे बसे हुए है। दासावत शाखा मे अलवर राज्य के जावली, गढी आदि गाँव प्रमुख स्थान रखते हैं। राजगढ तथा लक्ष्मणगढ तहसील नरूखड के नाम से विख्यात है। इसका प्रमुख कारण यही है कि वहाँ के छोटे-छोटे गाँवो मे नरूवशी राजपूत छोटी छोटी जागीरो पर स्थापित थे। राव प्रतापसिहजी से लेकर तेजसिहजी तक के दोसौ वर्षीय राज्यकाल मे इन नरूवशी राजपूतो का यहाँ महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। यही कारण है कि नरूको की स्टेट होने के कारण नरूका राजपूतो को अलवर जिले मे छोटी-बडी बहुत सी जागीरें मिली हुई थी। इन जागीरो के कारण तथा सत्ता के कारण यह राजपूत खाप आर्थिक एव शैक्षणिक दृष्टि से पिछडी हुई रही है। छोटे-छोटे जागीरदार जागीर समाप्ति के उपरान्त खेती-बाडी मे लगकर अपना जीवन-व्यापन कर रहे है। खेद यही है कि नरूखड के राजपूतो मे शिक्षा का अब भी अभाव है।

सक्षेप मे अलवर जिले मे राजपूतो का मध्यकाल से ही राजनैतिक उथल-पुथल मे विशेष हाथ रहा है। ये सत्ताधारी राजपूत आज अपनी राजनैतिक चेतना को खो बैठे हैं और अभी तक अपनी दकियानूसी परम्पराओ तथा मद्यपान जैसे दुर्गुणो मे लिप्त हैं। आने वाली पीढी शिक्षा की ओर ध्यान देगी तो स्वतत्र समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर ये लोग चल सकेंगे अन्यथा दिनप्रतिदिन पिछडते चले जावेंगे।

मेव—

अलवर जिले की जनसख्या का लगभग दसवाँ भाग मेव जाति का है। इस प्रकार से मेव जाति का राजनैतिक एव सास्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व है। लक्ष्मनगढ, रामगढ, तिजारा, किशनगढ और अलवर तहसीलो मे मेव जाति विशेषत आबाद है।

मेव जाति के मूल रूप के बारे में अनेक विद्वानों में मतभेद है। कनिघम ने विचार प्रकट किया है कि संभवतः यह वही 'मेगली' जाति है जिसका यूनानी लेखक प्लाइनी ने सिंधु और यमुना के बीच में बसने वाली जातियों में विभाजन किया है। कुछ विद्वान इनको हूणों में गिनते हैं, किन्तु ये लोग अपना मूल स्थान शक-स्थान (सीस्तान) मानते हैं। ये लोग आमतौर से 'महर' कहलाते हैं। इसके आधार पर डा० गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा ने मत प्रकट किया है कि संभवतः ये लोग शक क्षत्रपों के वंशज या अनुयायी हैं। मथुरा के शक क्षत्रपों वाले सिक्कों में क्षत्रप 'मेवक' का नाम भी मिलता है, जिसका नाम से साम्य शोध का विषय है। मुरक्का अलवर में मखदूमसाहब ने स्पष्ट किया है कि मेवक राजा ने मत्स्य देश को 'मेवास्त' नाम दिया होगा जिसके आधार पर यह भाग आज भी मेवात कहलाता है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि मेव वैदिक आर्य लोगों की संतान है। ये सूर्य को पूज्य मानते रहे हैं 'मेय' शब्द से मेव जाति की उत्पत्ति का संबंध उपर्युक्त कथन से ठीक जुड़ता है। 'मेय' शब्द तिब्बी (तिब्बती) भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'आग'। मेय से 'मेर', मेन 'मैणा', मआर 'मार' आदि कबीले बने जो इसी जाति के समीप हैं। 'मेय' शब्द संस्कृत में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं के लिए भी आता है जो आफताब (सूर्य) की विभिन्न उपाधियाँ रही हैं। सूर्य ऋगवेद का सबसे बड़ा माबूद (जिसको पूजा जाय) देव नाम से प्रसिद्ध था। जिसे महादेव भी कहा गया। मेव जाति का इन सब तर्कों से कहाँ तक संबंध है यह विचारणीय है।

मेव जाति के मूल-स्वरूप के शोध के सम्बन्ध में उसके जातीय विभाग भी उपयोगी हो सकते है। यह प्रसिद्ध है कि मेव १२ पाल तथा लगभग ४० गोतों में विभक्त हैं। मीणा जाति के भी १२ पाल हैं और इनमें से ६ (सिंघल, नाई, दोलोत, पूंदलोत, धींगल और बालोत) मेव और मीणों में एक हैं, मेजर पाउलट आदि ने इस आधार पर मेव तथा मीणा जाति के एक ही मूल की कल्पना की है। पाउलट ने जिक्र किया है कि जिला बुलन्दशहर के बन्दोबस्त की रिपोर्ट में एक कौम का नाम ही 'मेव—मीणा' दिया गया है। कहा जाता है कि पहले मीणों और मेवों में विवाह सम्बन्ध भी होता था। कनिंघम की राय में उनके एक मूल होने का यह भी एक प्रमाण है। हो सकता है मीणे भी मेवों की तरह मूल में शक-जातीय ही हों।

मेवों के अनेक पाल और गोत अपना सम्बन्ध राजपूत वंशों से बतलाते हैं। कनिंघम ने १२ पालों के राजपूत सम्बन्ध की निम्नलिखित सूची दी है—

(१) ५ पाल जादू—छिरकलोत, दोलोत, डीमरोत, नाई, पूंदलोत।
(२) ५ पाल तोमर—बालोत, दरावल, कलेसा, लुंदावत, रतावत।
(३) १ पाल कुशवाहा—धींगल।
(४) १ पाल बड़गूजर—सिंघल।

कनिंघम ने यह भी लिखा है कि अलवर के उत्तर 'बास' नगर के आसपास ५ गाँवों के मेव अपने को परिहार बतलाते हैं। मौलवी अबू मुहम्मद अब्दुल शकूर साहब मेवाती ने भी अपनी पुस्तक 'तारीख मेवात' में व्यक्तिगत छान-बीन के आधार पर मेव पालों और गोतों के राजपूत

सम्बन्ध दिखलाते हुए एक सूची दी है। मेवों के ये राजपूत होने के दावे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित करते है। यदि गोत और पाल आदि के आधार पर खोज की जाय तो न केवल मेव और मीणा वल्कि राजपूत जाति के सम्बन्ध मे भी बहुत कुछ प्रकाश पडने की आशा की जा सक्ती है। एक और बात जो इस सम्बन्ध में ध्यान देने की है वह यह कि खानजादा मुसलमान भी अपना मूल राजपूत ही बतलाते है। कहा जाता है कि वे जादू राजा थानपाल के वशज है। जब मुहम्मद गोरी ने थानगढ पर अधिकार किया तो ये लोग बिखर गए। उसी वश के तेजपाल ने तिजारा बसाया। ये लोग फीरोज तुगलक के समय (१३६० ई० मे) मुसलमान हुए। इसी वश की एक शाखा से जादू मेवो का उद्‌गम बतलाया जाता है। कनिंघम ने भी इस आधार पर कुछ मेवो को जादू राजपूतो तथा उनके मुस्लिम वशज खानज़ादो से जातीय सम्बन्ध होने की कल्पना की है।

इस अध्ययन से स्पष्ट है कि मीणा आदि की तरह मेव भी अपने मौलिक रूप मे ही भारतीय समाज की एक पृथक् जाति है। शक आभीर आदि ने भारत पर हमले किये। उनके अनेक अश यहाँ रह गए थे जो किसी न किसी रूप मे भारतीय समाज मे विद्यमान है। हो सकता है कि मेव इसी सामाजिक प्रक्रिया का एक उदाहरण हो।

मूल मे एक ही जाति होने पर भी यह आवश्यक नही कि मेवो मे पीछे से अन्य जातियो के अश सम्मिलित न हुए हो। हो सकता है कि इनके मुसलमान होने से पहले जिन वर्गों से इनके विवाहादि सम्बन्ध होने लग गये हो उनके कुछ अश भी बाद को मुसलमान बन गए हो और इस्लाम ग्रहण करने पर शादी-विवाह आदि की दृष्टि से, मूलत सजातीय न होने पर भी इनमे मिल गए हो। कुछ मीणो तथा निम्न आर्थिक वर्ग के राजपूतो के विषय मे यह बात सत्य हो सक्ती है।

मेव जाति के पूर्व निवास स्थान के विषय मे विद्वानो का मत है कि पहले मेवाड मे इनका बाहुल्य था। कहा जाता है कि मेवाड का यह नाम भी इन्ही के कारण पडा है। मेवाड का एक हिस्सा अब तक 'मेवल' कहलाता है। मेवाड मे देवगढ की तरफ और मेरवाडा मे अब तक मेवो की आबादी है। कब और किन कारणो से इनको मेवाड से हटना पडा इसके सम्बन्ध मे स्पष्ट कुछ ज्ञात नही है। एक मत यह है कि भीलो, गूजरो आदि ने इनको वहा से निकाल दिया।

आजकल जिस प्रदेश मे इनका बाहुल्य है उसको मेवात कहते हैं और उसम अलवर राज्य का पूर्वीय भाग, भरतपुर राज्य का उत्तर भाग, जिला गुडगावा का दक्षिण भाग और मथुरा जिले के कुछ भाग सम्मिलित हैं। इस प्रदेश का यह नाम पुराने समय से मेवो का निवास स्थान होने के कारण ही प्रतीत होता है यद्यपि 'गजेटियर ऑफ इण्डिया' के तत्सम्बन्धी लेख मे मेवात का मूल नाम, 'मीनवती' और इसका मीणो का निवास स्थान होने के कारण यह नाम होना प्रकट किया है। रुहेलखण्ड मे मेवो के जाने का कारण उक्त गजेटियर मे सन् १७६१-६२ का अकाल बतलाया है।

यदि मेवाड, मेरवाडा, मेवात तीनो ही नाम इस जाति के कारण है तो यह तथ्य इस जाति के पूर्व महत्त्व तथा विस्तार का परिचायक होगा। यदि इन्हे शक जातीय माना जाय तो

इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नही रह जाती 'क्योकि शक-क्षत्रपो के राज्य काफी विस्तृत प्रदेश में रहे है, जिसमे सिंध सौराष्ट्र, उज्जैन, मथुरा, तथा पंजाब के भाग भी थे। शक-काल तथा मेवाड़ वाले अतीत की बात यदि छोड दें तो मेव जाति के अपने राजाओं या सरदारों का स्वतन्त्र राज्य होना कभी प्रकट नहीं होता। जहाँ तक मेवात का सवाल है ये पहले जादू राजाओं के और फिर खानजादों के मातहत रहे है। फारसी तवारीखों में जिन मेवाती सरदारों का जिक्र है वह पाउलट आदि की सम्मति मे मेव नही, खानजादे थे और शायद मेवात मे रहने के कारण ही मेवाती कहलाते थे। वे मेवों से बहुत उच्चवर्ग के थे, यद्यपि इसमें सन्देह नही होसकता कि युद्धादि मे मेव भी इन मेवाती सरदारों के साथ भाग लेते रहे होगे।

मुसलमान होने से पहले मेवों का धर्म निश्चय ही अन्य ऐसी जातियों की तरह सामान्य हिन्दू-धर्म और अपने विशेष जाति-धर्म का सम्मिश्रण रहा होगा। इनको इस नाम मे दीक्षित करने के सम्बन्ध में तीन नाम प्रसिद्ध है। (१) हजरत मीरान साहब (२) हजरत सैयद सालार साहब और (३) ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती। इनमें से सबसे अधिक महत्व स्पष्टतः हजरत सैयद सालार साहब का है। मेव लोग इनके झंडे की पूजा करते है और कई जगह इनके मेले लगते है। पाउलट ने जिक्र किया है कि खेतों के सीमा सम्बन्धी झगड़ों में एक पक्ष सालार का झण्डा उठा कर जिस रेखा पर चलते है वह सही हद मानली जाती है, जो इस झंडे के असीम आदर का सूचक है।

मेवों के इस्लाम स्वीकार करने के कारण बतलाते हुए 'तारीख मेवात' में मुस्लिम धर्मोपदेशकों के प्रयास, अर्थ-लाभ अथवा इस्लाम की समता-मूलक समाज-व्यवस्था की दृष्टि से कुछ लोगो का स्वेच्छापूर्वक धर्म-परिवर्तन तथा जिहाद आदि का जिक्र किया है, परन्तु इस क्रम में यह प्रश्न उठ सकता है कि इन कारणो ने इस जाति पर ही इतना प्रभाव क्यों किया ? इस बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। एक सम्भावना यह है कि शायद मुसलमानों के भारतवर्ष में आने तक यह जाति हिन्दू-समाज का कोई निश्चित और सामान्य अंग न बन सकी थी। सामाजिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से इसकी स्वतन्त्र स्थिति भी शायद उतनी दृढ़ और शक्तिशाली न थी जितनी उदाहरण के लिये जाटों की। अपने चारो ओर की दुनियाँ में इस जाति की तत्कालीन स्थिति निश्चय ही बहुत आशापूर्ण न रही होगी। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो इनके मुसलमान हो जाने की बात कुछ-कुछ स्पष्ट हो जाती है। इन पर किये गये मुस्लिम शासकों के जुल्मों का भी निश्चय ही इस सम्बन्ध में काफी हाथ रहा होगा।

स्पष्टतः सारी मेव जाति एक साथ ही मुसलमान न बनी होगी। धीरे-धीरे ही यह परिवर्तन हुआ होगा और विभिन्न प्रदेशों में शायद अलग-अलग। इस परिवर्तन के क्रम का कोई समुचित विवरण शायद ही कहीं मिल सके। जिन्होंने धर्म परिवर्तन स्वीकार किया वे भी बहुत दिनों तक रस्म-रिवाज आदि की दृष्टि से आधे ही मुसलमान रहे। पाउलट ने गत शताब्दी में इनमें अनेक हिन्दू रिवाजें पाई थी। उन्होने लिखा है कि मेव एक पाल में विवाह नही करते। विवाह से पहले की रस्मों में उनके यहाँ ब्राह्मण भाग लेते है और विवाह के लिये पीली चिट्ठी लिखी जाती है। ये लोग

कुओ पर भैरव, हनुमान आदि की मूर्तियो की स्थापना करते है, होली आदि त्यौहार मनाते हैं तथा भोमिया, चॉवड आदि देवताओ की पूजा करते हैं। फीरोज़ तुगलक के समय मे मेवात के लोगो को हिन्दू या काफिर कहा गया है। अब तो सारी मेव जाति ही मुसलमान है और किसी हिन्दू मेव की कल्पना भी नही की जा सकती। रसम रिवाज भी धीरे धीरे पूर्णतया मुस्लिम होते जा रहे हैं, परन्तु यह प्रक्रिया शायद समाप्त नही हुई और अब भी कही-कही हिन्दू अतीत के चिन्ह दृष्टिगोचर हो सकते हैं। प्रसिद्ध सत लालदास का मेव जाति मे जन्म तथा प्रभाव मेवो की इस विशेष परिस्थिति का ही फल था।

मीणो की तरह कृषि के साथ-साथ लूट मार मेवो का ऐतिहासिक पेशा रहा है। कनिघम ने लिखा है कि अलवर के लगभग एक तिहाई कृषक मेव हैं। पाउलट ने ४०० से ऊपर गाव मेवो के बतलाए है। उनकी लूट-मार और उनके बलवा के तो मुस्लिम कालीन इतिहास मे अनेक उदाहरण हैं। कहते हैं किसी समय मेवातियो के भय से देहली के दरवाज़े दिन दिन से बन्द हो जाते थे।

अपनी अशान्ति-प्रियता के कारण मेवो को कष्ट भी कम नही भोगने पडे। कनिघम ने लिखा है "मुस्लिम शासन की प्रारम्भिक शताब्दियो मे मेवातियो के साथ अत्यन्त निदयता एव क्रूरता का व्यवहार किया गया। उनका जगली जानवरो की तरह पीछा किया गया और एक-एक बार मे हजारो की तादाद मे उन्हे कत्ल किया गया। ६५८ हिज़री (१२६१ ई०) मे नासिररद्दीन बादशाह के वज़ीर अलगखा ने कोहपाया अर्थात मेवात की पहाडियो पर हमला किया। उसमे इन स्थानो के लोग जो काफिर, हिन्दू, चोर और लुटेरे थे वे तलवार के घाट उतारे गए। हर कत्ल के लिये एक टक और हर जिन्दा कैदी के लिए दो टक का इनाम रखा गया। देहली लौटने पर कैदी बदाऊ दरवाज़े के बाहर हौजरानी लेजाए गए। कुछ को हाथी के पैरो के नीचे कुचलवा दिया गया, कुछ तलवार से दो कर दिये गए। सौ से अधिक बागियो की सर से खाल उधडवा डाली गई।" मुस्लिम इतिहासकार स्वय स्वीकार करता है कि ऐसी बीभत्स कहानी इससे पहले नही सुनी गई। ६ वष बाद उसी अलगखा ने बादशाह बलबन के रूप मे एक लाख मेवातियो का कत्ल कराया। इन लोगो के साथ यही बर्ताव बहुत दिन तक चलता रहा। ये प्रदेश जब मरहठो के आधिपत्य मे थे तब सिंधिया के जनरल पैरान के शासन मे मेवातियो को जीवित दफन करा देने का आम रिवाज था, परन्तु इस व्यवहार से इन पर कोई प्रभाव न हुआ। इम्पीरियल गजेटियर मे लिखा है कि अठारहवी शताब्दी के अत के करीब उत्तर और मध्य दोआब मे सफर करना इनके कारण सुरक्षित न था। १८०३ ई० के मरहठा युद्ध के समय इन लोगो ने लार्ड लेक की सेना को काफी परेशान किया था और उनके घोडे उडा ले गये थे। दमन नीति को असफल देखकर सन् १८०७ मे मिस्टर सैटन, रेजीडैंट देहली ने मेवाती सरदारो के साथ लिखापढी करके शमन-नीति का प्रारम्भ किया। इसके बाद भी इनकी उद्दडता किसी हद तक जारी रही। महाराज श्री बख्तावरसिंहजी तथा विनयसिंहजी के समय मे इन्होने अलवर राज्य को भी कुछ परेशान किया था। सन् ५७ के गदर के दिनो मे इन्होने राज्य की बागर लूटली थी और मवेशी भगा ले गये थे। अग्रेजी इलाके मे

फीरोजपुर और दीगर देहात को लूट लिया था। इसके लिए इनके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की गई और कुछ को फांसी हुई।

गदर के बाद अंग्रेजी सत्ता के सुदृढ़ हो जाने के बाद की राजनैतिक शांति का इन पर भी असर पडा और ये लोग भी शान्तिपूर्ण जीवन बिताने के लिए मजबूर हुए। फिर भी सन् १९३२ की अलवर की अशान्ति और सन् ४७ का हुल्लड़ इस बात का द्योतक है कि अब भी इन लोगों को कितनी आसानी से युद्ध और विद्रोह के लिए उकसाया जा सकता है। सन् ४७ के हिन्दू-मुस्लिम हुल्लड़ में लगभग सारे ही मेव पाकिस्तान भाग गये थे, किन्तु वहा की दुर्व्यवस्थाओं को देखकर वे स्वदेश लौट आये और पूर्वत: अपने-अपने स्थानों पर जम गये।

यह है मेवों का अतीत। अपनी वर्तमान अवस्था में मेव एक कृषि प्रधान जाति है। कृषि के अतिरिक्त इनका खास पेशा सैनिक सेवा है। सामाजिक दृष्टि से मेव अपने को एक अलग स्वतंत्र जाति महसूस करते है। उनकी अपनी अलग बोली है, उनकी अपनी अलग अतीत कथाएँ हैं, अलग संस्कार है। इस दृष्टि से मुस्लिम समाज से भी वे एक तरह से पृथक् से ही है। उनका लगभग पूर्णतया कृषि और सैनिक सेवा पर निर्भर रहना भी उनको एक पृथक् वर्ग के रूप में रखने में सहायक है। उनकी आर्थिक अवस्था भारतवर्ष के अन्य कृषक-वर्गो के समकक्ष ही है और शिक्षा आदि की दृष्टि से भी उनका स्तर वही है। शिक्षा की कमी और कृषक होने के नाते उनकी अर्ध-बेकारी, उनकी सहज साहसिकता के साथ मिलकर उनमें से कुछ को चोरी आदि असामाजिक कर्मो की ओर प्रवृत्त कर देती है। आर्थिक अवस्था अधिक दु:सह हो जाने पर उन्हें बलवे अथवा साम्प्रदायिक दगो आदि के लिए भी आसानी मे उत्तेजित किया जा सकता है। किसी भी नेता के पीछे बिना आगा-पीछा सोचे चल पड़ने की उनकी आदत ऐतिहासिक और सहज है। एक 'टामक' (बड़ा नक्कारा) की आवाज उनके लिए रहस्यमय आकर्षण रखती आई है और उन्हे चाहे जब इकट्ठा कर सकती है। राजनैतिक दृष्टि से भी मेव अलवर जिले की एक महत्वपूर्ण इकाई है, जिनकी आवश्यकताओं की अवहेलना नही की जा सकती।

मेव कौम प्राचीन हिन्दुस्तानी कौम है, और अपने हिन्दुस्तानी पूर्वजों की सन्तान होने पर गर्व करती है। आज मजहब के लिहाज से मेव मुसलमान है लेकिन असल के लिहाज से सिर्फ़ हिन्दुस्तानी।

जहाँ मेव मुस्लिम धर्म के बुजुर्गों अर्थात पैगम्बर इस्लाम, खुलफाए किराम, हजरत इमाम हसन, शैख अब्दुल कादिर जैलानी, ख्वाजा मईउद्दीन चिश्ती अजमेरी तथा हिन्दुस्तान के दूसरे मुस्लिम बुजुर्गों की इज्जत करते है व उनके उत्सव मनाते है, उसी तरह अपने पूर्वज श्री रामचन्द्रजी, श्री कृष्णजी, जगदेवपँवार, तहनपाल, अनंगपाल, कबीर साहब तथा हिन्दुस्तान के दूसरे सन्त-साधुओं की भी कद्र करते है व उनकी महफिलों, व्याह-शादियों में पंडितों और भाट कवीसरों से उनकी दास्ताने रुचि व शौक से सुनते है। इसके अतिरिक्त होली, दीवाली, मावस, दशहरा, बलदेव छट्ट, जाहरपीर, नौमी, जन्माष्टमी आदि त्योहारों को भी मानते है। मेव कौम मे जहाँ हिन्दू पूर्वजों के प्रति श्रद्धा और प्रेम है वहाँ उनके उपासना गृहों (मन्दिर आदि)

की भी इज्जत करते हैं। मेवात में जितने भी मन्दिर हिन्दुओं के बने हैं उनके लिए मुफ्त जमीन और धन मेवो ने ही दी है। फलस्वरूप नगीना मे मन्दिर श्री सीतारामजी और श्री हनुमानजी (जिसे असनल भी कहते हैं) के लिए बारह-बारह बीघा जमीन मेवो ने ही दी थी। उनके कारिंदे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही होते हैं। हिन्दू कुम्हार दशहरे पर कुल्हिया (मिट्टी का छोटा कुल्हड) और दीवाली पर मिट्टी के दीये घर-घर पहुँचाता है और उसके बदले मे अनाज प्राप्त करता है। ब्राह्मण दशहरे पर जौ और होली पर सिरस की डालियाँ मकान के दरवाजे पर लगाता है। विष्णुदेवा कनागतो मे अपना दान लेने हैं। ब्राह्मण व्याह-शादियों में भी काम करते हैं और अपना नेग (दान) लेते हैं। मेव ब्याह-शादियो मे मस्जिद मे दान देते हैं वही मन्दिर को भी देते हैं तथा आजतक पुजारी का रुपया शादियों मे दिया जाता है। मेवो के हर गाँव मे खेडा देवता, चांवड माता तथा भैरव आदि के स्थान निश्चित होते है और उनके पुरोहित मेवो मे शादियों के अवसर पर दान पाते हैं।

जहाँ तक धर्म की शिक्षा और उसकी रस्मों की परिशुद्धि (अदायगी) का सम्बन्ध है, वह हिन्दुओ मे मनुस्मृति के अनुसार मे ब्राह्मणो के ही जिम्मे थी। क्षत्रियो और वैश्यो का काम लडाई लडना और कृषि करना ही था। मेवो ने इस्लाम लाने के बाद भी धार्मिक रस्मों को अदा करने के लिए दूसरे लोगों को नियत किया, फलस्वरूप निकाह (फेरे), पाँचों समय की नमाज, जुमे की नमाज, जनाजे की नमाज व ईद की नमाज पढाना सैयदो और काजियो के जिम्मे था, जनाज़े (शव) का नहलाना, दफन करना, दरूद, फातिहा तथा जानवरो को जिबह करने का काम जागीरो के जिम्मे और जियारत (तीर्थ स्थान के दर्शनार्थ यात्रा), उर्स आदि मुल्लाओं को सौंपे गये। इस काम के बदले मे मेव इनको फसल व शादियों पर गल्ला व नकदी देते रहे। इसी प्रकार हिन्दुओं के पण्डितो, पुजारियो, जोगियो तथा दूसरे देवताओ के पुरोहितों को भी फसल, त्योहार व शादियो के अवसर पर दान व दक्षिणा अब तक देते रहे हैं। मेव कौम अपने नस्ली भाईयो, मेर, मेदी, मेणो, आदि की तरह ही नाममात्र को हिन्दू-मुसलमान हैं। वास्तव मे यह सब धर्मो के पूर्वजो के साधु सन्त, ऋषिमुनि, पीर, वली आदि से अपनी श्रद्धा व आस्था रखने हैं और यही इनका धर्म है। कहते है कि यही वजह थी जो मेव बिरादरी मे लालदास व घूहटसिद्ध जैसे भक्त हुए है, जिनको हिन्दू और मुसलमान सभी अपने पूर्वज मानते रहे है। वास्तव मे तो हिन्दुस्तानी सस्कृति और उसके दीन धर्म का मेल-जोल मेव जाति मे है।

मीणा—

मीणा जाति का सवाई माधोपुर, जयपुर और अलवर जिले मे मध्यकाल से ही प्रभाव रहा है। आज भी अलवर जिले के दक्षिणी भाग अर्थात राजगढ और थानागाजी तहसीलो मे अधिकतर मीणा जाति आबाद है। स्वतन्त्रता के पूर्व तक चौकीदार मीणे खूँटेलपने का कार्य कर चोरी करते एव करवाते रहे हैं। शिक्षा के प्रसार के कारण धीरे धीरे इस जाति मे नवीन चेतना आने लगी है जिसके फलस्वरूप बहुत मे चौकीदार मीणों ने चौर-कार्य त्याग कर जमीदार मीणों की भांति खेतीबारी करना प्रारम्भ कर दिया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से मीणा जाति मध्यकालीन अलवर की राजनीति के उलट-फेर में विशेष महत्त्व रखती है। ११वीं शताब्दी से पूर्व तक दौसा, आमेर, खोह आदि स्थान मीणा जाति के शासन में थे। निश्चय ही उस समय या इससे पूर्व इन शासकों का यहाँ पर विशेष दबदबा रहा होगा ? कन्नौज के शासक गुर्जर-प्रतिहारों ने दौसा को मीणाओं के राजा से छीनकर अपने अधिकार में कर लिया। १२वीं शताब्दी में ग्वालियर से आकर कुशवाहवंशीय सोढदेवजी ने बड़गूजरों से भी दौसा नगर छीन लिया। इनके पुत्र दूलहरायजी ने खोह के मीणा राजा से वहाँ का साम्राज्य छीन लिया तथा उनके भी पुत्र कांकिल देवजी ने मीणाओं की शक्तिशाली राजधानी आमेर को छीन कर अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार धीरे-धीरे मध्यकाल मे ही मीणाओं की शक्ति क्षीण होने लगी और राजपूत राजा प्रभावशाली होने लगे, किन्तु फिर भी मीणाओं का आक्रोश कम न हुआ। उन पर अत्यधिक दबाव और अत्याचार होने पर वे बागी होकर लूटमार करने लगे। जंगलों में रहकर इधर-उधर डाका डालने लगे व चोरी करने लगे। हो सकता है तभी से मीणा जाति के दो भाग हो गए हों। जो आक्रोशी थे वे चौकीदार मीणे और जो आधीनता स्वीकार कर खेतीबारी करने लगे वे जमींदार मीणे कहलाए हों। प्रत्येक गाँव में चौकीदार मीणे का कर्त्तव्य होता था कि वह बाह्य चोरियों से ग्राम की रक्षा करे और यदि चोरी हो जाये तो उसे खोज निकाले। इस कार्य के लिए उसे फसल पर प्रत्येक घर से अनाज मिलता था।

थानागाजी तहसील मे अकबर के समय तक मीणों का प्रताप रहा है। यहाँ पर मेवाल मीणों की राजधानी क्यारा नगरी थी। अकबर के समय मे यहाँ के मोकलसी नामक राजा को अकबर की शाही सेना ने हराकर क्यारा को उजाड़ दिया। तभी से इधर किसी का नाश होने पर 'क्यारा पूरा हो गया' कहावत प्रसिद्ध है। यहाँ से निकले हुए मेवाल मीणे आसपास के गाँवों में बसे हुए हैं। उन्ही दिनों इधर नरहट (नरैठ) का बादा मीणा प्रसिद्ध लुटेरा था, जिसकी धर्म पुत्री शशिवदनी, मेवात के विख्यात मेव टोडरमल के पुत्र दरयाखां को ब्याही थी। मेव और मेना अर्थात मीणा जाति के गोतों मे बड़ा साम्य है। इस बात का विशेष अध्ययन होना वांछनीय है। अंग्रेजी शासनकाल मे चौकीदार मीणे चोरियाँ अधिक करते थे, इसलिए सोमवार को सोमवार संबंधित थानों में उन्हें हाजिरी देनी होती थी। स्वतंत्रता के उपरान्त से मीणों ने प्रायः चोरी करना छोड़ दिया है और खेतीबारी में लग गये हैं। शिक्षा का प्रचार धीरे-धीरे इस जाति में भी हो रहा है।

इस प्रकार राजपूत, मेव, मीणा आदि जातियों का ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व रहा है। अन्य जातियाँ अपने शान्त स्वभाव के कारण या तो खेतीबारी मे लगी रही है या व्यापार करती रही है। राजनैतिक उथल-पुथल में उपर्युक्त जातियों का ही विशेष योग रहा है। राठ के क्षेत्र में अहीर जाति का आधिक्य आज भी है। वे अधिकतर खेती एवं पशुपालन में पहले से ही लगे हुए है। जैन एवं बनियाँ जाति प्रारम्भ से ही जिले के व्यापार में लगी हुई है। स्वतन्त्रता के उपरान्त से पंजाब से आये पुरुषार्थी अलवर जिले के उत्तरी एवं पूर्वी भाग में अधिकतर बसे हुए है। उन्होंने जिले का अधिकतर व्यापार अपने हाथ में ले लिया है।

इतिहास का दर्द

इनिहास अपने अतीत की तहों के नीचे न जाने कितना दर्द छिपाये पडा रहता है। आज का अलवर जिला भौगोलिक दृष्टि से न जाने कितने रूप बदल चुका है। समय-समय का इतिहास भूगोल को बदलता रहता है, इसलिए अलवर ने भी कभी स्वतत्रता के तथा कभी अध स्वतत्रता और कभी परतत्रता के दिन अवश्य देखे हैं। सुविधा की दृष्टि से अलवर के इतिहास को तीन कालो मे विभाजित कर उसके दद को टटोलते है तो अधिक सुविधा रहेगी—१ प्राचीन काल, २ मध्यकाल और ३ अर्वाचीन काल। महाभारत काल से लेकर आजतक के अलवर के इतिहास का लेखाजोखा कम आश्चर्यजनक नहीं है।

१ प्राचीन काल

पुराणो के अनुसार प्राचीन काल मे इस देश पर महर्षि कश्यप की स्त्री दिति से उत्पन्न हुए वीर पराक्रमी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के राज्य का पता चलता है।

हिरण्यकशिपु के पौत्र दैत्यराज दानी ने महादान से पूर्व ही यह देश अपने मधु नामक सेनापति को दे दिया था। हरिवश पुराण के अनुसार मधु के पुत्र धुधु ने उज्जानक (ढु ढार) देश मे अपनी राजधानी स्थापित की, पर यह राजा बडा ही अत्याचारी और प्रजापीडक था। इसकी अनीतियो से दु खित होकर महर्षि उत्तक ने अयोध्या के सूयवशी महाराज बृहदश्व को इधर शान्ति स्थापन के लिये उत्तेजित किया। उन्होंने अपने पुत्र कुवलयाश्व को भारी सेना के साथ इधर भेजा जिन्होंने धुन्धु को मारकर यह देश अपने राज्य मे मिला लिया और इस प्रकार यह देश दैत्यवश की आधीनता से निकलकर सूयवश की छत्रछाया मे आया।

महाराज कुवलयाश्व की १२वी पीढी मे बडे पुत्र पुरुकुत्स तो अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठे और छोटे पुत्र अम्बरीष इस देश के अधिपति हुए। इनकी १७वी पीढी तक राजकार्य शान्तिपूर्वक चलता रहा, किन्तु १८वी पीढी मे राजा महीधर से मगध देश के चन्द्रवशी राजा उपरिचर ने यह देश छीन लिया।

मत्स्य और विराट—राजा उपरिचर के ५ पुत्र थे जिनमे चौथे पुत्र मत्सिल (मत्स) को यह देश सौंपा गया। भागवत मे मत्सिल और कुशाश्व दोनो को चेदी देश का राजा लिखा है पर महाभारत आदि पर्व ६४ अध्याय, ४५ श्लोक मे कुशाश्व को चेदी देश का और मत्सिल को उज्जानक खड (ढु ढार) का राजा माना है। राजा मत्सिल का नाम इस प्रदेश के लिए गौरवशाली रहा है। उसने उज्जानक का नाम अपने नाम पर 'मत्स्य' देश रखा और मत्स्यपुरी (माचैडी) नाम का नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। पहाडियो से घिरा होने के कारण यह स्थान प्राचीन समय से ही सामरिक दृष्टि से महत्त्व का रहा है। उन दिनो इधर बाघेल, पाण्डव, बच्छल आदि जातियाँ बसती थी।

राजा मत्स्य के सत्यसेन और वनसेन नामक दो पुत्र थे। जिनमें सत्यसेन तो अपने नाना के राज्य कलिंग देश का राजा हो गया और वनसेन (वेनु) ने मत्स्य देश का राज्य सम्भाला। वनसेन का बड़ा बेटा विराट यहाँ का राजा हुआ। राजा विराट महाभारत कालीन महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हुआ है। उसने मत्स्यपुरी से ३५ मील पश्चिम के पहाड़ी अंचल में अपने नाम पर विराट नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। माचेंड़ी और बैराठ के गहन बीहड़ जंगलों में अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने निवास किया था, जिसके कारण उनसे संबंधित अनेक गाथाएँ इस अंचल के प्राकृतिक स्थलों से जुड़ी हुई हैं। कौरव सेना ने राजा विराट की गाएँ इसी देश में घेरी थी, जिस पर राजा विराट के पुत्र उत्तमकुमार ने अर्जुन की सहायता से कौरव सेना को हराया था।

महाभारत काल में तिजारा के पास श्रोष्टिष्ट नगरी (सरहटा) में राजा सुशर्माजीत के राज्य का भी उल्लेख मिलता है। त्रिगर्त नामक प्रसिद्ध नगर (आजकल तिजारा) भी महाभारत काल में प्रसिद्ध था जो सरहटा के पास ही है। त्रिगर्त एक नगर का नाम तो था ही साथ ही एक गणराज्य भी था, जिसमें छः घटक मिलकर त्रिगर्तों के नाम से प्रसिद्ध था तथा इनका शासित प्रदेश त्रिगर्त नाम से विख्यात था जिसकी राजधानी त्रिगर्त (तिजारा) थी।

इस प्रकार प्राचीन काल में उत्तर में त्रिगर्त (तिजारा) और दक्षिण में मत्स्यपुरी तथा पश्चिम में विराट नगर आदि प्रमुख केन्द्र थे जहाँ से इस प्रान्त की बागडोर सम्भाली जाती थी।

२. मध्यकाल

यहाँ का मध्यकालीन इतिहास भी कम महत्त्व का नहीं है। उत्तर में राजा सुशर्मा के वंशजों का इधर बहुत समय तक राज्य रहा। आरकिओलोजिकल सर्वे भाग २० में उल्लिखित है कि यादववंशी राजा तेजपाल ने सुशर्मा के वंशजों के पास शरण ली और यहाँ के प्रान्त पर यादवों का बहुत समय तक राज्य रहा। दक्षिण में मीणा जाति प्रबल थी। धोसा, अम्बर, क्यारा आदि स्थान उनके सुशासन में थे। ९वीं शताब्दी तक वे इतने प्रबल हो गये थे कि आधुनिक राजगढ़ और थानागाजी के इलाकों में उनका बोलबाला था तथा वे लूट मार करते थे।

पाँचवीं शताब्दी में पश्चिमोत्तर भाग पर मोरध्वज का राज्य बताया जाता है। इसकी राजधानी साहबी नदी के तट पर मोरध्वज नगरी थी, जिसके प्राचीन चिह्न नदी के कटाव में आज भी पाये जाते हैं। हो सकता है बाद में चौहान राजाओं का यहाँ का प्रभाव मोरध्वज राजा से ही जुड़ने से रहा हो।

नवी शताब्दी के आरम्भ में गुर्जर-प्रतिहार वंश उत्तरी भारत में प्रभावशाली हो गया। इसलिए सारे उत्तरी भारत में शान्ति एवं सुशासन के दिन फिर आ गये। कन्नौज को इन्होंने राजधानी बनाया और धोसा, मत्स्य आदि प्रान्तों तक अपना अधिकार किया। इस प्रकार १०वीं शताब्दी से राजगढ़ और थानागाजी तहसीलों के प्रमुख गढ़ों जैसे मत्स्यपुरी (माचेंड़ी) व्याघ्रराज

(राजगढ) राज्यपुर (राजोरगढ) आदि पर अपना अधिकार जमा लिया। सुशासन के कारण मीणाओ का आतंक कुचल दिया गया और कला और संस्कृति का पोषण होने लगा। राजोरगढ उस संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा। अलवर एव दिल्ली के संग्रहालयो के शिलालेखो से ज्ञात होता है कि १०वी, ११वी शताब्दी मे राजोरगढ महत्त्वपूर्ण एव प्रसिद्ध नगर था जहा के कलात्मक मंदिरो को देखकर पुरानी शान का पता चलता है। गुर्जर प्रतिहारवंशीय महाराजाधिराज सावट के पुत्र मथनदेव यहाँ राज्य करते थे, जो कन्नौज के परमभट्टारक महाराजा परमेश्वर श्री क्षितिपाल देव (महिपाल) के दूसरे बेटे गुजर-प्रतिहार वश का कन्नौजी-वैभव समाप्त होने पर गुर्जरो ने मार्चेडी, राजगढ, राजोरगढ आदि स्थानो पर अपने छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य बना लिए जिनका प्रभुत्व अकबर के समय तक बना रहा।

अलवर जिले के दक्षिणी भाग मे बडगूजरो का प्रताप बहुत समय तक रहा। पश्चिमी भाग पर तथा अलवर पर १३वी शताब्दी से पूर्व निकुम्भो का भी अधिकार रहा। १३वी शताब्दी के प्रारम्भ मे अजमेर के राजा बीसलदेव चौहान ने अलवर के निकुम्भो को अपने अधीन कर लिया और सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने अलवर निकुम्भो से छीन कर अपने वशवालो के अधिकार मे दे दिया। १५वी शताब्दी के आरम्भ मे दिल्ली पर सुल्तान फीरोजशाह राज्य करता था। उस समय भी अलवर जिले के दक्षिणी-भाग पर गुजर-प्रतिहारो की शक्ति बढी-चढी थी। पृथ्वीराज चौहान के बाद से ही अलवर के उत्तरी पश्चिमी भाग पर चौहानो की शक्ति प्रबल रही। मदन-सिंह चौहान ने मदनपुर (मण्डावर) ग्राम बसाया तथा उनके वशज इधर-उधर जम गये, जिसका विवेचन पहले हो चुका है। शेखावता ने भी किस प्रकार चौहानो के पैर इधर नही जमने दिये यह भी पूर्व कहा जा चुका है।

वास्तव मे तो १५वी शताब्दी के आसपास से अलवर जिला मुसलमानो की राजनीति से प्रभावित होने लगा। दिल्ली के निकट होने के कारण मुसलमान शासको ने यहाँ की जनता को बलात् मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया। फीरोजशाह तुगलक ने अनेक जाति के लोगो को मुसलमान बनाया जिनमे मुण्डावर के राजपूत भी सम्मिलित थे। मेव जाति जो कि पहले हिन्दू थी अधिकतर इसी समय मुसलमान बनायी गयी। तहनगढ के यादव क्षत्रिय भी इसी समय बडी सख्या मे मुसलमान बनाये गये, जो अलवर के इतिहास मे खानजादाओ के नाम से विख्यात रहे है। खानजादाओ का इतिहास अलवर के इतिहास मे उल्लेखनीय है। सवत् १५४९ मे अलावलखाँ खानजादा ने अलवर का दुर्ग निकुम्भ क्षत्रियो से छीन लिया और इस बार उनको ऐसी हार हुई कि वे यह प्रान्त छोडकर ही सयुक्त प्रान्त मे चले गये। अलावलखाँ ने निकुम्भो द्वारा निर्माणित अलवर-दुर्ग का परकोटा खिचवाया। उसका पुत्र हसनखाँ मेवाती बडा वीर पुरुष हो गया, जिसके व्यक्तित्व का विवेचन आगे करेंगे।

मुगलकालीन व्यवस्था से भी अलवर जिला प्रभावित हुए बिना न रहा। राणा सागा और हसनखा मेवाती देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटे। हसनखाँ को अलवर शहर के स्थायी मरघट हसनकी मे दफनाया गया और राणा सागा खानवा से घायल स्थिति मे लाये

गये, किन्तु बसवा के पास आते-आते उनके प्राण पखेरू उड़ गये और उनकी समाधि वहीं बनादी गयी, जो आज भी बसवा में रेल की पटरी के पास अपनी अतीत गाथा कह रही है। राणा सांगा को हराकर बाबर इधर आया और उसने अलवर के दुर्ग में विश्राम किया। अपने छोटे पुत्र हिन्दाल को यह स्थान जागीर में दे दिया। जब हुमायूँ का भारत में पुनः अधिकार हो गया तब तुर्दीबेगखाँ यहाँ का शासक नियुक्त हुआ और हसनखाँ के भतीजे जमालखाँ की बड़ी पुत्री से हुमायूँ ने और छोटी से सेनापति बहरामखाँ ने विवाह किया। इसी से बहरामखाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म हुआ था। सम्राट अकबर ने अपने बहनोई मिर्जा शरफुद्दीन को यह देश जागीर में दिया। बादशाह औरंगजेब ने आमेर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह को यह प्रान्त जागीर में दे दिया, किन्तु अलवर के किले का महत्त्व जानकर इसे फिर अपने अधिकार में लेकर मिर्जा अब्दुर्रहीम को अलवर का किलेदार बना दिया। औरंगजेब के समय से ही दिल्ली की बादशाहत निर्बल हो गयी और बाद में अवसर देखकर भरतपुर के राजा सूर्यमल ने अलवर पर अपना अधिकार कर लिया। सूर्यमल और उनके पुत्र जवाहरसिंह ने अलवर प्रान्त को अपने बल और पराक्रम के कारण अपने अधिकार में रखा, किन्तु जवाहरसिंह के ही समय में अलवर राज्य के संस्थापक रावराजा प्रतापसिंहजी ने अपनी वीरता, बुद्धिबल एवं पराक्रम से भरतपुर और जयपुर से भाग छीन कर अलवर की स्थापना की।

अर्वाचीन काल : अलवर राज्य की स्थापना—

भरतपुर और जयपुर के राज्यों में माँवड़े-मँढोली के पास घोर युद्ध हुआ तथा राव राजा प्रतापसिंह के कारण जवाहरसिंह को हार कर भागना पड़ा। श्री प्रतापसिंह ने इस समय दोनों राज्यों की शक्ति क्षीण जानकर अपनी नीतिकुशलता और वीरता से जयपुर तथा भरतपुर राज्य के बहुत से भाग पर अधिकार कर एक स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। सन् १७७० में राजगढ़ को नये ढंग पर बसाकर और एक सुदृढ़ दुर्ग बनाकर प्रथम उसे अपनी राजधानी बनाया। सामरिक दृष्टि से तथा राज्य के विस्तार के लिए सन् १७७५ में उन्होंने अलवर के दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया और अलवर को राजधानी बनाया। बादशाह शाहआलम इनकी वीरता से प्रभावित था इसलिए उन्हें रावराजा की उपाधि एवं पंचहजारी मनसब देकर इनका सम्मान बढाया। धीरे-धीरे इन्होंने अपने राज्य की सीमा उत्तर में चरखी-दादरी और पश्चिम में पिरागपुरा, बैराठ और दौसा तक बढ़ा ली।

राज्य स्थापन के समय रावराजा के सामने तीन प्रबल शक्तियाँ थी—प्रथम मरहठा, दूसरे बादशाही सेना और तीसरे जयपुर राज्य, किन्तु अपनी वीरता, चतुरता एवं पराक्रम से इन्होंने सबको काबू में कर अपने नवनिर्मित राज्य को जमाया। इनका अधिकतर समय घोड़े की पीठ पर ही युद्ध करते एवं राज्य की व्यवस्था करते बीता। ये बड़े वीर राजनीतिज्ञ, उदार-हृदय धर्यवान राजा थे। बड़ी से बड़ी आपत्ति में संघर्ष करने को तत्पर रहते थे। इन्होंने अपनी पैतृक जन्मभूमि माचेड़ी में ही हिन्दी-भाषा पढी तथा रामायण, महाभारत, पुराणों और वीरों की कथा को सुनकर अपने वंश के गौरव को जाना तथा भारतीय राजनीति का अध्ययन किया।

इस प्रकार आमेर नरेश महाराजा उदयकरणजी के जेष्ठ पुत्र बीरसिंह के धर्मवश राज्य त्याग कर देने पर उनकी १५वी पीढी मे रावराजा पुन कुशवाहवंश की टीकाई शाखा मे राज्य स्थापन करके अपनी तथा वश की कीर्ति को अमर कर गये।

महाराव राजा श्री बख्तावरसिंहजी—

रावराजा प्रतापसिंहजी के उपरान्त अलवर राज्य के विस्तार मे रावराजा बख्तावरसिंहजी ने विशेष योगदान दिया। जिस समय ये सिंहासन पर आरूढ हुए उस समय उनकी अवस्था केवल १२ वष की थी, पर अपनी स्वाभाविक वीरता और बुद्धिमत्ता से उन्होने सभी को मत्रमुग्ध कर लिया। इनके समय मे भी अनेक युद्ध और उपद्रव हुए, किन्तु अपनी बुद्धि एव वीरता के कारण इन्होने सभी उपद्रवो को दबा दिया। सन् १७९२ मे जयपुर नरेश श्री प्रतापसिंह की सम्मति से तुकोजी हुलकर ने इस राज्य पर चढाई कर दी। रावराजा ने इस उपद्रव को बडी सूझ-बूझ के साथ समाप्त किया। बाहर के हमलो से तो इन्होने राज्य का बचाव किया ही था साथ ही आन्तरिक उपद्रवो को भी उन्होने बडी समझदारी से दबाया। बडी-बडी शक्तियो मे मेल करो पर भी इस प्रान्त के मेव और ठाकुरो ने जहाँ-तहा उपद्रव मचा रखा था। सन् १८०० मे कौलानी मे दो हजार मेवो ने इकठ्ठ होकर प्रात मे लूट मार मचा दी, तब राजा ने इस अराजकता को समाप्त किया। मरहठो का इनके समय तक बडा दबदबा था। सारा ही राजपूताना इनके अत्याचारो से दु खी था। लार्ड लेक ने अलवर राज्य की सहायता से लासवारी के मैदान मे मरहठो को एसा हराया कि वे फिर इधर लौटकर नही आये।

१९ नवम्बर १८०३ को अग्रेजो से अलवर राज्य ने सधि की और लासवारी की लडाई के अमूल्य योगदान के कारण अग्रेजो ने राठ, नीमराणा, हरियाणा प्रदेश तथा किशनगढ और तिजारा अलवर राज्य को दिया। इस प्रकार इन्होने अलवर राज्य की नीव को सुदृढ कर उसे विस्तार दिया।

रावराजा बख्तावरसिंहजी बडे धर्म प्रेमी, कवि एव सहृदय राजा थे। ये बडे दानी और कला प्रेमी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनो को ही इन्होने बहुत सी भूमि दान मे देकर अपनी धर्मनिर्पेक्षता का परिचय दिया। इनके कवि एव कलाकार रूप का विवेचन विस्तार से आगे करेंगे। राज्य की प्रशसा और महाराज की गुणग्राहकता को सुनकर दूर देशो के अनेक विद्वान अलवर नगर मे आये और इनके समय मे राज्य मे उनका यथोचित सम्मान हुआ। सन् १८१४ मे राव राजा का देहा त हो गया। रानी मूसी इनके साथ सती हो गयी, जिनकी छतरी आज भी अपने अतीत का वैभव लिए सागर पर खडी है। इनके दत्तक राजकुमार विनयसिंहजी राजसिंहासन पर आसीन हुए।

महाराव राजा श्री विनयसिंहजी—

जब श्री विनयसिंहजी राजगद्दी पर बैठे उस समय तक मुगल राजवश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। दिल्ली मे अकबरशाह द्वितीय नाममात्र का बादशाह था। लासवारी के युद्ध मे

मरहठों का निर्णय हो ही चुका था। श्री बख्तावरसिंहजी ने अंग्रेजों से संधि कर राज्य का विस्तार कर ही लिया था, ऐसी स्थिति में श्री विनयसिंह जैसे राजा की ही आवश्यकता थी जो राज्य के कलात्मक परिवेश की अभिवृद्धि कर राज्य को सुदृढ़ करते। रानी मूसी (खवासवाल) एक पुत्र और एक पुत्री छोड़कर स्वर्गवासी राजाजी के साथ सती हो गयी थी। इनके पुत्र बलवंतसिंहजी ने राज्य के लिए झगड़ा किया। अंत में अंग्रेज सरकार ने विरोध मिटाने के लिए सन् १८२६ में राज्य का उत्तरीय भाग बलवन्तसिंहजी को दिला दिया। वे उस प्रान्त के राजा हुए और तिजारे को उन्होंने राजधानी बनाया। विनयसिंहजी ने अलवर मे महल, छतरी, विनय-विलास आदि बनवाकर उसे कलात्मक दृष्टि से सुसपन्न किया।

नीकच और कोनानी के मेवों ने विनयसिंहजी के समय में भी उपद्रव मचाया, पर इन्होंने दोनों स्थानों पर गढ़ बनवाकर इनका दमन किया। इन्होने न्यायालय और व्यवस्था बोर्ड स्थापित किये, जिनमें राजनीति और धर्मानुसार सुनवाई होने लगी। सन् १८३८ तक हिन्दी-भाषा तथा नागरी लिपि में राज्य कार्य चलता रहा। इसके अनन्तर दिल्ली मे शाही पदाधिकारी इस राज्य मे आकर नौकर हुए, जिन्होंने फारसी भाषा का व्यवहार और प्रचार किया। सन् १८५७ के गदर में अलवर राज्य ने अंग्रेजों की सहायता कर गदर को दबाने में योगदान दिया। थोड़े दिन पीछे ही सन् १८५७ में विनयसिंहजी का देहावसान हो गया।

महाराजा विनयसिंहजी ने बड़े सुख, शान्ति और निर्विघ्नता के साथ राज्य का सुख भोग किया। कलात्मक अभिरुचि के कारण ये अधिक खर्चीले थे, जिससे राज्य-कोष में कमी रहती थी और प्रजा की आर्थिक स्थिति भी दयनीय रहती थी। जो हो अलवर के राज्यकाल में विनयसिंहजी महत्वपूर्ण राजा हो गये हैं, जिनके व्यक्तित्व का विवेचन आगे करेंगे।

श्री सवाई शिवदानसिंहजी—

महाराजा विनयसिंहजी के उपरान्त श्री सवाई शिवदानसिंहजी गद्दी पर बैठे। ये विद्या प्रेमी एवं संगीत विद्या में विशेष अभिरुचि रखते थे। इनके समय मे दरबार में संगीत का जमघट लगा ही रहता था। यहाँ तक कि अपनी विलासी प्रवृति के कारण अनेक कलावन्तों, रंडियो एवं चित्रकारों को राज्य-प्रश्रय दिये हुए थे। चाहे उनकी प्रवृति विलासी थी, किन्तु उनके समय मे संगीत और चित्रकला की अलवर राज्य में निश्चय ही उन्नति हुई। गदर के पीछे जब भारत मे शान्ति स्थापित हुई तब सन् १८६३ में अंग्रेजी सरकार की ओर से आगरे में शाही दरबार हुआ। इस महती राजसभा में महाराजा शिवदानसिंहजी ने अपने सारगर्भित भाषण से सभासदो एवं वायसराय को मुग्ध कर लिया था।

ये अपनी विलासी प्रवृति के कारण बदखर्च अवश्य थे, जिसके कारण राज्य की आर्थिक स्थिति डावांडोल थी। अंग्रेजी सरकार को हस्तक्षेप कर सन् १८७० में राज्य का कार्य भार अपने हाथ में लेना पड़ा। मेजर केडल यहाँ के पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त होकर आये तथा राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अनेक सुधार किए। अंग्रेजी सिक्का भी इन्ही के समय से चालू हुआ। सन् १८७४ में महाराजा का स्वर्गवास हो गया।

श्री सवाई मगलसिहजी—

मगलसिहजी १५ वर्ष की अवस्था मे राजगद्दी पर बैठे तथा इसी समय मे अग्रेजी हिन्दी और उर्दू का विशेष अध्ययन किया। राज्य मे शिक्षा के प्रसार के लिए इन्होने अनेक प्रयत्न किए। सन् १८७७ के भारत व्यापी महादुर्भिक्ष में इन्होंने अकाल पीडितो की सहायता कर अपनी उदारता का परिचय दिया। प्रजा के हित के लिए राज्य कोष मे धन एकत्र किया तथा समाज सेवा मे उसे लगाया। महाराजा को साधु, महात्मा और पडितों से मिलने तथा उनसे वार्तालाप करने का बडा चाव था। विवेकानन्दजी विदेश जाने से पूव अलवर नगर मे आये थे तब महाराज ने धम सम्बन्धी अनेक प्रश्न उनसे पूछे थे। ३३ वर्ष की अवस्था मे महाराज का अचानक नैनीताल मे स्वर्गवास हो गया, किन्तु १८ वर्ष के शासन मे ही विद्या प्रचार एव प्रजा-हित सबधी बहुत से सुधार करके अपनी तथा राज्य की कीर्ति को वे अमर कर गये।

श्री महाराजा जयसिहजी—

अलवर के इतिहास मे महाराजा जयसिहजी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। १० दिसम्बर १६०३ को इन्होंने राजगद्दी सम्भाली। इनसे पूर्व पोलिटिकल एजेण्ट कौंसिल की सम्मति से राज्य कार्य चलाते थे। उन्ही दिनो सन् १८६८ मे मिस्टर ओडवायर ने भूमि का २० वर्षीय सुधार किया और सन् १६०१ मे रियासतो मे सव प्रथम अलवर राज्य मे डाकखाने खुले जिससे जनता के लिये डाक का सुप्रबध हुआ।

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति महाराज का विशेष प्रेम था। उन्होंने शासन-कार्य हेतु राज्य भाषा हिन्दी को बनाने की आज्ञा दी। राज्य मे विद्या प्रचार के लिये महाराज देव ने १६१६ मे निशुल्क शिक्षा दी जाने की आज्ञा प्रचलित की तथा उच्च शिक्षा हेतु राजर्षि कॉलेज की स्थापना की। अनेक सामाजिक सुधार राज्य मे लागू किए, जिनमे बालविवाह और वृद्धविवाह का निषेध किया। मादक वस्तुओ से जनता को बचाने के लिये उन पर भारी टैक्स लगाया। खाद्य पदार्थों मे मिलावट न हो पावे, इसके लिये उन्होने कठोर नियम बनाये। मनुष्यों के साथ क्या पशुओ तक के साथ निर्दय व्यवहार को उन्होने रोकने के लिये नियम बनाये। सन् १६२४ मे जागीर-नियम स्थायी कर, राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ किया।

महाराज का व्यक्तित्व अत्यधिक प्रभावशाली था, जिसका अलग से विवेचन करेंगे। यूरोपवास मे अचानक ही सीढियो पर गिर जाने से महाराज का देहावसान हो गया।

श्री सवाई तेजसिहजी—

महाराज के उपरान्त थाना ठिकाने से गोद आकर श्री तेजसिहजी गद्दी के हकदार हुए। अपनी सरल एव सादा प्रकृति से आपने राज्य का कार्यभार सम्भाला और देशी रियासतों के विलीनीकरण तक अलवर पर राज्य करते रहे। इस प्रकार लगभग दो सौ वर्षों के राज्यकाल मे नरूवशियो ने अलवर राज्य की बागडोर अपने हाथो मे सभाली और राज्य को उन्नत एव

समृद्धशाली बनाया। स्वतन्त्रता के उपरान्त पहले मत्स्य राज्य की इकाई के रूप में और फिर विशाल राजस्थान में अलवर का छोटा सा राज्य भी विलीन हो गया। यह है अलवर का संक्षिप्त इतिहास जो अब भी अंधकार की अनेक पर्तों मे छिपा पड़ा है।

नगर जिनको इतिहास ने देखा

अलवर जिले में कुछ ऐसे नगर या कस्बे है जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इन कस्बों एवं नगरों के ऐतिहासिक अध्ययन से इतिहास की अनेक गुत्थियां ही नही सुलझती वरन् उनका वैभव एव उनकी दु.ख-सुख गाथा और सास्कृतिक समृद्धि का भी पता चलता है। मत्स्यपुरी अर्थात् आधुनिक माचैड़ी, राजगढ़ तिजारा और अलवर ऐसे ही ऐतिहासिक कस्बे एवं नगर है जिनके वैभव की गाथा इतिहास की पर्तों मे छिपी पड़ी है।

मत्स्यपुरी—

राजगढ़ से तीन मील पूर्व की ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ एक छोटा सा कस्बा। नाम माचैड़ी। पहाड़ी पर एक मध्यकालीन महल और उसके नीचे कुएँ, बावड़ियाँ, मन्दिर आदि की प्राचीनता को समेटे हुए मत्स्यपुरी का वैभव। ऐतिहासिक दृष्टि से मत्स्यपुरी अर्थात् माचैड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाभारत काल में मत्स्य प्रदेश का उल्लेख ग्रंथों मे मिलता है। उस समय उत्तरी भारत अनेक राज्यों मे बँटा हुआ था। बौद्ध-साहित्य मे उस युग के १६ महाजनपदों के नाम मिलते है, जिनमें काशी, कौशल, मगध, चेदी, कुरू, पांचाल, अवंति, गंधार आदि के साथ 'मत्स्य' और शूरसेन के भी नाम है। मत्स्य महाजनपद की राजधानी 'विराटनगरी' अर्थात् वैराठ थी और शूरसेन की मथुरा।

पुराणों के अनुसार प्राचीनकाल में मधु दैत्य के नाम पर मधुपुरी (मथुरा) शूरसेन देश की राजधानी थी। मधु के पुत्र धुंधु को मार कर सूर्यवंशी राजा यहां पर राज्य करने लगे। धुंधु के नाम पर ही इस प्रदेश का नाम ढुंढार पड़ा। इसके उपरान्त चन्द्रवंशी राजा उपरिचर के पुत्र मत्सिल का इधर राज्य हुआ उसने मत्स्यपुरी को अपनी राजधानी बनाया। राजा मत्सिल के पुत्र विराट ने विराट नगरी बसा कर उसे राजधानी बनाया। इस प्रकार राजा मत्सिल के नाम पर इस प्रदेश का नाम मत्स्य पड़ा।

प्राचीन काल में मत्स्य-प्रदेश के निवासी अपनी वीरता और साहस के लिए बड़े प्रसिद्ध रहे है। मनु ने अपनी 'मनुस्मृति' में यहाँ के लोगों को उन वीरों में लिखा है, जो सेना के हरावल (सेनानायक) होने के योग्य होते थे। चीनी-यात्री ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा के विवरण में लिखा है कि इस देश के लोग बहादुर और साहसी थे। मत्स्य-प्रदेश शत्रुओं द्वारा सुरक्षित और एक गुप्त प्रदेश था। यही कारण है कि १३वें वर्ष के अज्ञातवास मे पाण्डव इन्ही प्रदेशों में रहे थे।

माचैड़ी का सामरिक महत्त्व होने के कारण यह स्थान राजनैतिक दृष्टि से विशेष महत्त्व का रहा है। कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों ने ९वीं शताब्दी में दूर-दूर तक अपना राज्य फैलाया,

जिसमे मत्स्यपुरी के अधिकार की बात इतिहास मे आती है। ६वी और १०वी शताब्दी मे कन्नौज के राजाओ के अधिकार मे उनके सामन्तो द्वारा सुचालित माचॅडी का राज्य ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय रहा है। गुर्जर-प्रतिहारो का कन्नौजी वैभव धीरे-धीरे विलुप्त होते ही उनके वशजो ने माचॅडी, देवती, राजौरगढ आदि छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य बना लिए। दिल्ली मे फीरोजशाह के शासनकाल मे (१५वी शताब्दी) यहाँ पर गुजर-प्रतिहार (बडगूजर) क्षत्रियो का बोलबाला था, जिनमे राजा आसलदेव के पुत्र महाराजा गोगादेव महान् पराक्रमी व्यक्ति थे। इनकी राजधानी माचॅडी या मत्स्यनगरी थी जो उन दिनो वैभवशाली नगरी थी। उस काल के जितने भी कूप, बावडियाँ, तालाब यहा निर्मित हैं, उनमे जनता की दानशीलता एव परोपकार का अच्छा परिचय मिलता है। सम्राट अकबर के शासनकाल तक गुर्जर-प्रतिहारवश ही यहा पर शासन करता रहा। अपने स्वाभिमान के लिए ये राजा प्रसिद्ध रहे हैं। राणा प्रताप की भाति इन राजाओं ने भी अकबर की आधीनता स्वीकार न की। इसके बदले उन्होंने अपने सूर्यास्त को सहन कर लिया। इस वश के राजा राजपाल के पौत्र तथा राना कुभ के द्वितीय पुत्र अशोक (उपनाम राजा ईश्वरमल) ने बादशाह अकबर को डोला (कन्या) देकर सबध नही किया तथा आमेर नरेश मानसिहजी से बिगाड हो जाने के कारण अन्त मे दिल्ली और जयपुर की सेना ने यह प्रान्त बडगूजरो से छीन लिया तथा इसको आमेर राज्य के अन्तर्गत मिला दिया गया। नरूवश के राव कल्याणसिह ने मिर्जाराजा जयसिह को प्रसन्न करके कामा-खोहरी का राज्य लिया तथा वहा के मेवो का दमन किया। मेव दमन के पश्चात् सन् १६३६ मे इस प्राचीन मत्स्य देश की राजधानी माचॅडी को जागीर स्वरूप प्राप्त किया उस समय यह जागीर २॥ गाँव वाली थी। जिसमे माचॅडी, राजगढ और आधा राजपुर था। राव कल्याणसिहजी के वशजो का भाग्य प्रबल था। राव कल्याणसिह के पश्चात् राव उग्रसिह माचॅडी के अधिपति नियुक्त हुए। राव उग्रसिह के पीछे इनके पुत्र राव हठीसिह और राव मुकन्दसिह क्रमश माचॅडी की गद्दी पर बैठे। इनके पश्चात् राव कल्याणसिह के पौत्र और आनन्दसिह के पुत्र राव तेजसिह माचॅडी के स्वामी हुए। तेजसिह के पश्चात् जोरावरसिह और उनके ज्येष्ठ पुत्र मोहब्बतसिह माचॅडी के अधिपति बने तथा इनके अनुज जालिमसिह को बीजवाड की जागीर प्राप्त हुई।

राव मोहब्बतसिंह का भाग्य प्रबल था। वे धर्मानुरागी एव प्रतापी पुरुष थे। इन्होंने ही अलवर राज्य के सस्थापक महाराव प्रतापसिहजी को जन्म दिया। सवत् १८१३ के युद्ध मे मोहब्बतसिहजी का देहावसान हो गया तथा उनके पश्चात् श्री प्रतापसिहजी माचॅडी के अधिपति बने। महाराव प्रतापसिह ने अपने पिता के स्मारक स्वरूप एव विशाल छतरी का निर्माण करवाया जो अब भी राजगढ मे विद्यमान है। राव प्रतापसिहजी ने यहा देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया। राजगढ को और उसके उपरान्त अलवर को अलवर राज्य की राजधानी बनाने के कारण माचॅडी एक गाव मात्र रह गया, पर बडगूजरो और नरूवशियो के हृदय मे आज भी माचॅडी के लिए सम्मान है। इस प्रकार महाभारत काल से लेकर १८वी शताब्दी के उत्तरार्ध तक माचॅडी नगर विशेष महत्त्वशाली रहा है। आज भी बडगूजरो का पहाडी महल, रानी का कुआँ, बावडी, मन्दिर आदि माचॅडी के अतीत की गाथा सुना रहे हैं।

राजगढ़—

पहाड़ और पहाड़ ! तीन ओर पहाड़ों से घिरा तथा बाग और बगीचों का नगर राजगढ़ मत्स्यपुरी अर्थात् आधुनिक माचेड़ी से ४ मील पश्चिम की ओर है। बाघोला बांध से आगे पहाड़ी पर सुरक्षित एवं सुदृढ किला जिसके नीचे ऊँची-ऊँची श्वेत अट्टालिकाएँ, महल और मन्दिर। चौपड़ का छोटा सा बाजार। आज भी वंशीपत्थर से जड़ी हुई चौपड़ की सड़कें और सड़कों के दोनों ओर कतार बांधे दूकाने ग्राहकों का इन्तजार करती है।

राजगढ़ बाग और बगीचो का शहर है। नगर के चारों ओर आम, नीबू, जामुन आदि के बगीचे दूर-दूर तक फैले हुए हैं। बगीचों के बीच में सुन्दर छतरियां, महल और फव्वारों की व्यवस्था राजगढ़ के सामंती वैभव की जर्जरित अवस्था की झांकी आज भी देती है। शहर के पीछे पुराना और प्रसिद्ध इतिहास है जो मीणाओ, बटगूजरो, कुशवाहों आदि से सम्बन्धित है।

ऐसा लगता है कि ९वी शताब्दी से पूर्व तक राजगढ़ तथा आसपास के इन स्थानों पर मीणा जाति अधिक प्रभावशाली होने के कारण यहा राज्य करती थी। आमेर, दौसा तथा क्यारा नगरी आदि मीणाओ के प्रमुख गढ़ थे, अतः राजगढ भी उनके अधिकार मे हो तो कोई अत्युक्ति नही है।

गुर्जर-प्रतिहारों ने कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया तथा मत्स्यपुरी और राजगढ़ तक अपने राज्य का विस्तार कर राजगढ को विशेष महत्त्व दिया। गुर्जर-प्रतिहारवंशीय राजा वार्घसिंह जिसको अब लोग बाघराज के नाम से देवता के समान पूजते हैं और जिसकी प्रतिमा अब भी विद्यमान है, ने राजगढ नगर की नीव डाली थी। वार्घसिंह अथवा बाघराज (व्याघ्रराज) का राजगढ के इतिहास मे अद्वितीय स्थान है। वे एक परम प्रतापी पुरुष थे। उनके नाम से ही उनके प्रतापी होने की बात ध्वनित होती है।

राम, कृष्ण, हनुमान, बुद्ध, महावीर के मन्दिर तो सम्पूर्ण देश मे प्राप्त है ही किन्तु यहाँ पर ऐसे व्यक्तियों की भी पूजा होती रही है जो परहित को अपना परम धर्म मानते है, ऐसे हैं बाघराज या व्याघ्रराज। इनकी अर्चना इस क्षेत्र में एक देवता की भांति होती है। प्रत्येक शुभकार्य मे इनको अग्रगण्य माना जाता है। यहां की जनता की इनमें गहरी आस्था, श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास है। ये महापुरुष है जिन्होंने राजगढ़ के आसपास बाघोला आदि स्थानो को बसाया। बाघोला बांध का नामकरण भी आपके ही नाम पर पड़ा है। लार्ड कनिंघम ने भी इनका वर्णन किया है।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि यहां की जनता प्रत्येक मांगलिक कार्य में बाबा बाघराज की पूजा करती है तथा अपने कार्य को मंगलमय एवं शान्तिमय होने का अनुग्रह प्राप्त करती है। विवाह के पश्चात् वर-वधू की आशीर्वाद प्राप्ति, पुत्रोत्पत्ति के शुभावसर पर पूजा, कूप-पूजन के दिन अर्चना तथा अन्य मनोकामनाओं की सिद्धि के लिए स्वस्तिक चढाना आदि, यहां की जनता अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती है।

बाबा बाघराज की इतनी प्रसिद्धि के सम्बन्ध में जनता में अनेकों किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुति प्रचलित है कि बाबा बाघराज ने जो कि कभी राजा बाघसिंह के रूप में शासक रहे थे, अपनी प्रजा को चोर, लुटेरे तथा डाकुओं के भय में दूर करने के लिए 'शेर' बनने की मन्त्रसिद्धि प्राप्त की, किन्तु मन्त्रसिद्धि के अनुसार न चलने के कारण पत्थर का शेर बन जाना पड़ा। चोर रात्रि में तब भी भयभीत रहते थे, इसलिए चोरों ने उस प्रस्तर की प्रतिमा को खण्डित किया। यही कारण है कि आज उस प्रतिमा की गर्दन नहीं मिलती तथा गर्दन रहित प्रतिमा की ही अर्चना की जाती है।

बाबा बाघराज के मन्दिर के पिछवाड़े पर तीन जैन प्रतिमायें (दिगम्बरी) अवस्थित हैं, जो यह सिद्ध करती हैं कि यहाँ पर कभी जैन-धर्म का अच्छा प्रभाव रहा होगा। कुछ जनता भ्रमवश उन प्रतिमाओं को ही बाघराज की प्रतिमा समझकर पूजा करती है। जो भी कुछ हो, बाघराज की पूजा यहाँ पर एक पूजनीय देवता के सदृश होती है। ये ही राजगढ के प्रथम संस्थापक माने जाते हैं। इनके पश्चात् राजा राजदेव ने इस बस्ती को विस्तृत एवं वैभवयुक्त किया तथा इस नगर को राजगढ नाम दिया। तभी से इस प्राचीन नगर के उत्थान-पतन की अनेक गाथायें प्रचलित रही हैं।

राजगढ की प्राचीनता के उपकरण अब भी यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। बाघोला बाध के कटाव पर निकली हुई जैन प्रतिमाओं (जिनका पूर्व-परिचय दिया जा चुका है) को देखकर प्राचीन समय की शिल्पकला तथा जनता की तत्कालीन धार्मिक भावनाओं का सहज परिचय मिलता है।

औरंगजेब के शासनकाल में आमेर के नरेश श्री मिर्जा राजा जयसिंहजी थे, अतः राजगढ भी उनके राज्य में रहा। इस समय से राजगढ की अवस्था में परिवर्तन हुआ। माचैड़ी, राजगढ नरूवंशियों की जागीर में थे ही, अतः पहले से ही यहाँ की शासन व्यवस्था जयपुर राज्य के तत्वावधान में होते हुए भी माचैड़ी के जागीरदारों के हाथ में अधिक रही।

राजगढ के इतिहास में १८वीं शताब्दी के अन्त में परिवर्तन आया। महाराव राजा प्रतापसिंह ने समय पाकर अलवर का अलग राज्य स्थापित किया और सर्व प्रथम राजगढ को अपनी राजधानी बनाया। महाराव प्रताप सिंहजी के बाल्यकाल से ही ऐसे लक्षण प्रकट होते थे कि वे एक प्रतापी पुरुष होंगे। राजगढ एवं माचैड़ी वन और उपत्यकाओं की भूमि है। हिंसक जन्तुओं का उस समय कोई अभाव नहीं था। महाराव प्रतापसिंहजी के लिए एक मात्र सैर करने का यही स्थान था। वे इन जन्तुओं का शिकार भी करते थे, जिन्होंने उनको निडर व वीर बनाने में बहुत सहायता की। प्रथम तो प्रतापसिंहजी ने जयपुर नरेश का संरक्षण ग्रहण किया, बाद में भरतपुर नरेश जवाहरसिंह का, फिर अवसर प्राप्त कर पृथक् से अलवर राज्य की स्थापना की।

महाराव प्रतापसिंहजी एक कुशल शासक थे। उन्होंने सन् १७७० में राजगढ का नवीन निर्माण कराया तथा इसको ही अपनी राजधानी बनाया। राजगढ का दुर्ग इनका ही बनवाया

हुआ है। कुछ काल पश्चात् अपने चातुर्य से अलवर का किला भी भरतपुर वालों से हथिया लिया। इस प्रकार प्रतापसिंहजी का प्रताप दिनों-दिन बढ़ने लगा। इनका अधिकांश समय राज्य के सुदृढ़ करने में ही व्यतीत हुआ।

सन् १७९० मे रावराजा प्रतापसिंहजी का स्वर्गवास हो गया तथा उनके स्थान पर उनके दत्तक पुत्र बख्तावरसिंहजी सिंहासनासीन हुए। ये अत्यन्त कला प्रेमी थे। राजगढ़ के शीश-महल का निर्माण सम्भवतः इनके समय में ही हुआ, जो अलवर शैली की चित्रकला में श्रेष्ठ उदाहरण है। इनके समय में भी राजगढ राजधानी रहा।

रावराजा बख्तावरसिंहजी के पश्चात् श्री विनयसिंहजी (सन् १८१४) गद्दी पर बैठे। इनके समय से राजगढ से राजधानी को हटा लिया गया, किन्तु उसके महत्त्व मे कोई कमी नही आई। श्री विनयसिंहजी ने राजगढ के चौतरफा एक परकोटा तथा खाई बनवाई जो सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्त्व की थी।

महाराजा शिवदानसिंहजी (सन् १८५७-१८७४) और महाराजा मंगलसिंह (१८७४-१८९२) के समय में भी राजगढ की बहुत उन्नति हुई। मंगलसिंहजी के समय में राजगढ़ को तहसील बनाया गया।

महाराजा जयसिंहजी (१८९२-१९३७) के शासनकाल में राजगढ को बहुत महत्त्व प्रदान किया गया। आपके शासन में सन् १९०१ में राजगढ़ मे पत्रालय (Post office) खोला गया और सन् १९६१ में अस्पताल की स्थापना की, जिससे जनता को अनेकानेक सुविधाएँ उपलब्ध हुई। समाज की अनेक कुरीतियों को समाप्त करने के भी महाराज जयसिंहजी हिमायती थे। महाराज तेजसिंहजी ने भी अपने पूर्वजों की भूमि राजगढ को विस्मृत नही किया तथा उसकी प्रगति में सहायक हुए।

और अब स्वतंत्रता है। जनता का राज्य, जनता के लिए और जनता द्वारा। शासक का कोई प्रश्न ही नहीं। सर्वांगीण विकास। शिक्षा का प्रसार, प्रचार, विकास एवं प्रगति की अनेक बातें राजगढ के इतिहास में जुड़ गई। किलकारी मारती हुई रेल तथा पक्की सड़कों, बावड़ियों एवं महकते उद्यानों से सुशोभित राजगढ़ नगरी दिन-प्रतिदिन विकास की ओर बढ रही है।

तिजारा—

अलवर की अनेक कहानियों से संयुक्त एवं वियुक्त तिजारा नामक नगर अलवर नगर से ३४ मील दूर उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है। यह अलवर के प्रमुख नगरों में से एक है, तथा इसकी भी उतनी ही गौरवमय गाथायें प्रचलित हैं, जितनी कि अलवर की। इससे सम्बद्ध अनेकों जनश्रुतियाँ इसकी प्राचीनता की द्योतक है।

अलवर की उत्तर-पश्चिम सीमा का प्रहरी तिजारा के बसने के सम्बन्ध में भी कई जन-प्रवाद प्रचलित है। पितृभक्त श्रवणकुमार की तीर्थयात्रा मे एक विश्राम स्थल यह भी था, जहाँ

पर कि उसने अपनी कावड को टिकाकर माता-पिता से विराये की याचना की थी। कुछ लोग इसको महाभारत कालीन प्राचीन त्रिगर्त नगर का अपभ्रष्ट रूप तिजारा बतलाते हैं। कनिंघम के लेख एव आर्कियालोजिकल सर्वे भाग २० से ज्ञातव्य है कि महाभारत काल मे यदुवशी तेजपाल त्रिगर्त के राजा सुशर्मा के पास ओद्दिष्ट नगर था। उसने यहाँ कि भूमि को नगर वसाने योग्य जानकर तिजारा नगर बसाया। अन्य स्थान पर कनिंघम तिजारा को बसाने का श्रेय तोमर-वशी अनङ्गपाल द्वितीय के पुत्र तेजपाल को प्रदान करता है। जो कुछ भी हो, तिजारा एक ऐतिहासिक नगर है।

तेजपाल के समय मे ही इस क्षेत्र मे इस्लाम का पदार्पण हुआ, जिसके फलस्वरूप बाद मे चलकर यह क्षेत्र मेवात के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'मिराते मसूदी' के अनुसार तिजारे के शासक तेजपाल एव उसके भाई धधगट के शासक करणपाल ने ४२० हि० (१०३० ई०) म मुहम्मद के भानजे मसूद की सेना पर अचानक आक्रमण किया तथा मीर इस्माइल बारह हजारी को मार दिया। इसके कारण मुस्लिम सेनाओं ने तेजपाल को वन्दी बना लिया।

तिजारा का बहुत सा इतिहास अन्धकार के गर्त मे समाया हुआ है। खानजादो के समय मे इस नगर को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई तथा इस समय से ही इसका इतिहास मिलता है। खानजादो के पूर्व पुरुष हिन्दू ही बताये जाते है, जिन्होंने फीरोज तुगलक के समय मे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तथा राज्य मे अच्छी पदवी प्राप्त की।

सैयदो के शासनकाल मे भी दिल्ली सल्तनत की सेनायें कई बार तिजारा की तरफ आयी। सैयदो के शासन के अन्तिम दिनो मे मेवात के खानजादो की शक्ति बहुत बढ गयी। बहादुरखाँ के पोते जलालखा के उत्तराधिकारी ने दिल्ली के समीपस्थ लाडूसराय तक अपनी शक्ति का परिचय दे दिया था। यह देखकर लोदीवश के सस्थापक बहलोल लोदी ने स० १४५१ मे मेवात पर आक्रमण किया एव अहमदखाँ से सात परगने छीन लिये, जिनमे तिजारा मुख्य था। इस समय इन परगनो का शासन-केन्द्र तिजारा ही बना।

सिकन्दर लोदी ने तिजारे का शासनभार अपने अनुज अलाउद्दीन लोदी को सौंपा। इसने तिजारा मे एक कच्चा बाघ तथा विशाल भर्तृहरि-गुम्बद का निर्माण कराया। कुछ लोग इस समय तक भी यहाँ पर खानजादो का शासन मानने के ही पक्षपाती हैं। वे अलाउद्दीन के स्थान पर अलावलखाँ का शासन मानते हैं। इसके पश्चात् बाबर ने तिजारा को जागीर के रूप मे अपने बडे सेनापति चिनतैमूर सुलतान को बख्श दिया। बाबर के पुत्र मिर्जा हिन्दाल ने अलवर व तिजारा को जागीर के रूप मे प्राप्त कर यहाँ पर सन् १५३० से १५४० तक शासन किया।

मलिक अलाउद्दीन मसकन गाजी जो एक खानजादा था, तिजारे का शासक रहा, जिसका मजार 'मलिक जी का गुम्बज' आज भी पुरानी निजामत के पास बना हुआ है। आजकल इस मजार की चारदीवारी मे स्थानीय म्युनिसिपल कमटी ने जानवरो का काजी हाउस बनवाया हुआ है।

बाबर की आत्मकथा से स्पष्ट है कि तिजारा राजनैतिक दृष्टि से मेवात का केन्द्र बन गया था। बाबर ने स्वयं लिखा है कि उसके आक्रमण से पूर्व तिजारा २०० वर्ष से हसनखाँ मेवाती के पूर्वजों की राजधानी था। हसनखाँ मेवाती के पिता अलावलखाँ ने अपनी यादगार के लिए तिजारे का ही एक उपनगर अलावलपुर बसाया जो अब खंडहर के रूप में मिलता है। हसनखाँ मेवाती ने सन् १५२७ में खानवा के युद्ध में राणा सांगा की ओर से बाबर से युद्ध किया एवं उसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। ७ अप्रैल सन् १५२७ को बाबर अलवर में आया तथा तिजारा को जागीर के रूप में चिनतैमूर सुलतान को दिया। चिनतैमूर सुलतान उसका बहुत बड़ा सेनापति था एवं काबुल से ही उसके साथ आया था।

बाबर के पुत्र मिर्जा हिन्दाल ने, जिसे अलवर व तिजारा जागीर में मिले थे, इस नगर में और भी उन्नति की। हिन्दाल ने काजी का बाँध, लाल मस्जिद तथा सराय बनवायी। दीवानखाना जो पुराने महल कहलाते हैं, इसी के द्वारा बनवाये गये थे। असलीमपुर के पास अन्धेरी-उजाली नामक बंगला बनाकर वहाँ बाग लगवाया, जिसकी दीवारें अब भी चूने की मौजूद हैं। शेरशाह सूरी द्वारा निकाल दिये जाने के कारण लाल मस्जिद अधूरी पडी रह गयी। मिर्जा हिन्दाल के खजान्ची तोताराम मोहनदास थे। जिन्होंने तिजारा से नूह तक एक-एक कोस पर पीने के लिए पानी की बावड़ियाँ बनवायी। बाग नौमहला भी इन्होंने ही लगवाया था।

अकबर का राज्यकाल भी तिजारे के लिए कम गौरव का नहीं रहा है। आइने अकबरी से ज्ञात होता है कि—"तिजारा एक स्वतंत्र सरकार था तथा इसके आधीन इन्दौर, उझीना, उमरा-उमरी, बिसरु, पुर, पिनङ्गकान, घासोड़ा, तिजारा, झमरावत, खानपुर, साकरस, सांथाहेड़ी, फीरोजपुर, फतेहपुर, और कोटला के परगने थे। तिजारा जिले का केन्द्र था। तिजारा सरकार की १८ तहसीलों में ७४०००१ बीघा ५॥ बिस्वा जमीन थी, जिसका लगान १७७००४६० दाम था। इस सरकार के १२२७ सवार व ६६५० प्यादों में से तिजारे में ५०० सवार व २००० सिपाही रहते थे।" अकबर के समय में हम्माम बना था, जिसका लेख अलवर संग्रहालय में सुरक्षित है।

१५५६ ई० में रिवाड़ी निवासी हेमू को अकबर द्वारा कत्ल किए जाने पर मलान मीर मुहम्मद तिजारे आया और तिजारा तथा अलावलपुर के तमाम पठानों को कत्ल कर दिया। उसने यहाँ पर रखे हेमू के सामान पर कब्जा किया। हसनखाँ मेवाती की भतीजी से अकबर ने विवाह किया।

अरजङ्ग तिजारा से प्रकट होता है कि हजरत गदनशाह भी अकबर के समय में ही तिजारे आये थे। इनका मजार तिजारे के उत्तर में टपूकड़ा जाने वाली सड़क के दाहिनी ओर बना हुआ है। दरगाह गजीगदन के लिए अकबर ने १५० बीघा जमीन दी थी। सायर चबूतरा से सवा पैसा प्रतिदिन के हिसाब से रोशनी करने को दरगाह के लिए मिलता था। अकबर के शासनकाल में ही लालदास नामक रामभक्त मेव को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा

था। रामदास प्यारेलाल के पूर्वजो ने लालदास का मन्दिर बनवाया जो इस समय बाग-उद्यान के सामने स्थित है। शाहजहा के शासनकाल मे सलील उल्लासखाँ को तिजारे का हाकिम नियुक्त किया, जिसने गदनशाह की खानगाह बनवाई थी। औरङ्गजेब के शासनकाल मे चौधरी इकरामखा खानजादा ने तिजारे के हाकिम के नक्कारा व निशान छीन लिए। इस घटना से इकरामखा को कत्ल कर दिया गया।

औरङ्गजेब के पश्चात् मुगल साम्राज्य पतन की ओर उन्मुख होता है। इस समय भरतपुर के राजा चूडामन जाट ने तिजारा व अलावलपुर पर आक्रमण किया तथा यहा की जनता व सम्पत्ति को क्षति पहुचाई। उस समय से ही अलावलपुर निर्जन पडा हुआ है।

भरतपुर के राजा सूरजमल जाट ने किशनगढ का किला तथा हसनपुर के मियां मुरादशाह से प्रसन्न होकर दरगाह हसनपुर का बाहर का दरवाज़ा बनवाया। यह दरगाह तिजारे से पूर्व मे ४ मील की दूरी पर है।

सन् १७५७ मे झिवाने के राव बहादुरसिंह से जाटो ने झिवाना छीन लिया किन्तु नजफखाँ ने उनको निकाल दिया। नजफखा की मृत्यु के पश्चात् माधव राव सिंधिया ने मुहम्मदबेग हमदानी को परास्त कर मेवात पर अधिकार कर लिया। इसी बीच मे उसे सिक्खो द्वारा भी लूटा गया। सन् १७६१ मे तिजारा पुन मराठो के आधिपत्य मे चला गया। यहाँ के शासक प्रबन्ध के लिए उन्होने दो पण्डित तथा शाहबाद के मुसाहिबखाँ खानज़ा देको छोडा। शीघ्र ही मुसाहिबखा की अपने सहायक तिजारे के जवाहरखा से ठन गयी। यह देखकर कुछ मराठा अफसर नियुक्त किए गए। थोडे दिन जाटों के अधिकार मे रहने के पश्चात् सन् १८०४ मे आपा खण्डेराव मराठे ने इस पर अधिकार कर लिया तथा जार्ज थामस को यहाँ का अफसर नियुक्त किया, किन्तु मराठो का शासन अधिक दिन तक नही चल सका। शकर आश्रमगढ मे भगवान शकर की प्रतिमा मराठो द्वारा ही स्थापित की गई थी।

इन दिनो मेवो ने तिजारे को लूटने के लिए हमला किया तथा दो मास तक झगडा चलता रहा। अन्त मे दीवान हरीसिह तथा दलेलखाँ खानज़ादे ने मेवो को समझा बुझाकर और यहाँ के बनियो से कुछ पैसे दिलाकर तिजारा को बचाया।

सन् १८०५ मे लासवाडी के युद्ध मे मराठो की पराजय हुई तथा अग्रेजो की सहायता से द्वितीय अलवर नरेश बख्तावरसिहजी ने यहा पर अधिकार कर लिया। सन् १८१४ मे रावराजा बख्तावरसिहजी का देहान्त हो गया। मूसी महारानी (खवासवाल) एक पुत्र बलवन्तसिहजी तथा एक पुत्री चाँदबाई को छोडकर बख्तावरसिहजी के साथ सती हो गई। अब अलवर की गद्दी पर विनयसिहजी बैठे। राज्य की प्रजा बलवन्तसिह को अलवर का शासक बनाना चाहती थी, किन्तु राजपूतो के विरोध के कारण उसको सफलता नही मिली।

सन् १८२६ ई० मे ब्रिटिश सरकार ने बलवन्तसिहजी का अधिकार उचित ठहराया और चार लाख की आमदनी वाला राज्य का उत्तरीय भाग जिसमे तिजारा, किशनगढ, माढण, करनीकोट तथा मण्डावर के क्षेत्र सम्मिलित थे, रावराजा बलवन्तसिहजी के अधिकार मे दिए गए।

प्रारम्भ में किशनगढ़ तथा मांढ़रण के बदले में अलवर नरेश विनयसिंहजी की ओर से बख्तावरसिंहजी को दो लाख रुपया वार्षिक मिलता था शेष भाग पर वे स्वयं राज्य करने लगे तथा तिजारा को अपनी राजधानी बनाया।

बलवन्तसिंहजी ने तिजारे के एक पं० गुलाबसिंह को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इनका वंश दीवान खानदान के नाम से प्रसिद्ध है। इसी समय महाराजा बलवन्तसिंहजी ने अपने निवास के लिए एक भव्य महल का निर्माण करया।

सन् १८३५ में बलवन्तसिंहजी ने पहाड़ी पर किला बनवाने का शुभ मुहुर्त किया। महलों से किले तक सड़क का निर्माण कराया तथा सरदारों के निवास के लिए किले के नीचे ही अच्छे भवनों का निर्माण कराया। किले का समीपस्थ उद्यान भी आपके द्वारा ही आरोपित किया गया। पनिया अकाल के समय अलाउद्दीन लोदी द्वारा निर्मित कच्चे बाँध को बलवन्तसिंहजी ने पक्का कराया। यह बाँध जिन दो पहाड़ियों को मिलाता है, उनमें से पश्चिम वाली पहाड़ी पर यह किला बनाया गया है जिसमें तीन इमारतें बन गई हैं, किन्तु कुछ भाग अभी इन इमारतों में बनना शेष रह गया है। पूर्व की ओर की पहाड़ी की जड़ में एक प्राकृतिक स्रोत प्रवाहित है जो सूरजमुखी नाम से प्रसिद्ध है। इसका निर्मल जल तथा प्राकृतिक सौन्दर्य दूर-दूर तक की जनता को आकर्षित करता है। समीप की जनता द्वारा इसको धार्मिक महत्त्व प्रदान किया गया है तथा इसको तीर्थ के रूप में जाना जाता है। धार्मिक पर्वों पर १०-१५ मील तक के यात्री यहां स्नान करने आते हैं। इस पहाड़ी के ऊपर भर्तृहरिजी की एक गुफा है जो जनश्रुति के अनुसार देहली तक गई है।

महल के समीप ही बलवन्तसिंह ने एक सुन्दर उद्यान का आरोपण किया, जिसमें एक भव्य बंगले का निर्माण कराया गया। तिजारे के बाजार की पक्की सड़क भी बलवन्तसिंहजी ने ही बनवायी। राजा बलवन्तसिंहजी निःसन्तान सन् १८४५ में इस संसार को छोड़कर परलोक वासी हो गए।

महाराजा बलवन्तसिंहजी सदाचारी एवं धार्मिक विचारों के शासक थे। आप बहुत ही सामान्य जीवन व्यतीत किया करते थे। लोकप्रिय शासक एवं कुशल प्रबन्धकर्ता होने के साथ-साथ आपको जनता के हित का सदैव ध्यान रहता था। अपने शासनकाल के २० वर्षों में ही आपने नगर की बहुत उन्नति की।

महाराजा बलवन्तसिंहजी के उत्तराधिकारी के रूप में कोई भी शेष नहीं रहा अतः सन् १८४८ में तिजारा का राज्य पुनः महाराज विनयसिंहजी के अधिकार मे चला गया। यहाँ का सम्पूर्ण राजसी वैभव अलवर लाया गया। भवानी तोप तथा इन्द्रविमान तिजारा की सम्पत्ति ही हैं।

महाराजा शिवदानसिंहजी के शासनकाल में तिजारा व टपूकड़ा परगनों का बन्दोबस्त माल हुआ तथा इसी समय अंग्रेज अफसर कर्नल केटल साहब ने अलवर से तिजारा को सड़क बनवाई। आपने ही तिजारा में सरकारी स्कूल व अस्पताल की स्थापना की।

महाराजा मगलसिहजी के समय में सन् १८८१ मे तिजारा से खैरथल तक सडक का निर्माण कराया गया। इसी समय तिजारा मे एक भीषण अग्निकाण्ड हुआ।

महाराजा जयसिहजी के शासनकाल मे मेवो ने भूमिकर कम करवाने के लिए आन्दोलन किया। इस आन्दोलन को अग्रेजो ने साम्प्रदायिक रूप प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप जयसिहजी को राज्य से बाहर भेज दिया गया तथा शासन की बागडोर अग्रेज प्रधानमत्री ने अपने हाथ मे सभाली।

स्वतत्रता के आठ दिवस पूर्व ७ अगस्त सन् १९४७ को तिजारा मे मेव, खानजादे तथा अन्य मुसलमानो ने स्थानीय हिन्दू जनता पर आक्रमण कर दिया। ६ अगस्त को हिन्दुओ के छोटे-छोटे गाव जला दिए गए तथा ७ अगस्त को प्रात ही तिजारे पर आक्रमण किया गया। उपद्रवकारियो ने ठाकरदास महाजन की हवेली को तोडकर २६ आदमियो को मौत के घाट उतारा, जिससे रक्त की नदी बह उठी, किन्तु कुछ अधिकारियो के प्रयत्नों के फलस्वरूप तिजारा नगर को सुरक्षित कर लिया गया। १५ अगस्त सन् १७४७ को पुन जनता मे हर्ष की लहर दौडी तथा सम्पूर्ण देश मे स्वतत्रता जय-जयकार कर उठी। स्वतत्रता के पश्चात् तिजारा का चतुर्मुखी विकास हुआ है। यह है तिजारा नगर का ऐतिहासिक परिदृश्य।

अलवर—

पश्चिमाचल मे डूबता हुआ सूरज और शहर की ऊँची अट्टालिकाओ को छूता हुआ प्रकाश। शहर के पश्चिम मे उत्तर से दक्षिण को अरावली की पर्वत श्रेणियाँ दूर-दूर तक चली गयी हैं। ऊँचाई पर बसा किला और उसकी तलहटी मे लेकर दूर तक पसरा हुआ अलवर नगर! उत्तर मे धोबीघट्टे मे लेकर दक्षिण मे जय पल्टन तक और पश्चिम मे पहाड की तलहटी से लेकर पूर्व मे मूगसका तक फैला हुआ आधुनिक शहर। पर इस आधुनिकता के पीछे एक लम्बा इतिहास भी है, जिसने इस नगर के अनेक रूप देखे हैं।

उलवर, अलौर और अलवर नाम से बोले जाने वाले शहर के नामकरण का इतिहास भी कम मजेदार नहीं है। कितनी ही किवदतियाँ, अटकलबाजियाँ और कल्पना ऐसे नामकरण के पीछे छिपी हुई हैं, जिससे इस शहर के नामकरण की समस्या भी अनेक प्राचीन इतिहासकारो के लिये एक पहेली रही है।

इतिहासकार मीरहसन 'तवारीख परिस्ता' मे लिखते हैं कि खानजादे अलावलखाँ (सन् १५२५) ने अलवर बसाया, किन्तु उसके नाम से तिजारे के पास अलावलपुर नामक उपनगर बसाया जाना प्रसिद्ध है जो इस समय खण्डहर रूप मे पडा है। निकुम्भ राजाओ की पीढी मे 'आलवा' नामक राजा हुआ था, इसलिए कुछएक विद्वानो ने आलवा से अलवर नाम की सार्थकता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। मेजर पाउलट ने भी इन्ही बातो को गोलमोल ढग से रखा है। स्वर्गीय कनिंघम ने साल्व जाति से साल्वपुर या हल्वपुर और अलवर की व्युत्पत्ति मानी है। चौहान राजा आल्हणदेव ने अलवर बसाया यह कल्पना भी कम मजेदार नहीं है और

सबसे मजेदार तर्क है अलवर के ढाढी रहीम बक्श का कि अलवर का नाम अलाउद्दीन खिलजी द्वारा पड़ा। अरावली की पहाड़ियों की तलहटी मे बसा अलवर शहर 'अरवल' से अलवर के रूप में परिवर्तन हो गया हो तो कोई अचम्भा नही। अरावली से अलवर के नामकरण की सार्थकता अधिक तर्कसंगत लगती है। साहित्यिक इतिहासकार श्यामलदासजी ने अपने 'वीर विनोद' में 'अलपुर' (मजबूत शहर) से अलवर की व्युत्पत्ति मानी है।

उपर्युक्त सभी कल्पनाओं और अटकलबाजियो के विपरीत चांवड़दान के गीत से जो तथ्य प्राप्त हुए है वे ऐतिहासिक दृष्टि तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक तर्कसंगत ज्ञात होते है। आमेर के राजा काकिल देव के द्वितीय पुत्र अलघुरायजी ने बड़गूजरो का विध्वस कर सं० ११०६ में अपने नाम से अलवर शहर बसाया। अलघुरामजी वीर एवं महत्त्वाकाक्षी राजा थे। उनके उपरान्त उनका पुत्र परम्परा को कायम न रख सका और अलवर का राज्य निकुम्भों के अधिकार मे चला गया। अलघुरायजी के 'अल' शब्द को लेकर अलपुर और बाद मे अलवर नामकरण की सार्थकता समझ में बैठती है। ग्रामीण लोग अलवर का भी अलोर के रूप मे उच्चारण करते है तथा मेव लोग अलूर भी बोलते है। जो कुछ भी हो अलवर शब्द को अंग्रेजी प्रभाव मे आकर कोई यदि 'अ'लवर (Unlover) से भी जोड़ने लगे तो कोई ताज्जुब की बात नही। इतना निश्चित है कि अलवर-शहर की स्थापना ११वीं शती के आस की तो है ही।

अलवर शहर ने इतिहास के अनेक मोड़ देखे है। अलघुरायजी के समय प्रताप-बंध के ऊपर किले के पीछे रावणदेहरा नामक स्थान पर पुराना शहर था। सामरिक दृष्टि से वह स्थान निश्चय ही अधिक सुरक्षित था। सागर के पास से प्रारम्भ होने वाला शहर कब प्रारम्भ हुआ होगा इसके बारे में कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु किले के नीचे से पूर्व की ओर धीरे-धीरे नगर का विस्तार हुआ है। अलवर राज्य की स्थापना से पूर्व अलवर नगर का क्या रूप था इसकी भी केवल कल्पना ही की जा सकती है। किले का इतिहास सबमे पुराना है जिसका अलग से वर्णन करेंगे। इस्लामी प्रभाव के कुछ अवशेष आज भी अलवर में देखे जा सकते है। खेद यही है कि नवनिर्माण एवं विस्तारवादी प्रवृतियो के कारण पक्की चहारदीवारी तथा बहुत से ऐतिहासिक भवन गिरा दिये गये है।

राणा सांगा और हसनखां मेवाती को हराकर बाबर अलवर आया और उसने अलवर के दुर्ग में विश्राम किया। दुर्ग की सुदृढ़ता को देख कर अपने छोटे पुत्र हिंदाल को अलवर प्रान्त जागीर में दे दिया। बहरामखां के पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना यहाँ के भानजे थे, इसलिए उनका गुम्बद और त्रिपोलिया उसी समय का बना हुआ है। त्रिपोलिया में पहले पूर्व की ओर ही एक द्वार था। तीन द्वार शहर और बाजार के विस्तार के लिए बाद में निकाले गये हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि शहर का यह चौपड़ नुमा बाजार बाद में बना है। खानखाना का गुम्बद यशवन्त स्कूल के पीछे अखैपुरा मे सन् ४८-४९ तक था, इसके बाद जर्जरित होने के कारण वह गिरा दिया गया।

किले के नीचे से लेकर मालाखेडा दरवाज़ा, लाल दरवाज़ा, दिल्ली दरवाज़ा, आदि के आस-पास से पहले शहर के चारो ओर पक्का परकोटा था, जो शहर के विस्तार के कारण तोड दिया गया। एक समय था जब सध्या होते ही मालाखेडा दरवाज़ा, लाल दरवाज़ा और दिल्ली दरवाज़ा आदि के विशाल फाटक बद कर दिए जाते थे और सगीन पहरे बिठा दिये जाते थे।

शहर महल बख्तावरसिंहजी के समय मे बनने प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु उनके निर्माण मे पूर्ण योग महाराजा विनयसिंहजी का रहा। विनयसिंहजी ने अलवर शहर की शोभा बढाने के लिए सागर का पुनरुद्धार कर सुन्दर छतरियाँ बनवाई, मूसीरानी की छतरी शहर महल, विनय-विलास आदि उन्ही के स्थापत्य प्रेम के उदाहरण है। अनेक राज-मन्दिर भी इन्हीं के समय मे बने है। शिवदानसिंहजी के समय मे एजैण्ट एम्पी साहब ने एम्पीपुरा बसाया तथा प्रसिद्ध लालडिग्गी तालाब का निर्माण कराया। इन्ही के समय मे केडल साहब ने शहर की स्थिति को सुदृढ करने के लिए लाल दरवाज़े के बाहर केडलगज नामक अनाज की मडी बनवायी और शहर कोतवाली की नीव डाली।

अलवर नगर के विस्तार एव विकास मे महाराजा जयसिंहजी का बहुत योगदान रहा है। उनको नये से नये भवन निर्माण करवाने का बहुत चाव था, इसलिए अलवर के पास मे विजय-मन्दिर पैलेस, ईटाराणा की कोठी तथा अन्य शहर मे स्थित राजकीय कोठियो का निर्माण करा कर उन्होने शहर की शोभा को बढाया। अनेक सडको का निर्माण एव मार्गो का हिन्दी नाम-करण उनके ही समय की देन है। जैन औषधालय का उद्घाटन सन् १६२० मे उन्ही के हाथो से हुआ। स्टेशन के पास अतिथि आश्रम खोलकर अतिथियो के लिए भोजन एव विश्राम का पूर्ण प्रबन्ध किया। जयसिंहजी साहित्यकार एव विद्वान थे। अनेक पुस्तकें और प्रपत्र प्रकाशित करवाने के लिये सन् १६२६ मे एक उत्कृष्ट प्रेस की स्थापना अलवर शहर के विकास मे एक अविस्मरणीय घटना है। स्वर्गीय श्री शिवप्रसादजी ने शर्मा प्रेस का प्रारम्भ कर मुद्रण कला का शुभारम किया। आज शर्मा प्रेस भारत की उत्कृष्ट प्रेसो मे से एक है। जिसका श्रेय उनके सुपुत्र श्री रमेशचन्द्रजी शर्मा के अथक परिश्रम को है।

महाराजा तेजसिंहजी के समय मे सन् १६३८ मे श्री हार्वे साहब ने सुमन्तपद का कार्यभार सम्भाला। उन्होने अलवर शहर का नवीनीकरण कर नगर की शोभा को द्विगुणित कर दिया। लाल दरवाज़े के आगे टीला तोडकर होप सकस का निर्माण उन्ही की सूझबूझ थी। बाजार का विस्तार किया गया। सडको पर स्थान स्थान पर एक जैसी ही प्याऊ बनवायी गई जो आज भी उनकी याद मे खडी है। कॉलिज के क्रीडागण एव ट्रैक का निर्माण करवा कर खेल-कूद की प्रवृत्ति को अलवर मे बढावा दिया।

अलवर नगर ने स्वतत्रता के उपरान्त से नेताओ एव सेठो की भाँति विफरना प्रारम्भ कर दिया। नयी नयी कॉलोनी बनने लगी और शहर मे रहने वाले एव बाहर से आने वाले लोग कोठियो मे रहकर अपनी हविश पूरी करने लगे। खाई पाट कर न्यूकॉलोनी का निर्माण हुआ। स्कीम नम्बर एक और दो के आधार पर शहर के उत्तर पूर्वी भाग मे सैकडो कोठियो का निर्माण

हुआ। फ्रैण्ड्स कॉलोनी में कोठियों का निर्माण एवं मोती डूँगरी की स्कीम अलवर नगर के विस्तार की परिचायक है। दिन-प्रतिदिन शहर फैलता जा रहा है। काला रुपया श्वेत अट्टालिकाओं में परिवर्तित हो रहा है। स्कीमों की पोच-पोच में न नालियों का प्रबन्ध है और न सफाई का। वर्षा होते ही शहर का मलबा कोठियों के सामने तैरने लगता है। किला सब कुछ चुपचाप देख रहा है। वह तो देखता ही रहा है और आगे भी देखता ही रहेगा।

नगरों की यह कहानी इतिहास की अनेक घटनाओं से रंगी पड़ी है। मत्स्यपुरी, राजगढ़, तिजारा, अलवर आदि नगर ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् अलवर जिले के उत्थान-पतन में भी इन शहरों का विशेष योग रहा है।

पत्थरों पर अंकित इतिहास

इतिहास का अधिकतर दर्द या तो पत्थरों पर अंकित है या ग्रन्थों मे। इतिहास के दर्द की बोलती हुई तस्वीर वे पत्थर हैं जो शिलालेखों के रूप में एवं मन्दिरों और मूर्तियों के रूप में यत्र-तत्र दबे पड़े हैं। अलवर जिले में कुछ एक ऐसे शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जो इतिहास की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण हैं ही साथ ही कला और संस्कृति के भी परिचायक है। इनमें से आठवी शताब्दी का तसई का एवं १०वी ११वी शताब्दी के राजोरगढ़ के शिलालेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

तसई का शिलालेख—

तसई से प्राप्त शिलालेख इतिहास की दृष्टि से महत्त्व का है। तसई अलवर, भरतपुर सड़क पर अलवर नगर से तीस मील दूर स्थित एक ग्राम है। यद्यपि तसई अब एक साधारण आधुनिक ग्राम है तथापि इस शिलालेख की यहीं से प्राप्ति अलवर प्रदेश के इतिहास में इसके महत्त्व को इंगित करती है। अब भी तसई ग्राम में शिवजी का एक मन्दिर है। यह स्मारक अपने वर्तमान रूप मे १३½ इंच × १३ इंच के आकार वाली शिला पर पाया जाता है और मंदिर के प्रवेश द्वार के बाईं ओर दीवार में स्थिर है। मुद्रित शिला अब खण्डित अवस्था में पायी जाती है तथा इस पर केवल पन्द्रह पंक्तियाँ अंकित है। इस स्मारक की शिला लाल पत्थर की बनी है और इस पर अधोलिखित पंक्तियाँ उद्धृत है—

१. लसा प्रप्त (वा) सुर सद्न संगति सुत विप्रादि भवच्छित......
२. शेषको गुणनिधिर्म्मीयाभियानी भवात्सुनुः सत्यवतां विभ (व)
३. नतिपूर्णेन्दुरिप्वोपमः। नागस्वाम्य भवत्तस्मात्सुजयाजनितस्तु (वि)
४. कश्यपाद्दक्षकन्यायां नागस्वानिरिवापरः। सोपयेमे महाभागां गो
५. वाँ गायत्रि सन्निभां। यस्यास्तुतुरभूद्विद्वानं नाम्ना हलवनेति च ॥ तेनोढा
६. शील संपन्ना गोण्डल्ला गुण भूपिता। गौरीव त्रिपुरघ्नेन छायेवानुग
७. ना सती ॥ क्षीरो दवेस्सपुत्पन्नो मुक्तामणिरिवापरः। शुद्धस्त्वच्छो (न)

८ निम्नाश्च गुणरश्मि समुज्वल ।। रण्यादित्य सुतस्तस्माद्धि
९ द जायत । तनेद कारित शुभ विष्णोगृहमुत्तम ।। रचिता देगटे
१० नेय भट्टदेद्ट सूनुना । प्रशस्ता वत्सरशते द्वाशीते विकटाक्षरा ।।
११ चामुण्डदत्त पुत्रेण माहृटेन विपश्चिता । उत्कीर्णा सुर्ण कारेण शरो
१२ चत्वारिंशति मालाश्च कु कुमस्याप्ट मापका । द्वादश्या
१३ कृष्णपक्षस्य वारुण्याश्चट्रिकाद्वय । पूजार्थ च (मयादत्त) ।।

शिला-लेख की प्रथम पक्ति मे कई अक्षर लुप्त हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी प्रशस्ति से सम्बधित है, जो अपने कई अक्षरो की लुप्ति के कारण पूर्ण अर्थ प्रस्तुत नही करती। दूसरी पक्ति से हमे ज्ञात होता है कि मीया नाम का सर्वगुण-सम्पन्न एक पुरुप था, वह सच्चा, समृद्ध बुद्धिमान और आकृति मे पूर्ण चन्द्रवदन था। सियाया उसकी परिणीता वधु थी, जिसने नाग-स्वामी नाम के शिशु को उसी प्रकार से जन्म दिया जैसे कश्यप की पत्नी—दक्ष-कन्या कद्रू ने नाग-स्वामी (नागो के स्वामी) को जन्म दिया था। नाग-स्वामी का विवाह गोवा से हुआ, गोवा गायत्री से मिलती-जुलती थी। उनके विद्वान पुत्र हलवान की शादी गौला से हुई। गौला एक पवित्र महिला थी जो अपने पति की भक्त थी, तथा त्रिपुरारि का छायावत अनुकरण किया करती थी। उनसे रण्यादित्य उत्पन्न हुआ। वह सद्गुणो की रश्मियो से ऐसा चमकता था जैसे क्षीरसागर से निकला हुआ कोई रत्न हो। उसने भगवान विष्णु का एक मदिर निर्मित कराया। महादिदत्य के सुपुत्र दिगत्य ने वर्प १८२ मे प्रशस्ति की। चामुण्डा के पुत्र महात्य ने इसे मुद्रित किया। चामुण्डा विद्वान स्वर्णकार था और श्रोद्दिप्ट का निवासी था। दीपको के लिये तेल के तथा गुग्गुल के दो दो पलाश, ४० मालाएँ, कुमकुम के आठ मासशा तथा शराव की दो चतिकाओ को देवता की पूजार्थ अर्पित किया था। अन्त मे चन्द्रमा के अर्ध-कृष्ण पक्ष का वारवा दिन समय के रूप मे दिया गया है।

वर्तमान शिला-लेख की प्रथम पक्ति मे विप्र शब्द रण्यादित्य के पूवजो की ओर सकेत करता है जिनको ब्राह्मण कहा गया है। रण्यादित्य कोई शासक न था, यह बात उसके नाम से पूर्व अथवा पीछे शाही उपाधि (लक्व) की अनुपस्थिति से ज्ञात होता है।

इस शिला-लेख का श्रोद्दिप्ट वर्तमान सरहरटा प्रतीत होता है, जो तिजारा के पूर्व मे पहाडी के दामन मे अलवर जिले मे स्थित है। शिला-लेख विकटाक्षर अर्थात कुटिला (न्यूनकोण वाली) शैली मे मुद्रित है। शिला लेख की अन्तिम पक्ति मे वारुण्याश्चट्रिकाद्वय का शब्द इस बात की ओर सकेत करता है कि मदिरो को विष्णु के लिए नही अपितु वलदेव के लिये वनाया गया था। वलदेव विष्णु के अवतार तथा मदिरापान के प्रति अपने अत्यधिक प्यार के लिये प्रसिद्ध थे।

शिला लेख की तिथि के सम्बन्ध मे हमे ज्ञात होता है कि यह वर्प १८२ मे मुद्रित किया गया (वत्सर शते द्वाशीते)। इसके साथ किसी भी युग का कोई उल्लेख नही है, पर

इस अंकित अक्षर शैली से यह प्रतीत होता है कि वर्ष १८२ विक्रमी संवत का नहीं है। यह तिथि आठवी ईसवी शताब्दी के आसपास की जान पड़ती है, क्योंकि राजस्थान में कुटिला लिपि में पाये जाने वाले अन्य शिला-लेख भी इस ईसवी शताब्दी के अंकित हैं ? अतः बिना अशुद्धि के हम वर्ष १८२ को हर्ष संवत् (काल) से सम्बन्धित कर सकते है। इसकी गणना यदि अंग्रेजी तिथि से की जाए तो सन् ईसवी का ७८८ वर्ष प्राप्त होता है, जो शिला-लेखों के विद्यार्थियो के लिए रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि राजस्थान में ऐसे शिला-लेख अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं हैं जिन पर हर्ष-काल की तिथि अंकित की गयी हो ?

राजोरगढ़ के शिला-लेख—

दो महत्त्वपूर्ण शिला-लेख राजोरगढ़ से प्राप्त हुए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ये शिला-लेख खजुराहों की संस्कृति के पूर्वज होने के कारण विशेष उल्लेखनीय हैं। राजोर अथवा राजोरगढ के समीप पारनगर के अवशेषों से प्राप्त हुए, दो शिला-लेखों का इस स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व बताने की दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन अपेक्षित है।

पहला शिला-लेख (क्रम संख्या ६३. १५८४) जो इस समय राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। गुर्जर-प्रतिहारवंश के महाराधिराज महिपालदेव के समय का है तथा इस लेख का समय सम्वत् ६७६ वैशाख वदि १३ (६२२-२३ ई० सं०) है। इस लेख मे राज्यपुर के राजा सावट दानशीलता में कर्ण, पराक्रम में भीम तथा सुभग एव सुलक्षण शरीर में श्रीराम के तुल्य कहे गये हैं। ये महाराज सावट महाराजाधिराज महिपालदेव के सामन्त रहे होंगे, क्योंकि इस शिला-लेख में उन्हें केवल भूपति कहकर ही निर्देश किया गया है ? इस शिला-लेख का विशेष महत्त्व यही है कि यह अब तक की प्राप्त सामग्री में महाराजाधिराज महिपालदेव के राज्यकाल की उत्तर सीमा ई० स० ६२२-२३ निर्धारित करता है। इस शिला-लेख की उपलब्धि से पूर्व उनके राज्य काल की उत्तर सीमा असनि से प्राप्त शिला-लेख से केवल ई० सं० ६१७ तक ही स्पष्ट रूप से ज्ञात थी।

इस शिला-लेख में उक्त महाराजाधिराज महिपालदेव का राजा महेन्द्रपालदेव (प्रथम) के पुत्र अथवा बयाना के ऊखा मन्दिर से प्राप्त रानी चित्रलेखा के शिला-लेख मे वर्णित महाराजाधिराज महिपाल अथवा अधोवर्णित राजोरगढ़ के लेख मे उक्त ये महाराजाधिराज क्षितिपाल के साथ ऐक्य स्थापित किया जा सकता है। इसका निर्णय हमनें एपिग्रेफिका इण्डिका के आगामी अङ्क में करने की यथासम्भव चेष्टा की है। हमारे मतानुसार वे महाराजाधिराज महेन्द्रपालदेव प्रथम के पुत्र महिपालदेव हैं तथा दूसरे दोनों से भिन्न हैं। कदाचित् भोज उनका विरोधी था तथा वे विनायकपाल से सर्वथा भिन्न थे, इसी कारण से उनका नाम बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के दान-पत्र में महिपाल न होकर भोज के नाम से अभिहित किया गया है।

इस शिला-लेख का प्रयोजन पूर्णतल्लक से आविर्भूत धर्कटवंश में उत्पन्न आर्द्रट के पौत्र, एवं देल्लुलक के पुत्र शिल्पी एवं सूत्रधार सर्व्वदेव जिन्होंने कि सिहपद्र नामक नगर मे एक मन्दिर

बनवाया था, के द्वारा राज्यपुर मे जिनेन्द्र शान्तिदेव की एक विशाल प्रतिमा एव तदनुकूल गगन-चुम्बी मन्दिर के निर्माण का उल्लेख करना है। सब्वदेव ने इस मन्दिर को गोष्ठी के सदस्य एव श्रद्धान्वित भक्तो की ओर से तपोपून सूर सेनाचार्य के द्वारा की जाने वाली पूजा के लिये अक्षयनीवि के रूप मे समर्पित किया। पूजा इत्यादि का विवरण इस अभिलेख में नही दिया गया है।

वास्तव मे शिला लेख दो भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग उपर्युक्त वर्णन से समाप्त हो जाता है। इसके अन्त मे दूसरा भाग प्रारम्भ होता है जो कि अपूर्ण है, तथा इसमे एक शक्तिशाली भूचाल मे इस मन्दिर के गिरने की सूचना मिलती है। यह सब्वदेव के पुत्र वराङ्ग का उल्लेख मात्र करके समाप्त होता है। इस लेख का शेष भाग इसके साथ ही लगे अन्य प्रस्तर पर उत्कीर्ण किया गया होगा। इस दशा मे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि वराङ्ग ने ही इस गिरे हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था तथा यह शिला लेख वराङ्ग ने ही पुन लिखवाया होगा। महिपाल के समय का मूल लेख जिसका काल इस अभिलेख मे दिया गया है, दूसरे भाग मे वर्णित भूचाल मे मन्दिर के साथ खण्डित हो गया होगा तथा जब वराङ्ग ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया तो इस मूल लेख की समय सहित प्रतिलिपि करवाकर अपने द्वारा किये गये जीर्णोद्धार का भी सूक्ष्म वर्णन करके यह लेख उत्कीर्ण करवाया होगा। इससे दो बातें स्पष्ट हैं कि यह वराङ्ग द्वारा लिखवाया गया लेख है तथा कदाचित् उस समय तक शासको की अवस्था मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ था, अन्यथा वराङ्ग उसका उल्लेख करवाते। यदि उनका लेख सम्पूर्ण होता अथवा उसका शेष भाग उपलब्ध होता तब शिला लेख के उत्कीर्ण होने का समय मिल सकता था।

यह लेख सिंहपद्र मे सवदेव द्वारा निर्मित एक जैन-मन्दिर का उल्लेख करता है, परन्तु मन्दिर के अधिष्ठातृ देवता का नही। सिंहपद्र कदाचित् सिंहोत का प्राचीन नाम हो, जिसका कि निर्देश व्याघ्रराज के हर्ष से प्राप्त शिलालेख में सिंहगोष्ठ के नाम से किया गया है। इसके अतिरिक्त इस लेख मे पूर्णतल्लक नामक स्थान से आविर्भूत धक्कट जाति जिसमे कि सब्वदेव उत्पन्न हुए थे, का उल्लेख है। इस पूर्णतल्लक का अर्वाचीन नाम कदाचित् जोधपुर के निकटवर्ती पुताला हो, जिसका कि ऐक्य डा० दशरथ शर्मा ने 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ० २३, २४ और टिप्पणी ८' मे बिजोलिया से प्राप्त शिलालेख मे उक्त पूर्णतल्लक के साथ किया है। राज्यपुर जहा कि यह मन्दिर बनवाया गया था निस्सन्देह राजोरगढ ही है जो कि इस गाव के समीप ही पार (पुरा ?) नगर के नाम से प्रसिद्ध भग्नावशेष है।

इस शिलालेख की भाषा अतीव प्राञ्जल है तथा शैली भी अत्यन्त काव्यमयी है। इस प्रशस्ति के लेखकद्वय सागर-नन्दी तथा लाकदेव हैं, जिनके द्वारा किये गये शान्तिदेव, महिपाल सावट (भूपति), मन्दिर आदि के वर्णन उत्तम काव्य के उदाहरण हैं। इन सागरनन्दी का नाटक रत्नकोश के प्रसिद्ध लेखक के साथ एक्य होना सम्भव है, ऐसा हमारा मत है तथा इस ग्रन्थ के रचयिता का काल भी इस लेख से निश्चित प्राय हो गया है। इस मन्दिर की भव्यता

का वर्णन अति मनोहर है, जिससे इसकी विशालता निस्सन्देह जानी जा सकती है तथा इस स्थान पर जैनों का प्रभाव भी। कदाचित् इस समय उसे राज्याश्रय प्राप्त नहीं था जो कि सम्भवतः यहाँ पर स्थित शिव-मन्दिर को था जैसा कि दूसरे शिलालेख से स्पष्ट है।

पारनगर नामक नगर के अवशेषों में नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर है तथा वहाँ से एक विशेष महत्त्वपूर्ण शिलालेख जो इस समय अलवर संग्रहालय में सुरक्षित है जिसे महाराजाधिराज परमेश्वर श्री मथनदेव ने लिखवाया था, प्राप्त हुआ है। इसका समय इस लेख में विक्रम संवत् १०१६ निर्दिष्ट है। इसमें महाराजाधिराज परमेश्वर मथनदेव के पिता का नाम महाराजाधिराज सावट मिलता है और ये गुर्जर-प्रतिहारवंशी है, यद्यपि इन्होंने महाराजाधिराज तथा परमेश्वर, सम्राटों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले विरुदों का प्रयोग किया है तदपि इनका स्तर सामन्तों के समकक्ष ही था। मथनदेव गुर्जर-प्रतिहारवंशी परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर क्षितिपालदेव के श्री चरणों का ध्यान करने वाले (तत्पादानुध्यातः) परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर विजयपालदेव के अधीन थे। यहाँ केवल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विजयपालदेव के सामन्त मथनदेव पर उनका प्रभाव कदाचित् महिपालदेव के सामन्त सावट पर प्रभाव की अपेक्षा न्यून था तथा इसी कारण वे अपने आपको सम्राटों जैसे विरुदों से विभूषित करते हैं। वास्तव मे यह गुर्जर-प्रतिहारवंश में कम समय के लिये आने वाले अनेक शासकों के कारण उत्पन्न हुई प्रभावहीन शासन की अनिश्चितता का द्योतक है।

इस शिला-लेख का अभिप्राय श्री मथनदेव द्वारा वंशपोटक नाम के भोग में स्थित व्याघ्रपाटक नामक ग्राम का लच्छुकेश्वर महादेव के मन्दिर को दान देना है। इस ग्राम की भूमि के चरागाह, घास के मैदान, वृक्ष की पंक्तियों अथवा उद्यान सहित जलनिधि इत्यादि से होने वाली आय से मन्दिर में भगवान् का दैनिक तीन बार अभिषेक पुष्प, धूप, नैवेद्य, दीप, तैल, सुधा (कदाचित् सफेदी इत्यादि से अभिप्राय है) के व्यय की व्यवस्था है। इन कार्यों की सुचारु प्रगति के लिये इस दान की सम्पत्ति का प्रबन्ध श्री ओंकाराचार्य तथा उनकी शिष्य परम्परा को सौंपा गया। ये आचार्य श्री कण्ठाचार्य के शिष्य श्री रूपशिवाचार्य के शिष्य थे तथा आमर्दक से आविर्भूत शैवो की सोपुरीय शाखा के थे। राज्यपुर में स्थित नित्यप्रमुदितदेव नामक मठ जिसका कि सम्बन्ध छात्रशिव मे स्थित गोपालदेवी तडाग पाली मठ से था, में ये परमयशः पुञ्ज, एवं परम पुनीत ओंकारशिवाचार्य निवास करते थे।

इससे यह निष्कर्ष तो निस्सन्देह ही निकाला जा सकता है कि अलवर का यह नगर राजोरगढ़ शैव मत का भी एक मुख्य केन्द्र था। सम्भवतः यहाँ के शासक श्री मथनदेव भी, जैसाकि उनके इस शैव मठ को इतनी विपुल जागीर दान देने से ज्ञात होता है कि वे शैव मतानुयायी ही थे, यदि इतना भी नही तो कम से कम आदर तो अवश्य करते थे। उनके पिता के बारे में कि वे जैन थे अथवा शैव कुछ कहना सम्भव नहीं है, क्योंकि इस बारे में दोनों शिला-लेखों में स्पष्ट निर्देश नही है ?

इस शिला-लेख मे आये हुए सभी ग्रामों एवं स्थानों के नामों को उनके आधुनिक नामों से पहचानना संभव नही हुआ है, तदापि मथनदेव की सम्भवतः राजधानी राज्यपुर को तो स्पष्ट ही

पारनगर के अवशेषो से ऐक्य माना जा सकता है। यहीं के नीलकंठ महादेव के मन्दिर मे यह शिला-लेख प्राप्त हुआ है। व्याघ्रपाटक नाम के ग्राम को जिसका कि शिला-लेख मे दान दिया गया, राजोर के ही समीपवर्त्ती वाघोर नाम के गाँव से पहचाना जा सकता है। वशपोटक, छत्तशिव तथा आभर्द्दक नाम के स्थानो की पहचान नही हो सकी है।

उपर्युक्त शिला-लेख विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखते हैं। कला और सस्कृति का इतिहास इनमे छिपा पडा है।

प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तित्व

इतिहास का दर्द लडाइयो, राज्यसिंहासनो एव राजनैतिक उथल-पुथल से ही नही आँका जा सकता वरन् कुछ ऐसे प्रमुख व्यक्ति भी होते हैं, जो अपने व्यक्तित्व के कारण इतिहास ही बदल डालते हैं। अलवर मे भी कुछ ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्होने अलवर के निर्माण एव अलवर के कलात्मक परिवेश के परिवतन मे अपने जीवन को लगा दिया है। सर्वश्री हसनखाँ मेवाती श्री विनयसिंहजी, श्री जयसिंहजी, श्री अलाबन्देखाँ साहब आदि का नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

वीर सेनानी हसनखाँ मेवाती—

इतिहास विशेषज्ञो और कुछ इनेगिने लोगो को छोडकर बहुत ही कम ऐसे लोग होगे जिन्हे शायद यह मालूम हो कि ४०० वर्ष पहले अलवर और मेवात पर 'ठट्ठा' के खानजादो का शासन था। फीरोज तुग़लक के राजत्व काल मे गढ, मनिकपुर, चम्पानेर, राजपुर इत्यादि इलाको के बहुत से यदुवशी और परमार राजपूतो ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। इसी समय के लगभग ठट्ठा के यदुवशी राजकुमार साभरपाल ने भी मुस्लिम धम की दीक्षा ली। क्यो ली ?—इसके सम्बन्ध मे भारतीय इतिहासकार कोई महत्त्वपूर्ण प्रकाश नही डालते। किंवदंतियो के अनुसार महफ़ूजखाँ नामक किसी मुसलमान सूबेदार की रूपवती पुत्री के प्रेम पाश मे पडकर उसने धर्म परिवर्तन किया, ऐसा कहा जाता है।

साँभर या साभरपाल की तीसरी पीढी मे, लोधीवश के शासन मे अलावलखाँ का जन्म हुआ। हसनखाँ और इब्राहीम लोदी आपस मे मोसी के बेटे के भाई होते थे, अत १५१७

ई० में जब इब्राहीम को दिल्ली का सिंहासन मिला तो उसने हसनखाँ को अलवर और मेवात का इलाका दे दिया और उसे उत्तरी मेवात के वे भाग भी लौटा दिये जिनको अहमदखा लोदी ने जीत कर दिल्ली में मिला लिया था। हसनखाँ ने अपने समय में अलवर और मेवात को समृद्ध बनाने मे कोई कसर न रख छोड़ी।

हसनखाँ बलवान, साहसी और कर्मठ था। उससे पहले अलवर और मेवात किसी एक निर्दिष्ट रियासत के रूप में न थे। यह सबसे प्रथम शासक था जिसने यहाँ स्थिर शासन का सूतपात्र किया। अलवर के किले का पुराना परकोटा जिसे बडगूजरों ने मिट्टी और पत्थरों से बनवाया था, गिरवा दिया गया और उसकी नीव पर चूने की पक्की कँगूरेदार दीवारें व बुर्जे बनवाई जो आज तक वर्तमान हैं। इसके अलावा बहुत सी सड़कें, बाग, मकबरे व सरायें भी बनवायीं जिनके ध्वंसावशेष टपूकड़ा, तावडू, फीरोजपुर, भौंडसी, तिजारा, अलवर तथा ढहीकर इत्यादि में अब भी मिलते हैं।

हसनखाँ विद्या-प्रेमी भी था। उसके सरक्षण मे बहुत से विद्वानो का पालन-पोपण होता था। उसे शायरी का भी शोक था और अपने समकालीन कवियों मे उसे उस्ताद की पदवी हाँसिल थी। इन सब के अतिरिक्त स्वदेश प्रेम उसमें कूट-कूट कर भरा था। इस्लाम धर्मावलम्बी होते हुए भी, प्रण व प्रतिष्ठा के लिये स्वधर्मी के साथ युद्ध करने मे कभी नही चूकता था। पानीपत के विख्यात युद्ध में इब्राहीम की हार से लोधीवंश का भाग्य सूर्य अस्त हो गया। मुगलो की वीरता के अन्ध आवेग के सम्मुख खानजादो की परिसीमित सेना न ठहर सकी। राजा हसनखाँ अपने चुने हुए सरदारो के साथ जंगलो में भटकता रहा। १।। साल तक बाबर की अक्लान्त सेना उसे मेवात के एक सिरे से दूसरे सिरे तक खदेड़ती रही, किन्तु मेवातियो की सहानुभूति और अपने अदम्य उत्साह से उसने मुगलों को चैन न लेने दिया। इसी बीच में उसे मेवाड़ के राणा सांगा का निमंत्रण मिला जो बिखरे हुए राजपूतों की एक महती सेना इकट्ठी कर चुका था और बयाना के विस्तीर्ण मैदान की ओर बाबर से लोहा लेने के लिए बढ़ रहा था। उधर बाबर ने भी अपने प्रतिनिधि मुल्ला तुर्कअली और नजफबेग को सुलह की सूचना लेकर भेजा। लिखा था कि वह हसनखाँ को मेवात का स्वेच्छाचारी शाह बना देगा यदि एक बार वह बाबर को आकर ताजीम दे। भेंट स्वरूप अशर्फियो के कई थाल, दास-दासी और नीलम के मूठ की एक तलवार भी भेजी गई थी। बाबर से मित्रता के प्रदर्शन में उसके लड़के को भी रिहा कर दिया, जिसे पानीपत के मैदान मे उसने बन्दी बना लिया था। वास्तव मे उसे राणा सांगा से उतना अधिक भय नही था जितना हसनखाँ से, क्योंकि मेवात देहली के पड़ोस में थी और पड़ोसी को ही दुश्मन बना लेना राजनैतिक नियमों के विरुद्ध था? देहली और आगरे के अतिरिक्त उसका शासन-सूत्र अन्य प्रान्तों में अत्यन्त शिथिल था, फलतः वस्तुस्थिति ने उसे मजबूर कर दिया कि सांगा को हराने से पहले वह हसनखाँ को अपना मित्र बना ले।

स्वाभिमानी हसनखाँ मेवाती ने बाबर का आतिथ्य स्वदेश प्रेम के लिये ठुकरा दिया। खानदानी अधिकारों व राणा सांगा की मित्रता के सामने धन-वैभव की क्या हस्ती थी? उसने इस यज्ञ में अपने पुत्र की आहुति तक देने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, लेकिन इससे पूर्व की उसका

प्रत्युत्तर देहली पहुँचे, बाबर पहले ही उसके लड़के को स्वतन्त्र कर चुका था, जिसका पश्चाताप उसने 'तुजुक' में भी कई स्थानों पर किया है। राणा सांगा को वह वचन दे चुका था कि वह उसी वंश की ओर से आततायियों से युद्ध करेगा जिसमें वह पैदा हुआ है। वीरों के लिये प्रण-पालन सबसे अमूल्य धन है। धर्म, जाति, भाषा व देश की विभिन्नताएँ उनके उद्देश्यों पर घात नहीं लगा सकती। 'जाय लाख रहे साख' के आदर्श पर ही वीर मर मिटते हैं।

हसनखाँ राणा सांगा से बयाना में सेना सहित जा मिला, जो आगरे से ५० मील की दूरी पर है। २८-२९ फरवरी सन् १५२७ ईसवी को फतहपुर सीकरी के उत्तरी अंचल में घमासान युद्ध हुआ। बाबर की फौज खेत रही। मुगल सरदारों की हिम्मत टूट गई। शेख जमाली और मुल्ला तुर्कअली की सलाह से उसने अजमेर की ओर भाग जाने का निश्चय किया और यदि राणा, हसन के आदेशानुसार उसी समय मुगलों का पीछा करता तो सम्भवतः मुगलाई वंश का नाम लेवा भारत में कोई नहीं रहता और यहां के इतिहास का घटनाक्रम ही बदल जाता, लेकिन सांगा की फौजें वापिस अपनी छावनी में लौट कर आमोद प्रमोद में पड़ गयीं और बाबर ने इस सुयोग से लाभ उठाया। उसे सेना को संगठित करने का मौका मिल गया। २३ दिन के अनन्तर उसने फिर मेवाड़ और मेवात की कुमक पर चढ़ाई की और फतहपुरी के मैदान में उसे हराया।

अन्तिम युद्ध के पूर्व हसनखाँ को उसके गुरु सैयद जमाल अहमद बहादुरपुरी ने बाबर से लड़ने के लिए मना किया था। सैयद साहब पर उसका बहुत विश्वास था और बचपन से युवा होने तक भी उसने कभी उसकी आज्ञा नहीं टाली थी, किन्तु वीरत्व के गर्व के सामने उनकी भी कुछ न चली। हसन अलवर से विदा होते समय कहकर गया था कि या तो वह मेवात के लिये स्वतन्त्रता ही लायेगा या उसकी लाश ही शहर में लौटेगी। यही हुआ हसन वीरों की तरह लड़ता हुआ मारा गया। जमालखाँ, फतहजंग और हुसैनखाँ जो उसके निकट सम्बन्धी थे उसकी लाश को अलवर ले आये और नगर के उत्तरी पार्श्व में उन्होंने उसे दफना कर एक छतरी बनवादी जो आज भी हसनकी के नाम से प्रख्यात है।

हसनखाँ की मृत्यु के सम्बन्ध में ऐतिहासकों के भिन्न भिन्न अनुमान हैं। मौलवी नजमुल गनी रामपुरी, जकाउल्ला साहब देहलवी, क० जेम्स टॉड तथा अन्य विद्वानों की राय में उसकी मृत्यु समरक्षेत्र में बंदूक के आघात से हुई। हैकेट साहब अपने गजेटियर में उसकी मृत्यु का कारण पारस्परिक वैमनस्य बतलाते हैं। बाबर ने तुजुक में लिखा है कि ललाट पर तीर लगने से उसके प्राण पखेरू उड़ गये। अधिक विश्वासनीय यही बात जँचती है कि आज़ादी का वह फरिश्ता समर-क्षेत्र में ही वीरगति को प्राप्त हुआ। सच बात तो यह है कि देश की स्वतन्त्रा के लिए मेवाड़ी और मेवाती दोनों ही शहीद हो गये। देश की स्वतन्त्रता के लिए दोनों की तलवारें एक साथ उठी थीं। इसी कारण आज भी यह लोकगीत प्रसिद्ध है—

यह मेवाती वह मेवाड़ी मिल गये दोनों सैनाणी।
हिन्दू-मुस्लिम भाव छोड़ मिल बैठ दो हिन्दुस्ताणी॥

श्री सवाई विनयसिंहजी—

अलवर के इतिहास मे विनयसिंहजी का व्यक्तित्व अत्यधिक प्रभावशाली रहा है। कला के प्रति जितने जागरूक श्री विनयसिंहजी थे उतना अन्य कोई व्यक्ति नही रहा। अलवर को कलात्मक परिवेश से सुशोभित करने का श्रेय आपको ही है। यही कारण है कि कला प्रेमी जनता के हृदय में श्री विनयसिंहजी के लिये अटूट श्रद्धा है।

राजघराने के थाना ठिकाने में महाराजा विनयसिंहजी का जन्म हुआ। इनके बड़े डील डौल, लम्बी भुजा और चौड़े ललाट से ही स्वाभाविक वीर, पराक्रमी, भाग्यशाली और कर्त्तव्य परायण होने का पता चलता था।
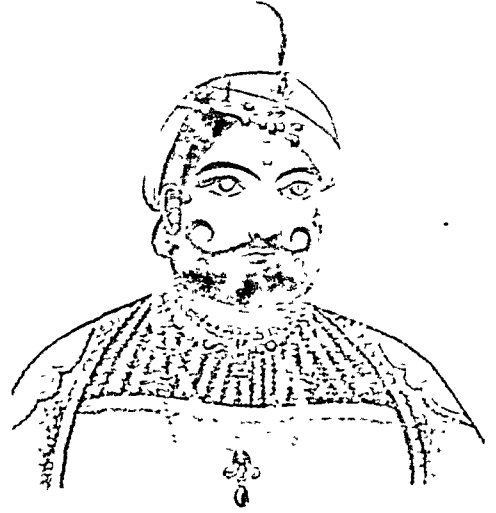
राजगद्दी पर बैठते ही श्री बलवन्तसिंहजी को लेकर इनको अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी, जिसे अंग्रेजों ने आपसी विरोध मिटाने के लिये राज्य का उत्तरी भाग बलवन्तसिंहजी को दिला दिया। इनके समय तक अलवर का राज्य जम चुका था, इसलिए इन्होंने अपने पिता और पितामह के स्थापित किये हुए राज्य का पूर्ण उपभोग किया और अलवर के शरीर एवं आत्मा को सुन्दर बनाने मे अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आपके समय तक मुगल राजवंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी इसलिए दिल्ली के कलाकर, कलावन्त ऐसे राजा के संरक्षक की बाट ही जोह रहे थे, जो उनकी कला को आदर देता।

स्थापत्य कला की दृष्टि से श्री विनयसिंहजी ने शहरमहल से लेकर विनयविलास तक के निर्माण द्वारा अलवर को सुन्दर बनाया। शहरमहल का शीशमहल, दीवानेखास, छतरियाँ आदि राजपूत एवं मुगल स्थापत्यकला के सुन्दर उदाहरण है। सागर को भी नया रूप देने का श्रेय आपको ही है। अपने पिता की यादगार में मूसीमहारानी की छतरी का निर्माण कराकर श्री विनयसिंहजी ने किले के नीचे के परिवेश को मनमोहक बना दिया। राजमहल के आसपास के विशाल मन्दिरों का निर्माण भी आपकी कलाप्रियता एवं कलापोषण की परिचायक है। राजपूत संस्कृति की प्रतीक सैकड़ों छतरियाँ और झरोखे श्री विनयसिंहजी की याद को आज भी ताजा किये हुए है। सीलीसेड़ में अपनी रानी के लिये महल बनवाकर वहाँ बांध बंधवाने का श्रेय भी विनयसिंहजी को ही है। विनयविलास विनयसिंहजी का प्रमुख महल था। बहुत बड़ा बाग लगवाकर उसके बीच में उन्होंने संगमरमर के स्तंभों एवं जालियों से युक्त राजपूत एवं मुगलशैली का सुन्दर महल बनवाया, उसके सामने संगमरमर के पत्थरो की जड़ाई का सरोवर कला का अनुपम उदाहरण है।

राजा विनयसिहजी कला एव सस्कृति के पोषक थे । यही कारण है कि उनके राज्य काल (सन् १८१४ से १८५७) मे कलाओ का विशेष उत्थान हुआ। स्थापत्य के अतिरिक्त सबसे अधिक प्रेम उनको चित्रकला से था। चित्रकला सम्बन्धी पूरा विभाग ही उन्होने अपने दरबार मे खोल रखा था। रावराजा बख्तावरसिहजी के समय के बल्देव और सालिगराम दो प्रमुख कलाकार तो थे ही, साथ ही अनेक सुलेखको और चित्रकारो को उन्होंने सम्मान देकर अपने राज्य मे प्रश्रय दिया। *दिल्ली का बादशाही वैभव क्षीण होते ही कलाकार अन्य राज्यों मे सरक्षण प्राप्ति* हेतु आने लगे। विनयसिहजी ऐसे सुअवसर की ताक मे थे ही, इसलिए उन्होंने गुलामअली जैसे सिद्ध कलाकारो, आगामिर्जा देहलवी जैसे सुलेखको और नत्थाशाह दरवेश जैसे जिल्दसाजो को राजकीय सम्मान देकर दिल्ली से बुलवाया। इनके समय मे उपर्युक्त कलाकारो ने मिलकर सुन्दर एव कलात्मक लघुचित्रो एव सचित्र पोथियो का निर्माण कर अलवर की चित्रकला को समृद्ध बनाया। श्रीमद्भागवत, रामायण, गीतगोविन्द, गुलिस्ता, कुरान आदि ग्रथों का सुलेखन एव चित्राकन विनयसिहजी की कलाप्रियता का परिचायक है। वे स्वय चित्रकारी मे रुचि रखते थे। बल्देव उन्हे चित्रकारी सिखाया करता था। अलवर की चित्रकला विनयसिहजी की सदा ऋणी रहेगी।

उनके राजकीय कोष मे कभी धन एकत्रित नही रहा। कलात्मक वस्तुओ को खरीद कर उन्हे एकत्रित करनेका उनको बडा चाव था, इसलिए दिल्ली की शाही वस्तुऐं जैसे अस्त्रशस्त्र, सचित्र ग्रथ, लघुचित्र, हाथीदांत का सामान एव कीमती पत्थर और लकडी की बनी वस्तुऐं उन्होने मनचाहे दामो मे खरीद ली। उनकी सग्रह की हुई अमूल्य वस्तुऐं आज अलवर सग्रहालय की सिरमौर बनी हुई हैं।

विनयसिहजी के प्रारम्भिक राज्यकाल मे पुलिस, कचहरी, न्यायालय आदि न थे। उन्होने न्यायालय और व्यवस्थाबोर्ड स्थापित किये, जिनमे राजनीति और धर्म के साथ सुनवाई होने लगी। उनके राज्य काल मे सन् १८१४ से १८३८ तक राज्य कार्य राष्ट्र भाषा हिन्दी मे चलता रहा, किन्तु दिल्ली दरबार से आये विद्वान एव अहलकारो के कारण फारसी भाषा का प्रचार होने लगा। राज्य कार्य फारसी मे होने लगा, जिसको महाराजा जयसिहजी ने हटाकर राष्ट्र भाषा हिन्दी को पुन स्थापित किया।

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि महाराजा कला प्रेमी थे, इसलिए कलात्मक वस्तुऐं खरीदने एव निर्मित करवाने मे वे धन लगाने मे चूकते नही थे। यही कारण था कि आर्थिक दृष्टि से सामान्य जनता की दशा अच्छी नही थी। अकालो ने उसकी कमर ही तोड दी थी। राजकोष मे धन का अभाव रहता था। आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उन्होंने कुछ बाधो का निर्माण करवाया तथा तीन वर्ष के लिए भूमि को ठेके पर देने की व्यवस्था की।

महाराजा विनयसिहजी विद्वानो, कलाकारो, कलावन्तो, कारीगरो आदि का आदर करते थे तथा उन्हे दरबार मे विशेष आदर देते थे। अलग-अलग विभाग मे उच्चकोटि के विद्वान एव

कलाकार थे। उन्होंने राजकीय पुस्तकशाला, रत्न-भण्डार, शस्त्रालय आदि की स्थापना कर राज्य मे कलाओ का सरक्षण किया। इस प्रकार स्थापत्य, सगीत, चित्रकला तथा अन्य कलाओं के उत्थान में विनयसिहजी का योगदान अभूतपूर्व है।

महाराजा विनयसिहजी का अलवर के इतिहास मे वही स्थान है जो मुगल इतिहास में अकबर का है। उन्होंने चहुँमुखी प्रगति को प्रोत्साहित कर अपने नाम को ही ऊपर नही किया, वरन् अलवर को भी एक कलात्मक परिवेश प्रदान कर गये। अलवर की कला-पारखी जनता उन्हे युगो-युगो तक याद करती रहेगी।

श्री सवाई जयसिहजी—

अलवर की जनता के हृदय-पटल पर आज भी महाराजा श्री सवाई जयसिहजी का नाम एक चमकते हुए सितारे के समान अकित है। महाराजा का जन्म १४ जून सन् १८८२ (आषाढ़ कृष्णा १४) को विनय-विलास भवन में महारानी रतलाम वाली राठौड़जी के शुभ गर्भ से हुआ था। जन्म के शुभावसर पर घनघोर बादल आये, वर्षा हुई और लोगों को नव जीवन मिला। उस घनघोर वर्षा के बीच प्रजा के सतप्त हृदय को द्विगुण शीतल और प्रफुल्लित करने वाला शुभ संवाद नगर भर में फैल गया और आनन्द मनाया गया।

२३ मई सन् १८९२ को अचानक नैनीताल मे इनके पिता महाराजा श्री मगलसिहजी का स्वर्गवास हो गया। युवराज कुमार जयसिहजी जो उस समय १० वर्ष के थे, राज सिहासन पर आसीन हुए और अपनी चहुँमुखि प्रतिभा द्वारा विभिन्न उपाधियो को ग्रहण किया।

इस बाल उमर में महाराजा को राज्य वैभव अपने चंगुल में न फँसा सका। साथ ही महाराजा ने भी 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत को सार्थक कर दिखाया। विद्याध्ययन की ओर अपने को उन्मुख किया, साथ ही एक परिश्रमी विद्यार्थी की भाँति कभी विद्याध्ययन से मुँह नही मोड़ा, यही कारण था कि खुशखत और भावपूर्ण लेख लिखने मे महाराजा अपनी कक्षा में सदा प्रथम रहते थे। इसके साथ-साथ जितनी रुचि महाराजा की विद्याध्ययन में थी उस मे कम खेल कूद में न थी। घोड़े की सवारी में एक पक्के शहसवार और पोलो खिलाड़ियों में महाराजा सदा अग्रगण्य रहते थे। सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के अवसर पर भारत और यूरोप के प्रसिद्ध पोलो खिलाड़ी आये थे, जिनमें महाराज भी मौजूद थे। स्वयं

वाइसराय ने एक कप भारत और यूरोप के प्रसिद्ध पोलो खिलाडियों के लिए रखा था। इस कप को पाकर महाराजदेव ने भारत और यूरोप में अपनी अमर कीर्ति फैलादी थी।

महाराजदेव का अपनी प्रजा के प्रति अगाध प्रेम था। जब वे विलायत में रहते थे, तब भी अपनी प्रजा की शुभ कामना के सदेश डाक द्वारा भेजा करते थे। वह स्वयं अपनी प्रजा के तारों को, पत्रों को पढ़ा करते थे और खुद ही उनका उत्तर देते थे। इस प्रकार से हजारों मील दूर होते हुए भी उनके लिये प्रजा के प्रति प्रेम फासला दूर न था। हर प्रकार से वे अपनी प्रजा की उन्नति की कामना करते थे। उनके लिये हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आंखों के सितारे के समान थे। प्रजा द्वारा आयोजित अनेकों धार्मिक उत्सवों पर महाराज समान रूप से भाग लेते थे, जिससे प्रजा की उनके प्रति अनुपम श्रद्धा थी। यही कारण था कि जब महाराजदेव विलायत से पधारते थे तो सभी वर्ग के लोग निःस्वार्थ और प्रेम भाव मे हजारों की संख्या में स्वागतार्थ स्टेशन पर एकत्रित होते थे। नगर भर में खुशियाँ मनाई जाती थीं। लोग जय-जयकार करते हुए उन पर फूल बरसा कर अपना उमड़ता हुआ मोह प्रदर्शित करते थे।

जन कल्याण की भावना महाराज में उच्चकोटि की थी। उन्होंने अपनी प्रजा की भलाई के लिये अगणित कार्य किये। महाराज यह जानते थे कि प्रजा का सुख ही उनका सच्चा सुख है, इसलिये राजा की सबसे प्रमुख भावना जन कल्याण की भावना ही होनी चाहिए। इस प्रकार से जन कल्याण की भावना से प्रेरित होकर लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये अनेकों बांध बनवाये। सड़कों का निर्माण किया गया। राजकीय पाठशालाओं में पहले विद्यार्थियों से फीस ली जाती थी। महाराजा ने बालकों से फीस लेना बन्द करा दिया। इस प्रकार से सभी को निःशुल्क विद्याध्ययन के अवसर प्राप्त हुए, साथ ही उन्नति करने का मौका भी मिला। अनेकों नवीन पाठशालाओं तथा राजर्षि कॉलेज की स्थापना कर प्रजा में विद्या की उन्नति का एक सरल मार्ग निकाल दिया।

छोटे-छोटे बच्चों को जिन्हे बीडी सिगरेट पीने की बुरी लत पड़ गयी थी, स्वास्थ्य सुधार हेतु यह आज्ञा निकाली थी कि १८ वर्ष से कम आयु वाला बीडी-सिगरेट पीते देखा जायगा तो उसे राज्य की ओर से दण्ड दिया जायगा। अनाज, घी, आदि सब प्रकार की भोजन सामग्री, शुद्ध रूप में मिलने के नियम बनाये गये। बाल विवाह और वृद्ध विवाह की रोक लगादी। इस प्रकार से अनैतिकता, घृणा, पारस्परिक द्वेष आदि की भावना का अन्त हुआ।

प्रजा के लिये सुलभ न्याय की व्यवस्था की गयी। गांव-गांव में १५०० पंचायत बोर्ड खोले और पंचों को दीवानी व फौजदारी अधिकार दिये। परिणाम यह हुआ कि लोगों को न्याय सुलभ व शीघ्रता से मिलने लगा। उनकी असख्य परेशानियों का अन्त हुआ और एकता पनपी। शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में भाषण देते हुए महाराज ने आदेश दिया कि कर्मचारी ऐसे उद्योगशील हों जो ईर्ष्या, द्वेष और कागजी युद्ध को कम करके श्रेष्ठ और सरल मार्ग अपनायें। इसके साथ-साथ पदाधिकारी अपना उत्तराधिकार भली प्रकार पहिचानें। स्वयं महाराज भी पदाधिकारियों के कार्य की जाँच किया करते थे।

किसी-किसी फरियादी के तार या चिट्ठी पर तो महाराज ऐसी सुनाई करते थे कि जिसे देखकर मंत्री से लेकर राज्य के समस्त अधिकारी और कर्मचारी चौकन्ने हो जाते थे। अनुचित कार्य से डरते थे। इस प्रकार से महाराज के युक्ति-युक्त न्याय की चर्चा राज्य में प्रसिद्ध थी। न्याय सम्बन्धी अनेकों चर्चाये उनके समय की आज तक प्रसिद्ध है। एक प्रसिद्ध व प्रतिष्ठित सामन्त महिला के मुकावले मे निस्हाय अवला ने महाराजदेव से पुकार की। महाराजदेव ने उसकी पुकार को सुना और स्वयं घटना स्थान पर पधारे तथा अपने न्यायोचित निर्णय से उस अवला को सान्त्वना दी। इस प्रकार से महाराजदेव अपनी प्रजा को हर प्रकार से सच्चा न्याय देने में हर वक्त तत्पर रहा करते थे।

श्री सवाई महाराजा देव सहृदय, क्षमाशील और वड़े दयावान थे। जो अपराधी सच्चे हृदय से क्षमा का प्रार्थी होता था, वह महाराज के क्षमा दान से कभी वंचित नही रहता था। दुखी-जन को देखकर महाराज स्वयं दुःखी हो जाते थे। उनका हृदय दया से भर आता था। महाराज की क्षमा-शीलता के सम्वन्ध में अनेको सच्ची कहानियाँ है जिनको अभी लोग भूले नहीं है।

राज्य का एक पदाधिकारी जो काम की दोष पूर्ण असावधानी से पदच्युत हो चुका था, हताश होकर इधर-उधर फिरता रहा। अन्त में अपने दोषों पर पश्चाताप करते हुए केवल नीचे लिखा हुआ एक उर्दू पद्य महाराज की सेवा मे डाक द्वारा पेश किया—

मेरे गुनाह जियादा है, या तेरी रहमत।
हिसाव करके वतादे, मेरे रहीम मुझे॥

दयानिधि प्रभु ने इसी पर उसको वहाल करा दिया।

इसी प्रकार से एक वार एक गरीव वुढिया जयसमन्द के वन्ध में डूवने लगी। अकस्मात महाराज भी वही थे और उनके वहुत से अग-रक्षक साथ में थे। उस गहरे पानी में उस डूवती हुई वुढ़िया की दयनीय दशा को देखकर किसी का साहस उसे वचाने का न हुआ, उस समय स्वयं महाराज ने जल में कूद कर उस बुढ़िया की इस प्रकार प्राण रक्षा की जैसे गज को ग्राह से छुड़ाने के लिये दूसरों को न भेजकर स्वयं भगवान् दौड़े थे।

जाति और देश सेवा महाराज में कूट-कूट कर भरी थी। सन् १९२४ से १९३६ तक महाराजदेव क्षत्रिय उपकारिणी महासभा के सभापति पद पर रहे। उसपर वड़ी तत्परता तथा संलग्नता से कार्य किया। क्षत्रिय उपकारिणी सभा का २७वाँ वार्षिकोत्सव जो कि आवू पहाड़ पर हुआ था, महाराजदेव ने उसमें अपना भाषण देते हुए कहा, 'जीवन पर्यन्त जव-जव अवकाश मिले अपनी जाति की सेवा करना धर्म है। जाति के दोष प्रकट करने से उत्साह हीनता वढती है इसलिये पूर्वजों का गुण वर्णन करके उत्साह वृद्धि का उपाय करना चाहिये।' इसी प्रकार समय-समय पर होने वाले क्षत्रिय उपकारिणी सभा के वार्षिकोत्सवो पर महाराज ने अपना यथोचित योगदान दिया, जो क्षत्रिय जाति के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। देश और जाति

सेवा के लिये जहाँ कही भी महाराज देव को टोक लिया गया, वहाँ सब काम छोड कर भी पहुँचे रहे। १८ नवम्बर सन् १६२२ को लाहौर पधारे जहाँ पजाब की जनता ने बडे आदर, सम्मान और समारोह के साथ महाराज का स्वागत किया। महाराज ने अपने प्रभावशाली भाषण के साथ सनातन धर्म कॉलेज का शिलान्यास किया। नवम्बर सन् १६२४ मे महाराजदेव ने देहली नगर मे दयानन्द एग्लो-वैदिक स्कूल का शिलान्यास किया और अपना ओजस्वी भाषण दिया।

सन् १६२५ मे सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र पधारे—वहा गीता-भवन के उद्घाटन पर एक प्रभावशाली भाषण हुआ और स्थानेश्वर कुण्ड की छटाई के लिये जन समुदाय को उत्तेजित करने को महाराजदेव ने स्वय अपने हाथ से मिट्टी की छबडी निकाल २ कर फेंकी।

सन् १६२६ मे पजाब की हिन्दू जनता ने मुलतान नगर मे होने वाले धर्म सम्मेलन मे महाराज को याद किया। महाराज मुलतान पहुँचे तो ५००० जनता ने स्टेशन पर स्वागत किया और धूम-धाम के साथ सवारी का जुलूस निकला। महाराजदेव ने महती सभा के बीच अपने भाषण मे कहा, "ऐसे गौरव के स्थान मे जबकि आपकी सभा यह अधिवेशन कर रही है मैं क्या आऊँ? यह जानकर कि मुझे भारतमाता की सेवा और सनातन धर्म के उपदेशों का लाभ दोनो ही एक साथ होंगे। २०० मील क्या? २००० मील से भी अधिक यदि आकर उपस्थित होता तो क्या आश्चर्य है, आपही का प्रेम मुझे यहाँ खेंच लाया है।"

महाराजदेव की स्वभाव सिद्धि उदारता का लाभ इस राज्य ने ही क्या भारतवर्ष की जनता ने भी उठाया है। हिन्दू विश्वविद्यालय को २ लाख रुपए, अलीगढ मुस्लिम विश्व-विद्यालय को ६० हजार रुपए, मुलतान हिन्दू सभा को ४० हजार रुपए, किङ्ग एडवर्ड मेमो-रियल फण्ड को ७ हजार रुपए, प्रयाग विश्वविद्यालय के निर्माण मे ३ हजार रुपए और सुश्रुत के एक अग्रेजी अनुवादकर्ता को ५ हजार रुपये प्रदान किये।

महाराजा राष्ट्र भाषा हिन्दी के परम उद्धारक और प्रचारक थे। उन्होने अपने मिनिस्टरो के नाम 'सुमन्त' सिद्धार्थ, धर्मराज, जयन्त, भद्रपाल आदि रखा था। सडको के नाम रधुमार्ग, कुशमार्ग, प्रतापमार्ग, सरकारी बगलो के नाम भक्त निकेतन, प्रेम कुन्ज और इसी प्रकार हाथी, घोडे, बन्द, जगलो तक के नाम शुद्ध हिन्दी मे रख कर मातृ भाषा के प्रति प्रेम प्रकट किया था। वह भलि भाँति जानते थे कि बिना राष्ट्र भाषा के नीति और धर्म का सच्चा मार्ग नही अपनाया जा सकता है और राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति राष्ट्रीय भाषा हिन्दी पर ही निर्भर है। अत महाराज ने राज्य कार्य मे उर्दू की जगह हिन्दी लिपि की आज्ञा प्रचलित थी महाराजदेव की प्रबल आकाक्षा थी कि देव नगरी जो इस देश की भाषा है एक देशी राज्य मे वास्तविक भाषा की भांति फले-फूले। इस प्रकार महाराजा ने राष्ट्र भाषा हिन्दी का आदर किया।

महाराजदेव अपने गुरु के सच्चे भक्त थे। गुरुदेव ने उन्हे राजर्षि की उपाधि से विभूषित किया था। वे गुरुदेव की आज्ञानुसार देव व्रत आदि धारण करते और ध्यानावस्थित होते थे। महाराजदेव श्री रघुनाथजी के परम भक्त थे। समाचार पत्रो द्वारा ज्ञात हुआ कि महाराजदेव

शरीर त्याग से पूर्व ४ घण्टे तक श्री रघुनाथजी के ध्यान में मग्न रहे। इसी बीच उनको दो हुचकियाँ आई, और जीवात्मा ने शरीर त्याग दिया। महाराजदेव का शरीर विलायत से स्पेशल ट्रेन द्वारा अलवर लाया गया। सभी नर नारियों के मुख मलिन थे, सभी प्रिय बन्धु राजा वियोग में विकल थे। झालावाड़ नरेश ने अपने प्रिय बन्धु के वियोग में एक स्वरचित पद्य द्वारा जो हृदय के भाव प्रकट किये वह इस प्रकार से है—

> कैसो रग मांहि संग कियो है कराल काल,
> सूखी फुलवारी आज रम्य काम काज की।
> मिट गयो वीरता के भाल को तिलक लाल,
> टूट गई आज डाल क्षत्रिय समाज की।
> सूख गयो हाय ! आज प्रेम को अगाध सिन्धु,
> कविता मिलेगी कहाँ रस सिर ताज की।
> उर पर आरी चली काल की कटारी चली,
> स्वर्ग को सवारी चली प्यारे जयराज की।

ऐसे थे आदर्श महाराजा श्री सवाई जयसिंहजी। जिनको संसार ने आदर्श राजा माना। उनका अगाध प्रेम न्याय प्रियता व आदर्श कल्याण की भावना भुलाये नहीं भुलायी जा सकती है। यही कारण है कि उनका नाम सभी देशों में व सभी वर्ग के लोगों में चिरस्मरणीय है।

ध्रुवपद सम्राट अलाबन्देखाँ साहब—

अलवर राज्य के महाराजा जयसिंहजी विद्वानों, कलाकारों एवं कलावंतों को अपने दरबार में स्थान देकर आदर देते थे। उनके समय के संगीतकारों में ध्रुवपद सम्राट अलाबन्देखाँ साहब का नाम अविस्मरणीय है। महान् अकबर के दरबार में जो स्थान तानसेन का था वही स्थान महाराजा जयसिंह के दरबार में खाँ साहब का था। उनके ध्रुवपद अंग को सुनकर दरबारी आत्मविभोर हो उठते थे। महाराजा उनकी कला के पारखी थे और उनकी उत्कृष्ट कला के लिये उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। खाँ साहब का स्थान अलवर के "गुनीजन खाने" में तो सर्वोच्च था ही भारत के संगीत-कारों के बीच भी उनका ऊँचा स्थान था। वे अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित होते थे और अपने अलाप और ध्रुवपद का प्रदर्शन कर श्रोताओं के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते थे। उनकी ख्याति बहुत दूर-

दूर तक फैली हुई थी। अलवर मे जामामस्जिद वाली गली मे शर्मा प्रेस के पडोस मे ही उनका निवास स्थान था।

अलाबदेखाँ साहब का घराना जिसे स्वामी हरिदासजी का घराना माना जाता है और जिसमे बहरामखा साहब जैसे उत्कृष्ट सगीतकार पैदा हुए, भारतवर्ष मे अपना प्रमुख स्थान रखता है। ध्रुवपद गायकी के चार घरानो मे से यह डागरवानी का घराना ही अब शेष बचा है। खा साहब डागरवानी के एक श्रेष्ठ कलाकार थे। उन्होने अपने पूरे व्यक्तित्व को सगीत साधना मे लगा दिया था। वे सगीत साधना को योग साधना से कम नही मानते थे, इसीलिये उनका आचार अत्यन्त पवित्र था। वे पूरा सयम से रहते थे और नियमित रूप से ईश्वर की आराधना करते थे। चरित्र के ऐसे दोष जो स्वाभाविक रूप से कलाकारो म पैदा हो जाते हैं उनमे नही थे। वे अपने शिष्यो मे कहा करते थे कि ईश्वर सगीतकार उसे ही बनाता है जिसके पूर्व जन्म के कार्य अत्यन्त पवित्र होते हैं। उनका रहन-सहन एव चिन्तन सभी सूफियाना ढग का था। वे स्वभाव के बडे विनम्र थे और विशेष रूपसे शात और करुण भाव उनके जीवन एव कला मे विद्यमान थे। अपनी साधना के इतने पक्के थे कि नित्य चार बजे उठकर सगीत साधना मे लग जाते थे।

सगीत सम्मेलनो मे अलाबन्देखाँ साहब प्राय अपने बडे भाई जाकिरुद्दीनखा साहब के साथ गाते थे। जाकिरुद्दीनखाँ साहब महाराणा उदयपुर के दरबारी गायक थे। वे बडे ओजस्वी स्वभाव के थे। साधना के वे भी बडे पक्के थे। जब दोनो भाई बैठ कर गाते थे तो एक बार तो अपनी कला की गहनता और सुन्दरता के कारण श्रोताओ को मत्रमुग्ध सा कर लेते थे। जाकिरुद्दीनखाँ साहब गमक और हुदक अग मे अपनी विशेषता रखते थे, तो अलाबन्देखाँ साहब लहक एव अन्य अगो के सिद्धहस्त कलाकार थे। खाँ साहब की गायकी मे भावपक्ष बहुत सबल था। वे श्रोताओ को प्रसन्न करने के लिये ना गाते ही थे उससे अधिक भक्ति, वीर एव शृगार के ध्रुवपद और धमार को उनके भाव मे डूबकर उनके रस को पूरा रूप से अभिव्यक्त करके गाते थे। ध्रुवपद की गायकी को कभी उन्होने एक शैलीमात्र नही समझा बल्कि ईश्वर की साधना का एक अग माना। उनके घराने की वही परम्परा आज तक चली आ रही है। ध्रुवपद गायकी मे डागर घराना ही एक घराना है जो भाव और रस को उतना ही महत्त्व देता है जितना शैली और पद्धति को।

अलाबदेखाँ साहब ने सगीत की शिक्षा अपने पुत्र नसीरुद्दीनखा, रहीमुद्दीनखा, इमामुद्दीनखाँ साहब और हुसेनुद्दीनखाँ (तानसेन पाडे) को दी। नसीरुद्दीनखाँ साहब सबसे बडे बेटे होने के कारण अपने पिता से पूरा शिक्षा ले पाये। वे भी एक महान् कलाकार हुए और उनकी कला से प्रभावित होकर इदौर राज्य के महाराजा तुकोजी राव ने उन्हें अपने यहाँ पूरा सम्मान देकर दरबारी गायक के रूप मे रखा। नसीरुद्दीनखाँ साहब का पूरा व्यक्तित्व एव चरित्र अपने पिता अलाबदेखाँ साहब के साचे मे ही ढला था। वे भी बडी साधना और सयम वाले व्यक्ति थे और शैली और पद्धति के बडे मर्मज्ञ थे। उनकी गायकी का भाव-पक्ष इतना प्रबल था कि साधारण

श्रोता भी उनका गाना सुनकर उनसे प्रेम करने लगता था। अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में उन्होंने उच्च स्थान प्राप्त किया था।

अलावदेखाँ साहब के सन् १६३६ मे स्वर्गवास के बाद उनके सबसे छोटे पुत्र हुसेनुद्दीनखाँ साहब जो बाद मे तानसेन पांडे के नाम से विख्यात हुए अलवर के दरबारी गायक बने। वे स्वर और लय मे अत्यधिक कुशल थे। उनकी गायकी की अमिट छाप जिनके हृदय पर है वे अब भी उनको अलवर में याद करते है। वे अपने जीवन मे कुछ समय अलवर दरबार में रहे और उन्होंने अपने पिता अल्लाबंदेखाँ साहब की संगीत परम्परा को पूरी तरह जीवित रखा। श्रोताओं के हृदय में उनके लिये वही सम्मान था जो उनके पिता के लिये। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् जब अलवर महाराज का शासन समाप्त हो गया तो तानसेनजी कलकत्ता चले गये और वहाँ रवीन्द्र भारती में भारतीय संगीत के प्राध्यापक के रूप में काम करने लगे। कुछ वर्ष पहले उनका भी स्वर्गवास हो गया। नसीरुद्दीनखाँ साहब का स्वर्गवास बहुत पहिले ही सन् १६४६ में हो चुका था, लेकिन उनके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र नसीर मुइनुद्दीनखाँ और नसीर अमीनुद्दीनखाँ साहब डागर बंधु के नाम से ध्रुवपद गायकी के लिये भारतवर्ष में विख्यात हुए। नसीर मुइनुद्दीनखाँ साहब के आकस्मिक स्वर्गवास के पश्चात् उनके छोटे भाई नसीर अमुनुद्दीनखाँ नसीर जहीरुद्दीनखाँ और नसीर फैय्याजुद्दीनखाँ अब ध्रुवपद गायकी के प्रतिनिधि कलाकार है। अलावदेखाँ साहब के दूसरे पुत्र रहीमुद्दीनखाँ साहब जिनको भारत सरकार से पद्मश्री की उपाधि से विभूषित किया अभी अपने पुत्र फहमुद्दीनखाँ साहब के साथ अपने घराने की गायकी का प्रतिनिधित्व करते हैं। इमा-मुद्दीनखाँ साहब जो अलाबंदेखाँ साहब के तीसरे पुत्र थे, कुछ वर्ष पूर्व स्वर्गवासी हो चुके है। तानसेनजी के पुत्र अभी कलकत्ते मे संगीत की शिक्षा नसीर अमीनुद्दीनखाँ साहब से ले रहे हैं। इस तरह अल्लाबंदेखाँ साहब का घराना आज ध्रुवपद धमार की गायकी में भारतवर्ष में अपना अग्रिम स्थान रखता है।

प्रकृति की गोद एवं इतिहास के अंचल में दर्शनीय स्थल

अलवर जिले को प्राकृतिक सौन्दर्य वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ है। अलवर स्थित अरावली की पर्वत श्रेणियो में अनेक ऐसे ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक स्थल है, जिनका सौन्दर्य वर्षा-ऋतु में द्विगुणित हो उठता है। देश के ही नहीं वरन् विदेशी सैलानी भी अलवर के प्राकृतिक सौन्दर्य से मन्त्रमुग्ध हो यहाँ की ओर खिचे चले आते हैं। बाला-किला, सीलीसेढ़, तालवृक्ष, पाण्डुपोल, भर्तृहरी, सरिस्का, नारायणी, भानगढ़ आदि ऐसे स्थान हैं जो अपने में नयनाभिराम प्राकृतिक सौन्दर्य सँजोये हुए हैं।

बाला-किला —

अलवर नगर के ऊपर एक रक्षक के समान मस्तक ऊँचा किये, दोनों ओर पहाड़ियों की श्रेणियों की विशाल भुजायें फैलाये, समस्त नगर को अपने वक्ष में आबद्ध किये हुए अलवर का दुर्ग समयचक्र को गम्भीरतापूर्वक चुपचाप देखता रहा है। जहाँ कभी युद्ध के नक्कारों की

गडगडाहट पहाडो मे गूँजती हुई किले की दीवारो का थर्रा देती थी, तोपो की दहाडो से पहाड का कलेजा भी छिन जाता था, घोडो की टापो और हिनहिनाहट मे वायुमडल को गु जरित कर वाणी की भकार के स्थान पर भिगरों की भनभनाहट भय का सचार करती है। कितने ही वीर राजाओ ने इस दुर्ग पर अपना अधिकार किया और किले के गर्त मे विलीन हो गये, परन्तु यह दुर्ग अभी तक मस्तक ऊँचा किये निर्भीकता से बीते हुये युग की दास्तान सुनाता रहा है। इसमे कितने ही युद्धो, कितने ही राज्यो और कितनी ही विलास-वैभव की गाथाएँ पत्थरो के नीचे सोयी पडी हैं।

सम्वत् ११०६ मे आमेर नरेश काकिलजी के द्वितीय पुत्र अलघुरायजी ने इस पहाड पर छोटी सी गढी बनवाकर उसके नीचे एक नगर बसाया जिसके ध्वशावशेष रावणदेहरा नाम से विख्यात हैं। इसी नगर का नाम अलपुर रखा गया। इसके उपरा त उनके पुत्र सागरजी से निकुम्भ क्षत्रियो ने यह दुर्ग छीन लिया और अधिक विस्तार से इसका निर्माण कराया जिसके अवशेष दुर्ग पर अब भी विद्यमान है। निकुम्भों की पूज्य दवी चतुभु ज आज भी दुग पर स्थित है। कहा जाता है कि ये लोग अपनी देवी के सम्मुख नर बलि दिया करते थे। इस नर हत्या से प्रजा बडी दुखी हुई। एक डोमणी के पुत्र की बलि की बारी आई तो उसकी रक्षा के लिए वह तत्कालीन अलावलखा खानजादे के पास गई और कहा कि निकुम्भ बडे हिंसक है, इनका नाश होना चाहिए। दुर्ग की बुर्ज के दाँतो से मिट्टी डालकर, डोमणी ने नियत सकेत किया और अलावलखाँ ने ऐसे शुभ अवसर पर, जबकि निकुम्भ मास मदिरा मे धुत्त थे, दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। निकुम्भ मारे गये और दुर्ग पर अलावलखाँ का अधिकार हो गया। उसने विशाल द्वार और परकोटा बनवाया। अलावलखाँ इब्राहिम लोदी के युद्ध मे सन् १२५२ मे मारा गया।

'तवारीख फरिश्ता' मे लिखा हुआ है कि सन् १२५१ मे हमराज राजपूत ने अलवर के पर्वतो से निकलकर पृथ्वीराज के पुत्र गोला को रणथम्भोर की ओर भगा दिया। इससे सिद्ध होता है कि अलावलखाँ की मृत्यु से ३३१ वर्ष पूर्व ही अलवर बस चुका था।

अलवर दुग पर ही ३ अप्रैल सन् १५२५ मे मुगल सम्राट बाबर यहाँ एक रात ठहरा था। चलते समय वह अपने सामत वैन सुल्तान को यहा छोड गया था। इसने दुग पर एक बुज भी बनवाई जिसपर नाम आदि खुदे हुये है। बाद मे बाबर ने अपने बेटे हिन्दाल को अलवर जागीर मे दे दिया, अत अलवर राज्य पर मुगलो का भी शासन रहा यह इतिहास सिद्ध है।

सलीमशाह बादशाह सूर के समय मे इस दुग के अध्यक्ष चादकाजी ने बादशाह के नाम पर सलीम सागर बनवाया था जो अब भी वतमान है। इस सागर पर एक शिला लेख भी लिखा हुआ है। भरतपुर के राजा सूरजमल ने भी इस दुग मे राज-भवन बनवाकर एक कुण्ड बनवाया जो सूय कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १८३२ मे अलवर के महाराजा प्रतापसिंह ने इस दुग पर अधिकार किया। उन्होंने अपने इष्टदेव सीतारामजी का मन्दिर भी दुर्ग पर बनवाया। प्रतापेश्वर शिवजी की मूर्ति अब भी एक छतरी मे विद्यमान है। द्वितीय शासक बख्तावरसिंहजी ने दुर्ग मे एक प्रताप स्मारक बनवाया।

शिल्प शास्त्रानुसार अलवर का दुर्ग पहाड के मस्तक पर होने के कारण यदियानि शिल्प जाति का है। इसकी ऊँचाई, समुद्र से १६६० फुट और समतल भूमि से १००० फुट है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण ३ मील, चौडाई पूर्व से पश्चिम १ मील परिधि ६ मील है। इसमे १५ बड़ी और ५२ छोटी बुर्जे है, जिसमें ४४४ छिद्र गोली के लक्ष्य के लिए बने हुये है। समस्त कंगूरे ३३५६ है और प्रत्येक कंगूरे मे दो-दो छेद है, जिनमें से एक बार में ६७१८ गोली चलाई जा सकती है। दुर्ग की रक्षा के लिए बाहर चारो ओर ८ बुर्जे है। एक बुर्ज का नाम काबुल खुर्द है, जिसका वर्णन ऊपर आ चुका है, दूसरी का नाम नौ गजा बुर्ज है। मंगलसिंहजी ने दुर्ग निरीक्षण के लिए बुर्ज खुदवाई जिसमे उस समय एक लम्बे डील-डौल वाले पुरुष की ठठरी, वस्त्र से ढँकी हुई प्राप्त हुई। सम्भव है उस पुरुष के दीर्घाकाय होने के कारण ही बुर्ज का नाम नौ गजा बुर्ज रहा हो। तीसरी बुर्ज का नाम हवा बँगला है जो श्री शिवदानसिंह ने वायु सेवन के निमित्त बनवाई थी। दुर्ग मे प्रवेश करने के लिए पाँच पोल है। पश्चिम में चाँदपोल है जो निकुम्भ क्षत्रीय राजा चाँद की बनवाई प्रतीत होती है, इसी के नाम पर पोल का नाम चाँदपोल है। उन दिनो यही दुर्ग का मुख्य फाटक था। इसका चन्द्रमुख होने के कारण भी चाँदपोल है। पूर्व की ओर सूरजपोल है। इस पोल का सूर्यमुखी होने के कारण नाम सूर्यपोल है। सूरजमल से भी इस नाम का अनुमान करते है। दक्षिण की ओर लक्ष्मणपोल है। इस पोल के नीचे के प्राचीन नगर तक (रावण-पार्श्वनाथ) एक पक्की सडक थी जो अब टूट गयी है। इसी मार्ग से रावराजा प्रतापसिंहजी ने अलवर दुर्ग मे प्रवेश किया था। जयपोल महाराजा जयसिंहजी के नाम पर सम्भावित की जाती है। कृष्णपोल दुर्ग के नीचे का पूर्वी द्वार है और कृष्णकुण्ड के निकट होने के कारण कृष्णपोल प्रसिद्ध है। अन्धेरी दरवाजा उत्तर की ओर जहाँ दो पहाडियाँ है मिला है और सूर्य का प्रकाश न पहुँचने के कारण अन्धेरा रहता है।

दुर्गो का आज के युग मे कोई महत्त्व नही है किन्तु यह हमारे पूर्वजों के शौर्य और प्राचीन इतिहास के स्मारक है, जिन पर हमारी संस्कृति आधारित है। कितने ही वर्षो से यह दुर्ग अलवर शहर के परिवर्तनो को चुपचाप देख रहा है। इसकी सुरक्षा का दायित्व हमारी सरकार पर है।

सीलीसेड़—

सीलीसेड़ राजस्थान [illegible]-कानन है। अरावली पर्वत श्रेणियो मे तीनों ओर से घिरा यह स्थल बरबश ही देशी-विदेशी सैलानियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यह स्थान जयपुर-दिल्ली राजमार्ग पर अलवर के दक्षिण मे सिर्फ आठ मील की दूरी पर है। वर्षा-ऋतु मे प्रकृति सुन्दरी अपनी कजरारी आँखों में कज्जल आंज कर रात और दिन, मदहोश हो यहाँ नृत्य करती है। सीलीसेड़ की ओर मुड़ने पर गहरे सघन जंगल प्रारम्भ हो जाते है। नीले गहरे आसमान के नीचे, दूर से आता हुआ पवन, पात-पात से भीनी-भीनी सुगन्ध लाकर पर्यटकों को मन्त्र-मुग्ध कर देता है।

सीलीसेड़ पहुँचते-पहुँचते पश्चिम में एक पहाड़ी पर बनी हुई विशाल कोठी को देखकर हमारी आँखों में अलवर के महाराणा विनयसिंहजी का वैभवपूर्ण इतिहास उतर आता है। इस

कोठी के पत्थरों में भी एक अत्यधिक मृदुल कहानी सोयी हुई है। विनयसिंहजी की रानी शीला शहर के शोर-शराबे में पूर्ण वातावरण को बिल्कुल पसन्द नहीं करती थी, इसलिए विनयसिंहजी ने शहर से बिल्कुल दूर अपनी रानी के लिए यही उपर्युक्त स्थान समझा और यहाँ पर कोठी का निर्माण कराया। यद्यपि राजस्थान सरकार ने इस कोठी को राजस्थान होटल के रूप में परिवर्तित कर दिया है तब भी यह अपनी पुरानी कहानी कहने में पूर्ण सक्षम है। महारानी शीला के नाम पर ही इस स्थान का नाम सीलीसेढ पड़ गया हो ऐसा लोगों का अनुमान है। इस स्थान का धार्मिक महत्त्व भी कम नहीं है। पास में ही शीतला माता का मन्दिर है। प्रतिवर्ष वैसाख कृष्णा अष्टमी के दिन यहाँ पर मेला लगता है। ऐसा भी कहा जाता है कि शीतला माता के नाम पर ही इस स्थान का नामकरण सीलीसेढ पड़ा होगा।

इस स्थल का समग्र सौन्दर्य यहाँ की विशाल नीली भील में सिमट कर आगया है। वर्षा ऋतु में यह भील 'जल-विहार' के लिए विशेष आनन्ददायी होती है। लोग यहाँ पर आकर वन-भोज का आनन्द उठाते हैं। भील के बीच में बना हुआ 'जल महल' प्रकृति नर्तकी के हाथों में रजत-मुन्दरी सा प्रतीत होता है। भील के दूसरी ओर छोटे-छोटे सरोवर हैं, जिनमें शरद-ऋतु में शरद सुन्दरी अपने कोमल अरुण हाथों में अरुण कमलों की पंक्ति लगाती है। यहाँ के कण-कण में हमेशा मृदुल राग छिड़ा रहता है।

तालवृक्ष—

तालवृक्ष अलवर का ऐतिहासिक, पुण्यतीर्थ, एवं प्राकृतिक दृष्टि से अत्यधिक वैभवपूर्ण स्थान है। यह स्थल अलवर-नारायणपुर मार्ग पर पहाड़ों की गोद में सुशोभित है। अलवर से इसकी दूरी सिर्फ २२ मील है, नारायणपुर से यह सिर्फ ५ मील की दूरी पर है। यहाँ तक पहुँचने का साधन रोज आने-जाने वाली नियमित परिवहन बसें हैं।

तालवृक्ष अपने हृदय में पाण्डवकाल के उस महान् ऋषि की स्मृति सँजोये हुए है जिन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण यहाँ तप करके बिताये थे। ऐसे महान् ऋषि माण्डव्य थे। यहाँ के पर्वत को नेतनाग पर्वत और नदी को फल्गु नदी कहा जाता है। संस्कृत ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है। इन ऋषि के महान् भक्त मनोहर गिरि गोसाईं को सं० १६५७ में बलभद्रसिंह शेखावत ने १०१ बीघा जमीन मुआफी के रूप में प्रदान की थी।

यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य मानो यहाँ के शीत और उष्ण पानी के कुण्डों में ही समा गया हो। दूर-दूर से आने वाले हारे-थके सैलानियों की समग्र मन की थकावट यहाँ के दृश्य देखने पर दूर हो जाती है। पहले ये कुण्ड कच्चे थे, किन्तु फिर इसका जिर्णोद्धार महाराजा रामसिंहजी ने करवाया था। इन्हीं कुण्डों के ऊपर गंगाजी का मन्दिर है जिसकी प्रतिष्ठा बाबा पूर्णदास ने करवायी थी। थोड़े समय बाद यहाँ पर एक चमत्कारपूर्ण घटना घटी। तालवृक्ष के खेतों में एक भव्य मूर्ति मिली जो बराह भगवान की है अतीत के साये में पड़ी यह प्रतिमा न मालूम कब से धरती की चादर ओढ़े पड़ी थी, जो आज सदियों के बाद जागी है। इस मूर्ति को बराह मन्दिर में पधराया गया है। अनेक कुण्डों का निर्माण एवं मन्दिरों के जीर्णोद्धार में तहसीलदार

श्री श्यामसिंह का विशेष योगदान रहा है। उन्हीं के परिश्रम एवं साहस से तालवृक्ष की काया-पलट हो गई है।

भर्तृहरि—

भर्तृहरि अलवर से २२ मील दूर है। प्रमुख सड़क से पूर्व की ओर दो मील का रास्ता फटता है जो सीधा पुनीत तीर्थ स्थान भर्तृहरि को पहुँचता है। इस स्थान का पीछा भी अरावली पर्वत श्रेणियों ने नहीं छोड़ा। यह स्थान धार्मिक एवं ऐतिहासिक अधिक है। सुहावने पर्वतों पर उगे हुये हरे-हरे वृक्ष और उन पर पड़ी सफेद बादलों की श्वेत चादर अचानक उस महान् योगी महाराजा भर्तृहरि की याद दिलाती है, जिनके जीवन मे विरह और मिलन, योग और भोग, का अद्भुत समागम था। यह स्थान भी अपने हृदय मे उज्जैन के राजा और रानी की मौन व्यथा छिपाये हुये है। महाराजा भर्तृहरि की न्याय-प्रियता जगत प्रसिद्ध थी। अपनी रानी पिंगला को वे नि.सीम प्रेम करते थे। उनकी जीवन-सरिता सहज प्रवाह से बह रही थी कि अचानक उनके फूल जैसे जीवन मे विमोह और वैराग्य के बादल छाने लगे। दिल ही तो था रानी किसी और से प्यार करने लगी। इस घटना ने उन्हे साधु बनने के लिए विवश कर दिया। दर-दर भिक्षा माँगने लगे। तपस्या के अन्तिम दिनो में उन्होंने उज्जैन से चल कर अलवर आकर अरावली की पर्वत श्रेणियो मे समाधि लगाई और अपने मिट्टी के शरीर को धरती की मिट्टी मे मिला दिया। उन्ही की समाधि पर अब सुन्दर छतरी बनाई गई है, जिसमे रात और दिन अनवरत घी की ज्योति जलती रहती है। यहाँ का एक-एक कण भर्तृहरिजी के पुनीत उप-देशो से पवित्र है। यह स्थान अब धार्मिक स्थल के रूप मे पूजनीय है। यहाँ पर भादवा और वैशाख मे मेला लगता है। समाधि के ठीक सामने ही एक भव्य शिवालय है, जिस पर भक्तजन श्रद्धा के पुष्प चढाते है। यहाँ का प्राकृतिक-सौन्दर्य भी अपूर्व है। पास ही समाधि के पास पहाड़ों से आता हुआ पानी छल-छल करता गिरता है, जिसमें धार्मिक तीर्थयात्री एवं सैलानी स्नान का आनन्द लेते है।

सरिस्का—

सरिस्का, अलवर से जयपुर के मार्ग मे पड़ता है। सरिस्का की कोठी रूप मे स्वर्ग-कलश में अपना श्वेत मुख धोती हुई सुन्दर सी प्रतीत होती है। यह स्टी हुई अटल कोठी महाराजा जयसिंह के वैभवपूर्ण दिनो की कहानी चुपचाप हमारे कानो मे कह रही है। अरावली की पर्वत श्रेणियो की तलहटी मे बनी यह कोठी, मा के गोद मे खेलती हुई शिशु की भाँति लगती है।

यह स्थान पहले बिल्कुल निर्जन था और यहा पर वास था तो केवल हिंसक पशु जानवरो का जिनकी चिंघाड़, किलकार, और धड़क कानो को फोड डालती थी। ऐसे दृश्य यदि आज अधिक नही दीखते तो क्या है थोड़े तो दीखते ही है? महाराजा जयसिंह ने इसे आखेट स्थल के रूप में चुना था। उन्ही के समय मे उनके साथ ड्यूक ऑफ एडिनबरा शिकार के लिए आए। तभी उन्होंने इस भव्य कोठी का निर्माण कराया था। अब सरकार ने इसकी बिल्कुल काया पलट

कर दी है। सरिस्का की कोठी का दिखाने के लिए हमे वहा पर 'गाईड' भी मिलते है। इस कोठी मे महाराजा जयसिह के काल की बहुत सी सुन्दर वस्तुएँ रखी हुई हैं जा आज तक चुपचाप अपनी करुण कथा कहने के लिए जीवित हैं। कोठी के सामने ही अब 'पर्यटक होटल' खोल दिया है जहाँ सैलानी अपनी रात चैन स बिताते हैं। इस स्थल को अब पशु-पक्षी विहार के रूप मे परिचित कर दिया गया है। बहुत से पशु-पक्षी देशी विदेशियो के मन को हर लेते है वे हैं हरिण, साभर, चीतल शेर। पास मे ही काली घाटी के दृश्यो का देखकर दर्शकगण आत्म विभोर हो उठते हैं। बल खाती हुई सर्पाकार सडक पर वृक्षो के गहरे साये इस घाटी की सुन्दरता मे चार चाँद लगा देते है।

पाण्डुपोल —

पाण्डुपोल अलवर जिले के ऐतिहासिक, धार्मिक एव प्राकृतिक स्थलो मे सर्वोत्तम स्थान है। यह स्थान अलवर से दक्षिण पूर्व मे स्थित है। यहा पर प्रकृति नतकी हरित साडी पहन, झरनो की पायल बाध, झनझनाती हुई, थिरकती हुई आकाश लोक म पहाडो की गोद मे उतरती ह। नीले वितान के नीचे प्रकृति जब अपनी भिन्न-भिन्न भाव भगिमा मे नृत्य करती है तो दर्शक-गण मदहोश हो जाते है और एक ऐसे नशे का आलम छाता है कि पता नही रहता वे कहा हैं और कहा जा रहे हैं। अलवर से नटुडा गाँव तक रास्ता सुगम है किन्तु इससे आगे चलते-चलते रास्ता अधिक दुगम और तग होता चला जाता है। कही पर बहुत अधिक ऊँचाई तो कही पर नयनाभिराम ढलान, आगे पीछे चारो तरफ पहाड स्वर्ग लोक की चार दीवारी सी प्रतीत होती है।

इस दुष्ट राह को पार करते ही हनुमानजी का विशाल श्वेत मदिर दृष्टिगोचर हाता है। कितनी निस्पृहता एव शान्ति ह यहा के जन जीवन मे। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बाबा निमय-दासजी ने की थी जिनकी समाधि यही पर एक ओर बनी हुई है। भादो के महीने मे यहाँ पर एक मेला लगता है जिसमे दूर-दूर से यात्री आते हैं। मन्दिर से आगे चलते-चलते एक मील की दूरी पर वह स्थान आता है जिसे देखने के लिए हम सब लालायित रहते हैं। यह स्थान पाण्डुपोल है। यहा तक अब पक्की सडक बन चुकी है। सडक से तीस पैंतीस फुट ऊँचा पहाड कटा हुआ अधर रखा हुआ है। इसके पीछे भी एक ऐतिहासिक कहानी है। पाण्डुओ ने अपना अज्ञातवास यही पर किया था किन्तु फिर भी जब कौरवो की सेनाओ ने उन्ह यहाँ पर घेर लिया तब भीम ने पहाड मे गदा मार कर अपना मार्ग प्रशस्त किया था। इस कथा मे कितनी सत्यता है इसका कोई निश्चित प्रमाण तो मिलता नही ऐसा केवल अनुमान किया जाता है। वैज्ञानिको और पुरातत्व वेत्ताओ का विचार है कि यह पहाड धीरे-धीरे अपने आप पानी के तेज बहाव के कारण कट गया होगा। यहाँ पर ही विशालकाय पर्वतो से तेज पानी के झरने बहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति ने अपने नृत्य के साथ साथ एक अलौकिक राग छेड दिया है।

नारायणीजी —

अलवर जिले की राजगढ तहसील मे बरवा डूंगरी की तलहटी मे यह अत्यधिक रमणीय और सुरम्य स्थान है। यहाँ पर नाइयो की कुल देवी नारायणी माता का मदिर है। इसके

ठीक सामने ही संगमरमर का एक छोटा सा कुण्ड है। प्रति वर्ष वैसाख शुक्ला एकादशी को यहां पर मेला लगता है जिसमे बम्बई, मद्रास, लंका, कलकत्ता तक के नाई नारायणी माता से प्रसाद पाने के लिए एकत्रित होते हैं।

यह स्थान प्राकृतिक दृष्टि से बहुत ही सुन्दर है। मन्दिर के चारों ओर आम, केला, कचनार, केवड़े आदि के सघन वृक्ष है। इन वृक्षो के साये मे एक अत्यन्त मर्मस्पर्शी करुण कथा हुई है जो आज से हजारो वर्ष पूर्व घटित हुई थी। सं० १०१६ की बात है—जयपुर राज्य में मीरा गांव के नाई परिवार में विजयराम की पुत्री कर्मेती का विवाह राजोरगढ निवासी कर्मसी नाम के व्यक्ति के साथ हुआ था। कर्मेती जब अपने पति के साथ श्वसुर-गृह जा रही थी तो उसके पति को इसी स्थान पर सर्प ने डस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। कर्मेती वहां के ग्वालो की सहायता से अपने पति के साथ-साथ सती हो गयी। यही देवी महान् समय के साथ-साथ नारायणी-माता के रूप मे कही जाने लगी और यही देवी भक्त जनो के लिए श्रद्धा की महान् देवी बन गई। मन्दिर के सामने जो सगमरमर का कुण्ड है उसमे तीन चार फुट पानी रहता है। इसका जल शीशे की तरह धवल है। यह जल नारायणी-माता का ही प्रसाद है, जो अपने आप अन्तः स्रोतों से निकलता रहता है और साफ होता रहता है। लोग यहां वर्षा ऋतु में सैर-सपाटे के लिए आते है और वन-भोज का आनन्द उठाते है।

भानगढ़—

भानगढ प्राकृतिक-सौन्दर्य के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष रूप से प्रसिद्ध है। भानगढ़ के अतीत काल से सोये हुए खण्डहर आज भी पुकार-पुकार कर अपनी गाथा कहते हैं। भानगढ़ में कौन-कौन शासक हुए, किन-किन ने आक्रमण किया, आज भी यहाँ के पत्थर अपनी मौन व्यथा प्रकट कर रो-रो कर अचानक कह देते हैं। किसी समय में यह बहुत अधिक सुन्दर नगरी थी। बात अधिक पुरानी भी नहीं। इतिहास प्रसिद्ध महाराजा मानसिंह के अनुज महाराज माधोसिंहजी की यह राजधानी थी। इस नगरी को सं० १६३१ में महाराजा भगवान-दासजी ने इस स्थान की प्राकृतिक शोभा से मुग्ध होकर बसाया था। उस समय इसमें करीब दस हजार घरों की ही बस्ती थी। यह नगरी करीब १५० वर्षो तक आबाद रही। ज्यो-ज्यों समय बढ़ता गया इस नगरी की वैभवश्री क्षीण होने लगी। इस सब का कारण वहां का अकुशल शासन था। माधोसिंहजी के वंशधर धीरे-धीरे जागीरदारों के रूप में बटने लगे। नेतृत्व दिन पर दिन कमजोर होता चला गया। इन जागीरदारो की एक शाखा ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। यह समय औरंगजेब का था। इन्ही जागीरदारों की एक शाखा ने शाही फौज की मदद से भानगढ़ पर कब्जा कर लिया। सं० १७२० मे सवाई राजा जयसिंह ने इस राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। कुछ लोग इस नगर के उजड़ने का कारण अकाल भी बतलाते हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि सं० १८७४ में यह नगरी पूर्ण-रूपेण खण्डहर थी। आज भी भानगढ़ के टूटे-फूटे खंडहर, इमारतें, फव्वारे, उस समय की कुशल वास्तु कला का परिचय देते है। राजा भगवानदासजी ने एक स्वप्न देखा था जो समय के थपेड़ो से जर्जरित

हो गया। चादनी भी रात मे जब यहाँ आती है तो इसकी दयनीय दशा को देखकर फफक फफक कर रो पडती है।

नलदेश्वर—

अलवर और थानागाजी के बीच पहाडिया मे एक अत्यधिक सुरम्य स्थान नलदेश्वर के नाम से विख्यात है। बारा से बाहर निकलते ही जयपुरी हवामहल के समान पहाडियाँ सीधी दीवार की भाँति खडी दिखाई देती है। सडक के बाईं ओर पहाडी घाटी मे अन्दर तक जाने वाला बीहड मार्ग नलदेश्वर को ले जाता है।

नलदेश्वर मे महादेवजी का मन्दिर है, जो नैसर्गिक पहाडी चट्टान से बना हुआ है। सैकडो सीढिया चढने के उपरान्त ही वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। उस मन्दिरनुमा चट्टान से पानी टपकता रहता है मानो प्रकृति का कण-कण महादेव को जल चढा रहा हो। बीहड जगल पहाडी नाला और नैसर्गिक कुण्ड यहाँ की शोभा है। इस स्थान पर वही पहुँच सकता है जो ४-५ मील पहाड मे पैदल जा सके।

जयसमन्द बाध—

अलवर से केवल ४-५ मील की दूरी पर स्थित जयसमन्द बाध सैलानियो के लिए एक सुन्दर एव आकर्षक केन्द्र है। महाराजा जयसिहजी के द्वारा निर्मीणित यह बाघ सिचाई की दृष्टि मे तो महत्त्वपूर्ण है ही साथ ही विस्तृत जल के फैलाव के तथा सुन्दर छतरियो के कारण भी महत्त्वपूर्ण बन गया है। महाराजा जयसिहजी ने इसे बडे प्रेम से बनवाया था तथा वे चाहते थे कि अलवर की जनता के लिए यह सुन्दर एव आकर्षक विहार-स्थल बन जावे। उन्होने एक बार यहा बहुत बडा मेला लगवाया था जिसमे भारतवर्ष की प्रसिद्ध दूकानें लगी थी।

मील भर लम्बी पाल और पाल की क्तार बाँध छतरियाँ तथा दूर-दूर तक फैला हुआ जल जयसमन्द की सुन्दरता मे चार चाद लगा देता है। सैलानियो के लिए सरकार इस स्थान को विकसित कर अन्य सुविधाएँ जुटादे तो यह अलवर के समीप सुन्दर विहार-स्थल हो सकता है।

इनके अलावा हम नलदेश्वर, जयसमन्द, विजयमन्दिर, गर्वाजी, पाराशर, नीलकठ को भी कैसे भुलावे। ऐसा लगता है मानो प्रकृति मा ने अपना सारा सौन्दय का प्रसाद अलवर को ही बाँट दिया हो। इन स्थानो को देखकर हमारी बुद्धि चकरा जाती है और यह सोचने लगते हैं कि यह स्थान राजस्थान का रेगिस्तान है या प्राकृतिक स्थान? इसका निर्णय आप स्वय करें।

इतिहास के दर्द को कोई नही देख पाया। वर्तमान मे आदमी उलझा रहता है, भविष्य की कल्पना मे मग्न रहता है और अतीत की गाथा को दोहराता रहता है, पर वह अतीत गाथा कितनी सच्ची होती है तथा कितनी काल्पनिक होती है इसे स्वय इतिहास भी बताने मे सर्वदा असमर्थ रहा है। राजाओ का, युद्धो का, कलाओ का एव राजनैतिक उथल पुथल का दर्द भले ही इतिहास मे छिपा पडा हो, पर सामान्य जनता का दर्द इतिहास भी अकित नही कर पाया है।

असली इतिहास उस भीड़ का ही होना चाहिए जिसका खून-पसीना राज्यों का निर्माण करता है। अलवर के किले की कहानी, शहरों की कहानी एवं पत्थरों, दीवारों और कागजों पर अंकित कलाओं की कहानी के कण-कण में सामान्य जनता के खून-पसीने की छाप है, पर इतिहास उस सबको कहने में असमर्थ है। वह मौन साधे बैठा है। एक दिन ऐसा अवश्य होगा जब इतिहास का वास्तविक दर्द स्रोत बन कर फूट निकलेगा और उस दर्द में सारा शहर सराबोर हो उठेगा। उस दिन की हमें भी इन्तजार है।

साहित्य, कला और सस्कृति

साहित्य, कला और संस्कृति तीना ही एक दूसरे में समाहित, एक दूसरे पर आश्रित हैं। किसी भी देश, जाति एवं नगर की जीवन्तता एवं उसकी आत्मा साहित्य, कला और संस्कृति में दर्पण के समान प्रतिबिम्बित होती है। देश का स्वरूप एवं उसका व्यक्तित्व उसकी कलात्मक धरोहर से ही आँका जाता है। जिस देश का कलात्मक परिवेश जितना ही समृद्धशाली है वह उतना ही उन्नत देश है।

अलवर की सास्कृतिक परम्परा भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। साहित्य की दृष्टि से यह प्रान्त उर्वर रहा है। अन्य ललित कलाओं का विकास यहाँ पर अनवरत होता रहा है। साहित्य चित्र-कला, संगीतकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्यकला की देन अलवर में बेजोड़ रही है। अलवर जिले की आत्मा आज भी ग्रंथों, चित्रों, मूर्तियों एवं मंदिरों और प्रासादों के रूप में देदीप्यमान हो रही है। अलवर का कलात्मक परिवेश छतरियों गुम्बदों एवं महलों से झाँक-झाँक कर अपने अतीत को देखकर मग्न हो रहा है। असली अलवर की जानकारी करने के लिए उसकी आत्मा को टटोलना पड़ेगा। प्राचीन ग्रंथों, चित्रों एवं खण्डहरों में भटकना पड़ेगा तभी उसकी आत्मा में सामंजस्य हो पावेगा। तभी अलवर हमारा होगा और हम अलवर के होंगे।

साहित्य

अलवर की साहित्यिक परम्परा को सुविधा के लिए हम तीन मार्गों में विभाजित कर आंक सकते हैं—

१ भक्ति परम्परा, २ रीति परम्परा एवं ३ आधुनिक परम्परा। इसके अतिरिक्त लोक साहित्य, भाषा और बोली आदि के विवेचन में भी अलवर की साहित्यिक गतिविधियों का पता चल सकता है।

भक्ति परम्परा—

भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषता है भक्ति। इस परम्परा के विकास में अलवर जिले का जो योगदान रहा है वह अविस्मरणीय है। प्राचीन समय से ही यह स्थान तथा इसकी पर्वतीय कंदराएँ ऋषि और मुनियों की तपोभूमि रही है। योगीराज भर्तृहरि ने उज्जैन से आकर यहीं तपस्या की और हो सकता है अपने अनुभवों को शतकों के रूप में यहीं बैठकर अंकित किया हो। जिले में कितने ही ऐसे प्राचीन स्थल हैं जो ऋषियों की अमर आत्मा को अपने परिवेश में सँजोए हुए है। नांगलवानी (थानागाजी) में भाण्डीर ऋषि का कुण्ड, अंगारी (थानागाजी) मे अंगिरा ऋषि का आश्रम, विजयपुरा (बानसूर) मे लोमश ऋषि का स्थान, तालवृक्ष में माडव्य ऋषि का स्थान तथा थानागाजी मे ही पाराशर ऋषि का स्थान अलवर की भक्ति परम्परा के पोषक रहे है। उपलब्ध भक्ति-साहित्य के आधार पर ही अलवर की उपर्युक्त परम्परा का संक्षिप्त विवेचन कर सकते हैं। कुछ ऐसे संत कवि यहाँ पर हुए हैं, जिन्होंने अलवर को साहित्यिक दृष्टि से अमर बना दिया है। सर्वश्री लालदास, चरणदास, सहजोबाई, दयाबाई, अलीबख्श, रणजीतसिंह बेनामी, बख्तेश, प्रतापसिंह आदि भक्त कवियों का नाम इस दृष्टि मे उल्लेखनीय है।

लालदास—

अलवर के प्राचीन संतों मे लालदासजी का नाम सर्व प्रथम आता है। इनकी गणना मेवात के महान् संत और सर्वोपरि सुधारक के रूप में की जाती है। इनका जन्म सं० १५९७ मे अलवर से ४ मील दूर विजयमन्दिर सड़क पर स्थित धोलीदूब नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। ये संत दादू और महाकवि जायसी के समकालीन हुए। 'भक्तमाल' में श्री नाभादास ने इनका परिचय देते हुए लिखा है—

हुए हरी गुन खानि सदा सत संग अनुरागी।
पद्म पत्र ज्यो रह्यो लोभ की लहर न लागी॥
विष्णु रात मम रीति बधेरे ज्यों तन त्याज्यो।
भक्त बराती वृन्द मध्य दूलह ज्यों राज्यो॥
खरी भक्ति हरि पाँवरे, गुरु प्रताप गाढी गही।
जीवन जस पुनि परम पद लालदास दोनों लही॥

इनका जन्म मेव जाति मे हुआ था। इनके पिता का नाम चांदमल और माता का नाम समदा था। तत्कालीन मेवो का रहन-सहन हिन्दू-धर्म के अनुसार था। इन्होंने सदा लकड़ी बेचकर अपना निर्वाह किया। इनके बहुत से चमत्कारों की कथाएँ जनश्रुति के आधार पर

मिलती हैं। इनका देहान्त स० १७०५ (भरतपुर राज्य) ग्राम मे हुआ और शेरपुर में इन्हें समाधि दी गई। इनकी स्मृति के रूप मे आज भी शेरपुर, बादोली, धोलीदूब और नगला मे मेले भरते हैं तथा 'लालदास का रोट' बनाया जाता है। मेजर पी डब्ल्यू पाउलट ने अपने 'अलवर गजेटियर' मे इनके विषय मे बहुत विस्तार मे लिखा है।

इनके मतानुयायी हिन्दू और मुसलमान सभी हैं। इस मत का नाम 'लालदासी' सम्प्रदाय है जो कबीर पथ से मिलता है। ये साधु और गृहस्थी दोनों होते हैं। प्रत्येक लालदासी भिक्षा माँगना हेय समझता है। वह अपने परिश्रम से आजीविका पैदा करता है। राम नाम ही उसका जप है। *आगरा, भरतपुर तथा अलवर मे इनके बहुत से अनुयायी हैं। इनकी वाणी* का सग्रह 'लालदास की चेतावणी' के नाम से जयपुर के श्री हरिनारायण पुरोहित द्वारा हुआ है। इनका 'मखदूम साहब' लालदासियो के लिए वेद सदृश है। कविता का प्रतिपाद्य विषय हिन्दू मुस्लिम एकता, अन्य निर्गुण सतो की भाति मन की एकाग्रता, गुरु का महत्त्व, नम्रता, पवित्रता आदि है। भाषा की दृष्टि से वह लोक भाषा और मिश्रित भाषा कही जा सकती है, जिसमें उर्दू, *ब्रज भाषा आदि सम्मिलित हैं। इनकी वाणी मे से कुछ उदाहरण देना उचित होगा।*

कहै लाल साई को प्यारो, श्रवण सुनो इक सबद हमारो।
हिन्दू तुरक एक सो सूझै, साहब सब घट एकहि मूझै॥
कहै लाल साई को प्यारो, साहब एक बणावण हारो।
हिंदू तुरक को एकहि साहब, राह बणाई दोय अजायब॥

मगन भीख ना मागई, मागन आवें सर्म।
घर-घर हाडन दोष है, क्या बदसा क्या हर्म॥
साध-साध सब कोइ कहै, साध समन्दर पार।
अलख पथ कोई एक है, पथी कई हजार॥
साधू ऐसा चाहिए, रूखा खाय गिराम।
ऊपर ओढ़ै कामली, नलै बिछावै घाम॥

चरणदास—

अलवर के सत कवियों मे श्री चरणदास का नाम भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। हिन्दी के सत साहित्य मे चरणदासजी के योगदान की प्रशसा सभी विद्वानो ने मुक्त-कठ मे की है। आपका जन्म *अलवर नगर से ६ मील दूर विजय मन्दिर राजप्रासाद के निकट स्थित डेहरा ग्राम मे भाद्रपद शुक्ल* ३ सवत् १७६० (सन् १७०३) को हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती कुजो देवी और पिता का नाम मुरलीधर था। कवि के बचपन का नाम रणजीत था और १९ वर्ष की आयु मे गुरु शुकदेव जी से दीक्षा लेने पर नाम बदल कर चरणदास कर दिया गया। बाल्यकाल में ही एकान्त-प्रियता एव हरि-भक्ति की प्रौढ भावना के दर्शन होने लगे। अपनी माता के साथ ये दिल्ली गए और फिर भगवद् दर्शन की आकाक्षा से ब्रजक्षेत्र की यात्रा की। तत्कालीन दिल्ली

का बादशाह मुहम्मदशाह स्वयं इनके दर्शनार्थ आता था। ८० वर्ष की आयु में सन् १७८३ में इन्होने समाधि ली। इनकी प्रमुख गद्दी आज भी दिल्ली में विद्यमान है।

सन्त चरणदास का महत्त्व तीन दृष्टिकोणों से है। (१) आध्यात्मिक साधक (२) धर्म तथा समाज सुधारक एवं (३) कवि। यहाँ केवल कवि की दृष्टि से मूल्यांकन किया जा रहा है। कवि चरणदासजी कृत उपलब्ध ग्रन्थों की संख्या २० है—

(१) ब्रज चरित
(२) दान लीला
(३) माखन चोरी
(४) मटकी लीला
(५) चीरहरण लीला
(६) कालीनथन लीला
(७) कुरुक्षेत्र लीला
(८) अमरलोक वर्णन
(९) धर्म जहाज
(१०) अष्टांग योग
(११) योग सन्देह सागर
(१२) ब्रह्मज्ञान सागर
(१३) भक्ति पदार्थ वर्णन
(१४) जागरण महातम
(१५) श्रीधर ब्राह्मण लीला
(१६) मनविकृत करन सार
(१७) भक्ति-सागर
(१८) ज्ञान-स्वरोदय
(१९) पंचोपनिषद् सार
(२०) नासकेत लीला

इन ग्रन्थों का विभाजन चार प्रकार से कर सकते हैं--अवतार लीला विषयक (२) ज्ञान-योग एवं आध्यात्मिक विचार विषयक (३) कथानक विषयक (४) स्फुट। कवि ने जहाँ कृष्ण चरित्र का वर्णन किया है, वहाँ वह योग-दर्शन के सिद्धान्तो से दूर नही है। निर्गुण सन्तो की तरह मुद्रा, अष्टकमल, निरजन, साहब, हठयोग, सद्गुण आदि का वर्णन बड़े सरल और प्रभावशाली ढंग से किया है। इसीलिए दार्शनिक दृष्टि से चरणदास निर्गुणी कहे जाते हैं, परन्तु काव्य की दृष्टि से सगुणी भी कहे जा सकते हैं। उनका अधिक झुकाव सगुण की ओर (जिसमें आडम्बर की मात्रा न हो) दिखाई देता है। इनके ग्रन्थों में शान्त, शृंगार, हास्य, करुणा, अद्भुत वीभत्स रसों की रचनाएँ मिलती हैं। अधिकतर ग्रन्थों की रचना, शिष्य एवं गुरु के प्रश्नोत्तर शैली मे हुई है। छन्द की दृष्टि से दोहा, चौपाई, अष्टपदी और कुण्डलियाँ छन्द कवि को प्रिय मालूम पड़ते हैं। चरणदासजी की वर्णन शक्ति सराहनीय है, परन्तु पुनरुक्ति अवश्य दिखाई देती है।

भाषा की दृष्टि मे साहित्यिक अवधी तथा ग्रामीण अवधी के रूपों का सुन्दर समन्वय मिलता है। अरबी, फारसी, संस्कृत, ब्रज, भोजपुरी एवं बुन्देलखंडी के शब्द पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। वैसे कवि की भाषा अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक है। किसी भाषा का विशेष रंग नही। दो एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

मुझे कृष्ण के मिलने की आरजू है।
शबो रोज दिल में यही जुस्तजू है।।
शरावे मुहब्बत पियी जिसने यारो।
हुआ दो जहाँ मे वो ही सुर्खरू है।।

गर्भवती के गर्भ की जो कोई पूछे आय।
बालक होय कै बालकी, जीवै कै मर जाय॥
बामे कहिय छोकरी दहने बेटा आय।
वा को बायो स्वर चलै जीवत ही मर जाय॥
—'ज्ञान स्वरोदय'।

नन्द के कुमार हौं तो कहौं बार-बार,
मोहे लीजिए उबार ओट अपनी मे कीजिए।
काम अरु क्रोध का काटो जम बेडा प्रभु,
मागौं एक नाम मोहि भक्ति दान दीजिए।
और को छुटाओ साथ, सतन को दीजे साथ,
वृन्दावन निवास मोहि फेरिहू पतीजिए।
कहै चरणदास मेरि होय नही हँसी श्याम,
कहूँ मै पुकारि मेरी श्रवन सुन लीजिए।

अन्त मे यही यथेष्ट होगा कि सन्त कवियो मे चरणदास का व्यक्तित्व विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनकी काव्यकला, योग साधना, तथा स्वरोदयविज्ञान की त्रिवेणी किसी भी पाठक को आकर्षित करने मे यथेष्ट है।

सहजोबाई और दयाबाई—

सत चरणदास के मुख्य शिष्यो की सख्या ५२ है। इन शिष्यो मे से सबसे अधिक विख्यात् उनकी दो शिष्याएँ हुई हैं, जिनमे एक का नाम सहजोबाई था और दूसरी का दयाबाई। यह जोडी सतो मे बेजोड हुई है तथा स्त्री कवियो मे इनका ऊँचा स्थान है। इन दोनो ही गुरू बहनो का जन्म-स्थान डेहरा ग्राम बतलाया जाता है और कहा जाता है कि ये दोनो अपने गुरू की सजातीय थी तथा उनके साथ दिल्ली जाकर रही। इनमे मे सहजोबाई का जीवन काल सन् १६८३ ई०—१७६३ ई० बतलाया जाता है। इनके जीवन की अन्य घटनायें उपलब्ध नहीं होती हैं, केवल इतना पता लगता है कि इनके पिता का नाम हरिप्रसाद था। जीवन भर ये अविवाहित
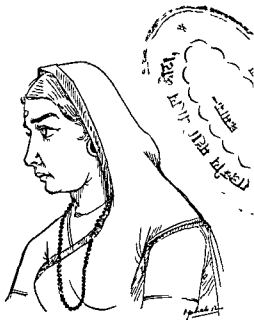
रही। इनका ग्रंथ 'सहज प्रकाश' मिलता है, जिसकी समाप्ति फाल्गुन सुदी बुधवार १७४३ ई० को हुई। दयाबाई के लिए भी कहा जाता है कि इन्होंने सन् १६९३ से लेकर १७१८ तक सत्संग किया और उसके अनन्तर एकान्त सेवन करने लगी थी। 'संतमाल' के अनुसार इनकी मृत्यु सन् १७७३ ई० मे हुई। दयाबाई ने चैत्र सुदी ७ स० १८१८ (सन् १७६१ ई०) को अपना 'दयाबोध' ग्रन्थ लिखा था। इन रचनाओ के अतिरिक्त सहजोबाई की दो अन्य रचनाएँ क्रमशः 'शब्द' एवं 'सोलह तत्त्व निर्णय' के नाम से प्रसिद्ध हैं और दयाबाई की एक 'विनय-मालिका' भी बतलायी जाती है। संत कवियो की तरह गुरु-महिमा, सिद्धान्त, मन-समभाव योग का वर्णन आदि विषय ही वर्ण्य विषय है। भाषा पर चरणदास का पूरा प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सहजो मे प्रेम की प्रधानता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और दयाबाई में वैराग्य की। दोनो की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है—

धन छोटा पन सुख महा, धिरग बड़ाई ख्वार;
सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के वचन सम्हार।
सहजो तेरे सब सुखी, गहे चन्द और सूर,
साधू चाहै दीनता, चहै बड़ाई कूर।
अभिमानी नाहर बडो, भरमत फिरै उजाड़,
सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार।

—सहजोबाई।

प्रेम पथ है अटपटो, कोई न जानत पीर।
कै मन जानत आपनो, कै लागै जेहि पीर॥
दया कुँवरि या जगत में, नही आपनो कोय।
स्वारथ बंदी जीव है, राम नाम चित जोय॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवै किहि ओर।
छिन ऊँठूँ छिन गिर पड़ूँ, राम दुखी कन मोर॥

—दयाबाई।

करमाबाई—

अलवर की भक्त कवियित्रियो में सहजोबाई और दयाबाई के नाम के पश्चात् करमाबाई का नाम आता है। ये मुगल बादशाह जहाँगीर के समय में नारायणपुर परगने के गढ़ी मामोड़ में रहती थी, तथा आज भी उसी ग्राम में अरावली पर्वत की तलहटी में इनकी समाधि है। ये जाति से जाट थीं। इनकी मृत्यु सन् १६६७ ई० मे हुई। इनकी साहित्यिक कृति तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु इनके कवि होने की प्रसिद्धि अवश्य है। कहते है स्वयं भगवान् ने इनकी खिचड़ी खाई थी। श्री जगदीशपुरी में आज तक भगवान् के प्रसाद के रूप में करमाबाई का खीचड़ा बटता है। 'भक्त-माल' में भी करमाबाई का उल्लेख निम्न प्रकार मिलता है—

हुती एक बाई ताको 'करमा' सुनाम जानि,
बिना रीति भाँति भोग खिचड़ी लगावही।

जगनाथ देव आप भोजन करत नीके,
जिते लगे भोग तामे यह अति भाव हो।
गयो ताह साधु, मानि बडो अपराध करे,
भरे बहुँ सास सदाचार लै मिखावही।
भई यों अवार देखे, खोलि कै किवार,
जो पै जूठनि लगी है, मुख धोए बिनु आवही।

अलीबख्श—

अलवर के भक्त कवियो मे राव अलीबख्श का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। इनका समय मगलसिह का शासनकाल है। ये मुडावर के जागीरदार और रॉगड मुसलमान जाति के थे। अलवर नरेश ने इनका परिचय 'प्रिस अलीबख्श ऑफ मुँडावर' कहकर दिया था। ये उर्दू और हिन्दी दोनो भाषा मे कविता किया करते थे। ये कृष्ण भक्ति की ओर अधिक आकर्षित थे। उन्होंने अधिकतर लीला-पद ही लिखे हैं। इनके पदो का एक सग्रह 'कृष्णलीला' वर्तमान अलवर नरेश के पास सुरक्षित है। सगुण भक्ति की ओर आकर्षण तथा कृष्ण लीला-पद गान करने के कारण ये अलवर के 'रसखान' कहलाते हैं।

अलीबख्श की विधिवत् शिक्षा के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख प्राप्त नही होता। जनश्रुतियों से यही ज्ञात होता है कि उनको कहीं कोई पाठशाला मे शिक्षा प्राप्त नही हुई थी। विभिन्न प्रकृति वाले व्यक्तियों के ससर्ग मे ही उनको ज्ञान हो गया था, जिसको उनका अनुभव कहा जा सकता है।

अलीबख्श को साधु-समाज प्रिय था, जिनके साथ रहकर लोक-लाज को भी त्याग दिया था। हिन्दू और मुसलमान का भेद उनको नही सुहाता था। वे दोनो ही धर्मों के समान हिमायती थे तथा उन्होने किसी धर्म की भी टीका टिप्पणी नही की। निर्भीकता, उनकी प्रकृति का अग थी। हिन्दू-धर्म के तौर तरीका मे विश्वास रखने के कारण मुसलमानो द्वारा उनको अनेक प्रकार की धमकियाँ भी दी गई किन्तु भयभीत होना तो उन्होने जाना ही न था। उन्होंने फक्कड कबीर की भाँति सभी धर्मों की आडम्बरप्रियता पर खरी-खोटी सुनाई है—

कहो कैसे घर जाऊँ गैलहू न पावै रे।।
मै गहलो गैला मे ठाडो ना कोई गैल बतावै रे।
इस अन्धलोक मे अन्धेवासी अन्धेन कौन सुझावै रे।।
इस गैला मे गैल मन मुक्ती कौन गैल मन भावै रे।
मैं तोरा नगर की डगर न जानू मोहै सूधी सडक सुहावै रे।।
पडित पुस्तक पत्रा बाचै अटपट सगुन सुनावै रे।
ये धर्म हार धोखे से मार जीमन की तुरत जचावै रे।।
ये मुल्ला मसला कहै मतलबी घर-घर पीठ जमावै रे।
ये मुसलमान को माल ठगे दावत की दाव लगावै रे।।

ये तीनों आपस मे झगडें ना कोई न्याव चुकावै रे।
वेद, पुराण, कुराण, अंग्रेजी एक को एक मिटावै रे ।।
पन्थ पादरी न ना पायो नाहक मगज पचावै रे।
कहे अलीवख्श विन ग्यान गरीवी प्रेम-पन्थ ना पावै रे ।।

कृष्ण भक्ति परम्परा के पोषक जन कवि अलीवख्श ने सरल एवं प्रवाहमयी भाषा में कृष्ण की लीलाओं का मनोहारी चित्रण किया है। ग्रामीण जनता उनके पदों को बड़े प्रेम से गाती है। लोक कलात्मक एवं जनजीवन में रस घोलने वाले इनके भक्ति सम्बन्धी पद अत्यधिक कलात्मक हैं। कुछ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

लाला रै मोकूं दही विलोवन दे अरे तू माखन मिसरी लै ।।
दधि की मथनियां सनी परी है वासन धोवन दै।
माखन मिल गयो सव झागन मे दधि और विलोवन दै ।। लाला रै ।।
दधि की रैनी जव रस आवै रई डवोवन दै,
चैन लैन तू दे नही दिन में रैनि न सोवन दै।
अलीवख्श को दिल धडकत है मत याहि रोवन दै ।। लाला रै ।।

माता से शिकायत—

मैं तो ना जाऊ री मोरी, माई मोरी राधे ने वंशी चुराई।
हम जमुना धेनु चरावत वह जल भरने आई ।।
मुरली मोरी लैगई हरिकै विरपभानु की जाई।
।। मैं तो ना० ।।
दो दमरी की माला दै गई छल कीनों छलजाई।
श्याम सरव सोने की मुरली सुघर सुनार वनाई ।।
भवै कमान तानि श्रवनन लगि मीठी सैन चलाई।
तकि कर तीर दियो मेरे तन में लीनों मार कन्हाई ।।
।। मैं तो ना० ।।

सखी री सांवरिया विन नीद न आवै ।।
मेरा तलफ २ जिया जावेरी। सांवरिया विन नीद न आवै।
गरजत गोरी के गोरी से लागै, वरसत वरछी सी वावै ।।
वूंद वान सी लगत वदन पै किस विधि प्राण वचावै री।
।। सखी री ।।
यह विरहा वारुद विकट है, रंज पै रंज जमावै।
चित्र मन विजरी चमक २ कै, चकमक सी चमकावै ।।
।। सखी री ।।

इन मोरा ने मेरा मरम न जाना, पिउ पिउ कह तरसावै।
पापी पपीहा प्राण हरत है, कोयलिया कल पावै॥
॥ सखी री ॥
'अलीबख्श' है दुख के दाहो दीति विपत्ति सुनावै॥

रणजीतसिंह वेनामी—

अलवर के सन्त कवियों में श्री रणजीतसिंह वेनामी का नाम बड़े आदर पूर्वक लिया जाता है। मूलत आप कोसी के निवासी थे। जाति से जाट थे। बाल्यावस्था से ही ईश्वर-भक्ति की ओर अनुराग स्पष्ट हो गया था। स्वामी कक्करजी के ग्राम में पधारने पर उनसे दीक्षित हो गए। गुरू से अपना नया नाम पूछने पर श्री स्वामीजी ने कहा 'तेरा नाम क्या है? तू तो बेनाम है।' तब से बेनामीजी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। पर्यटन करते हुए सन् १८४६ में अलवर आये और गुरुजी की बगीची में रहने लगे। कुछ मास पश्चात् भूरासिद्ध के बारे में पाल पर निवास किया। आपके जीवन-सम्बन्धी कुछ चमत्कारिक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। अलवर के महाराज श्री शिवदानसिंहजी ने भी एक बार परीक्षा लेनी चाही, परन्तु महाराजा को स्वयं ही झुकना पड़ा। इनका सम्प्रदाय 'वेनामी' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी शिष्य परम्परा में श्री किशोरीदासजी तथा श्री गरीबदासजी के नाम बड़े आदर से लिए जाते हैं।

'वेनामी' का सम्पूर्ण साहित्य 'आत्म-बोध' से प्रकाशित हुआ है। अन्य सन्त कवियों के वर्ण्य विषय की भांति इनका भी गुरू की महिमा, राम नाम का महत्व, आरती तथा अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। 'वेनामी गीता' ने सबसे अधिक प्रसिद्धि पाई है। प्रयुक्त छन्दों में कवित्त, दोहा, चौपाई, आरहा कुण्डलियाँ हैं। भाषा चलती हुई लोक भाषा है। हिन्दी, उर्दू का सुन्दर सम्मिश्रण देख पड़ता है। कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर शैली और गद्य के भी दर्शन होते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

साधु संगत बहु करी, बहुत नवाय शीश।
मन टेढापन ना मिटा, मिटी न सूक्ष्म रीस॥
वेनामी हित की कहे, ताय तक कर जान।
वचन भेद समझे नहीं, ऐसे मूढ अयान॥
— उपदेश मतक चिन्तामणि से।

ढूंढा चाहे विषय में, यह तेरी है भूल।
तू विषयी भरपूर है, यही मूल में सूल॥
भावै सब गीता पढो, भावै पढो पुरान।
जिन स्वरूप जाने बिना, ना छूटै अभिमान॥
—सिद्धान्त वार्ता में।

भक्त एवं सन्त कवियों की यह परम्परा और भी आगे चलती रहती है। इनमें स्वयं महाराजा बख्तावरसिंह के द्वारा लिखित 'दानलीला' और 'श्री कृष्ण लीला' प्रसिद्ध हैं। इनका

विस्तारपूर्वक वर्णन अगले लेख मे अलग से किया जायेगा । अन्य कवियो में कवि जयदेव, उमादत्त, जयराज आदि प्रसिद्ध है । अहमद का भी एक नाम सुनने में आता है । इनके बारे में विस्तृत रूप से और कुछ ज्ञान नही हो सका केवल यह पद्य मिल सका है—

"काहे भरमता डोले रे योगी तू काहे भरमता डोले ।
देह धोय माजे क्या पावे मन को क्यों ना बोले ।।
ज्ञान की हाथ तराजू तेरे फिर क्यों कमती तोले ।
अहमद होय कहा पछिताये सब क्यो कांकर रोले ।।"

आगे चल कर भी भक्ति-सम्बन्धी पद्यों का निर्माण समय-समय पर स्फुट रूप में होता रहा है । राज्याश्रित कवियो ने इसमे पूर्ण योग दिया है । किन्तु उनमें रीतिकालीन लक्षण प्राप्त होने के कारण दूसरे शीर्षक के अन्तर्गत रखना ही उपयुक्त समझा गया है । अलवर के भक्ति साहित्य के बारे मे इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि इस स्थान पर अनेक साधु-संतों ने निवास किया है और करते हैं । प्रत्येक साधु-सत कीर्तनादि के लिए कुछ न कछ तुकबन्दी, पद-रचना आदि करते रहते है । इस लेख मे केवल लिखित-प्राप्त साहित्य को ही लिया गया है ।

युवराज श्री प्रतापसिंहजी—

आज भी अलवर मे कुछ भक्त कवि ऐसे है जो राम-भक्ति एवं कृष्ण-भक्ति की परम्परा में पद रचना कर हिन्दी भक्ति-साहित्य में योग दे रहे हैं । इस दृष्टि से युवराज कुमार प्रतापसिंहजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । अपनी पैतृक परम्परा को उन्होंने कायम रखा है । वे उच्चकोटि के विद्वान एवं भक्त है । सरल एवं सादा जीवन तथा धार्मिक प्रवृत्तियों में उनकी विशेष रुचि है । राम-भक्ति शाखा के रामनन्दी रसिक संप्रदाय के वे अनुयायी है, तथा राम की जीवन गाथा से संबंधित सैकड़ो पदों की रचना कर उन्होंने अलवर की भक्ति परम्परा को जीवित रखा है । सेवा, षठऋतु सेवा, उत्सव आदि के माध्यम से वे नियमित श्री सीतारामजी की सेवा पूजा से रत रहते हैं । अष्टचाल मन्दिर मे सम्बन्धित पदों का गायन एवं कीर्तन होता रहता है ।

युवराज कुमार उच्च कोटि के कवि है । 'नित्यविलास' तथा 'उत्सवविलास' नामक संकलनों का प्रकाशन हो चुका है जिनमें हजारों पद है । अन्य राम-भक्ति शाखा के प्रसिद्ध संप्रदायी कवियों के पदों के साथ श्री प्रतापसिंहजी का काव्य भी इनमे सुशोभित है ।

प्रमुख विशेषताएँ—

उपर्युक्त वर्णित सम्पूर्ण भक्ति साहित्य को देखकर उनकी निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं—

(अ) अलवर के भक्ति-साहित्य मे निर्गुण और सगुण दोनों ही का वर्णन सम रूप मे मिलता है । साधुओ का झुकाव निर्गुण की ओर अधिक है, हालांकि सगुण के पद लिखने में भी वे किसी प्रकार से पीछे नहीं रहे है ।

(आ) राम और कृष्ण दोनों महापुरुषों के अवतार के रूप मे उपासना हुई है ।

(इ) अलवर के भक्ति साहित्य के अन्तर्गत कोई प्रबन्ध काव्य नहीं मिलता। केवल चरणदास का जीवन-चरित्र ही उनके शिष्यों के लिए उपजीव्य रहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि उनके चमत्कारादि का वर्णन करना उनके शिष्यों का इष्ट था।

(ई) यहाँ के भक्ति सम्प्रदाय में पुरुषों के साथ स्त्रियों का भी पूरा-पूरा योग रहा है। हिन्दुओं के साथ मुसलमान कवियों के नाम भी आते हैं।

(उ) सारा भक्ति साहित्य गेय है। भाषा बड़ी सरल चलती हुई और प्रवाहमय है। पिंगल की दृष्टि से चाहे सन्त कवियों में अशुद्धियाँ हों, उनका लक्ष्य केवल जनता में जनता की भाषा के द्वारा भक्ति प्रचार करना था।

(ऊ) सभी कवियों पर कबीर की पंक्ति 'मसि कागद छुओ नहीं' वाली उक्ति चरितार्थ होती है।

(ए) मुसलमान कवियों को छोड़कर शेष कवि निम्न जातियों में से भी मिलते हैं और दूसर भागव जैसी उच्च वर्ण जाति में भी कवि हुए हैं।

रीतिकालीन परम्परा

हम हिन्दी साहित्य के इतिहास को अपनी विभिन्न विशेषताओं से विभूषित पाते हैं। रीति-काल भी इस वैभवशाली इतिहास के एक अंग के रूप में अपना विशेष महत्त्व रखता है। रीति का तात्पर्य काव्यरीति से है और काव्य रीति का अर्थ है रस अलंकारादि विविध काव्यांगों के लक्षण देकर उदाहरण रूप में कविता लिखना, अतः इस काल के साहित्यकारों में हम आचार्यत्व तथा कवि के गुण मिश्रित रूप में पाते हैं। संक्षेप में रीतिकालीन काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं इहलौकिकता, शृंगारिकता, नायक नायिका के रूप में राधा-कृष्ण, नायिका भेद, अलंकारों की बहुलता तथा मुक्तककाव्य की प्रधानता।

अच्छा तो आइये रीतिकालीन विशेषताओं को ध्यान में रखकर हम अलवर राज्य में काव्य स्रोत से साक्षात्कार कर सुखानुभूति करें। शुक्लजी के विचारानुसार हम सं० १७०० से १९०० तक के साहित्य को रीतिकालीन साहित्य के अन्तर्गत लेते हैं, पर यहां काल-सीमा में बंधने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि रीतिकालीन प्रवृत्तियों के आधार पर ही अलवर राज्य के हिन्दी साहित्य का अध्ययन करना है?

राजा प्रतापसिंहजी के साथ ही युद्ध-भूमि में भी छाया की भांति विचरण करने वाला कवि हरचन्द जोशी क्या हमें पृथ्वीराज चौहान के कवि चन्दवरदाई की याद नहीं दिलाता? पर हां इनकी काव्य कृतियों से अभी हमें परिचय नहीं मिल पा रहा है। इनका काव्य पूर्णतः रीति-कालीन धारा से अछूता रहा होगा। इन्हीं के समकालीन कवि 'रसरासि' का नाम भी आता है, जिनकी मुख्य रचनायें (१) रसरासि पच्चीसी (२) उद्धव पच्चीसी का उल्लेख मिलता है, परन्तु इन कृतियों के भी हम दर्शन नहीं कर पाये। हां इन सम्बन्धित चर्चा से यह निश्चय अवश्य होता है कि यह स्फुट पद्यों के संग्रह रहे होंगे। इसी प्रकार कवि जाचीक जीवन द्वारा भी 'प्रताप

बाह गहे कर नाह सों नाहि चले नाहि चाह भरि चलि जावै ।
कँचुकी ते पकरे कुचकै उचकी परै पै उर त्यौं उचकावै ॥
हा हा करै मुख घूमत बाल मुकै भिभकै चित मैं ललचावै ।
छैल ते ऐन छिनै छुटि जावै नवैनन ही नारि नैन नचावै ॥

यहा शब्दालकारो का भरपूर प्रयोग कर कवि ने शाब्दिक माधुर्य और चित्रोपमता को पूर्ण सफलता से प्रस्तुत कर रीतिकालीन धारा मे प्रवाहित होने का पर्याप्त प्रयास किया है।

'प्रोढा नायिका वर्णन' करते समय आपने स्वाभाविक शब्द-चित्रो को प्रस्तुत किया है, जिनमे आन्तरिक हर्ष और उल्लास की अभिव्यक्ति को स्वत ही प्रधानता मिल गई है। इन्होंने स्थूल राजसी-विलास-सामग्रिया का ठाठ नही बाधा है। इन वर्णनों मे कवि का प्रेम-मग्न मन हर्ष-विभोर होकर नाचता सा दीखता है—

मोहे मुग्ग उराज उतगनि, अगनि अगनि भूपन सौलसि ।
आये लला पटो काम कलानि, हुई छतिया कै छलानि कछु वसि ॥
भोग कहो न परै जा लहो तिय, जौवन भार सा आलस सौं गति ।
रोकन हाथ बनो महिनाथ को, फरि हगचल हगि रही हसि ॥

मुरलीधर भट्ट—

अलवर साहित्याकाश के प्रकाश पुञ्ज मे चार चाद लगाने वाले सुकवि मुरलीधर भट्ट भी इसी काल मे अवतरित हुए। काव्यरीति को ध्यान मे रखते हुए अपने दो सग्रह (१) शृङ्गार तरगिणी और (२) प्रेम तरगिणी प्रस्तुत कर यहा के साहित्यिक मोड मे योगदान दिया है। काव्य रस प्रसारार्थ आपने मधुमय ब्रजभाषा मे कृष्ण सम्बन्धी विषय का सविस्तार प्रसार कर शृङ्गार रस के वर्णन मे अलौकिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। आपके सुन्दर पदविन्यासो मे प्रसाद व माधुर्य गुण सोने में सुगध का सा काम कर रहे हैं। आपकी सरस कृतियो मे स्वाभाविक अलकारो की झलक होते हुए भी कही-कही पाठको को आप पर अर्थ गाम्भीर्य का दोष लगाने का अवसर मिल ही जाता है।

नायिका-भेद रीतिकालीन विवेचन का सर्वप्रधान अग बन चला था। देववाणीनुसार— "वाणी को सार बखान्यौ सिगार, सिगार को सार किसोर किसोरी।" अब हम देखते हैं, कि भट्ट जी ने शृगार रस की न केवल बाह्य परिस्थितियो का परिचय दे हमे रसास्वादन कराया है बल्कि भरपूर यौवन मे झूमने वाली नायिका की आन्तरिक भावाभिव्यक्ति को शब्दचित्रो द्वारा प्रस्तुत कर अपने पाठको को गद् गद् कर दिया है। कामदेव के पुष्प बाणो से आहत प्रौढा की लज्जा न जाने कहा लोप हो जाती है? इसका पूर्ण चित्रमय परिचय प्रस्तुत कर नायिका की रसानुभूति की सुखद अभिव्यक्ति का सुन्दर परिचय दिया गया है—

तब नीचे ही नैन किये रहती, अब नैनन नैन नचावती हो।
तब होती लजीली लखे गति को, अब 'प्रेम' जु लंक लचावती हो ॥
तब बोलती हू न बुलाय कहूँ, अब तो बतियान रचावती हो।
हिलकीन के सोर गये कित वे, सिसकीन के सोर मचावती हो ॥

अत्यधिक सरल, सरस भाषा में भट्ट जी ने भी रीतिकालीन अन्य कवियों की भाँति ही सुन्दर तथा स्वाभाविक मानव चित्र प्रस्तुत किये है। उक्त सवैये के रसास्वादन से प्रौढ़ पाठकों के सम्मुख कल्पना शक्ति के सहारे सुन्दरचित्र आ उपस्थित होता है। प्रौढ नायिका की रसानुभूति को व्यक्त करने हेतु भट्ट जी ने स्वाभाविक शब्द-चित्र प्रस्तुत कर अपनी कला-कौशल का कुशल परिचय दिया है।

भट्ट जी ने भावानुभूतियो को सुन्दर आकार देने में काव्यरीति का ही मार्ग अपनाया है। रीतिकालीन प्रमुख कवि देव की भाँति ही भट्ट जी ने भी अनुभूति को आकार रूप देने का स्वाभाविक माध्यम शब्द-चित्र ही अपनाया है। यहाँ निराकार अनुभूति की अभिव्यक्ति हेतु भट्टजी ने अनुभोक्ता (प्रौढ़) की मूर्त चेष्टाओं का स्वाभाविक अंकन किया है तथा साथ ही अनुभोक्ता की वासना में रंगे उस अनुभूति के विषय के रूप के चित्रण को भी साकारता का आवरण पहनाया है। इस प्रकार भट्ट जी ने मुख्यतः शृंगार के ही आलम्बन और आश्रय की चेष्टाओ (अनुभावों) के मधुर चित्र अंकित किये है।

उक्त काव्य-धारा को समुचित रूप से प्रवाहमय रखने के पूर्ण प्रयत्न हेतु भट्ट जी के सुपुत्र श्री कृष्ण भट्ट ने भी 'आलीजा प्रकाश' की रचना कर अलवर के रीतिकालीन काव्य-क्षेत्र में अपना योगदान किया है। पर दुर्भाग्यवश यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नही हो पाया है। आपकी कुछ स्फुट कविताओ से परिचय पाकर हम आपकी सरल तथा सरस ब्रजभाषा से अत्यधिक प्रभावित होते है।

समय ने करवट ली। इस राज्य के शासक श्री विनयसिंहजी बने। इनकी स्थापित नीति ने अंकुरित हो पूर्ण प्रसार पाया तथा सभी कला-कौशल की उन्नति के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र मे भी वसन्त का आना स्वाभाविक था। राजा की शान्तिप्रिय नीति तथा साहित्यिक प्रेम ने सुन्दर साहित्य के प्रसारार्थ पूर्ण योगदान दिया। विद्वता के पारखी राजा के दरबार में कवियों को राज्याश्रय पाना ही साहित्योन्नति का मूल कारण था। राजा स्वय साहित्योद्यान की सभी सम्पन्न क्यारियों से पूर्ण परिचित थे तथा एक कुशल माली के रूप में साहित्योद्यान के स्वरूप को सजाने हेतु माली-मण्डल का नेतृत्व करने में पूर्ण प्रयत्नशील रहे। इसी प्रयोजन से प्रभावित हो स्वयं राजा ने सरस, सुन्दर ब्रजभाषा में 'भाषा-भूषण' नामक संस्कृत ग्रंथ की सुन्दर टीका प्रस्तुत की।

इस रीतिकालीन प्रवाहित धारा के मध्य कही-कही ऊँचा मस्तक किये हम वीर गाथा काव्य की सी ऊँची पहाड़ियों के रूप में कुछ साहित्यिक प्रयत्न पाते है, जिनमें मुख्य हैं जोधराज

कृत 'हम्मीर रासा' जो एक उत्तम कोटि का प्रबन्ध काव्य बन पड़ा है। पर हां, इतना आवश्यक है कि मार्ग मध्य आने वाले इन साहित्यिक शिखरों ने रीतिकालीन साहित्यिक प्रवाह के लिये बाधक रूप में कोई कार्य नहीं किया, बल्कि साहित्यधारा की उत्तंग तरंगें इन शिखरों के परिक्रमा लगा पुनः अपने स्वाभाविक प्रवाह को प्राप्त कर अग्रसर होने में सफल रहीं।

हरिनाथ—

'हम्मीर रासो' की उपस्थिति के तीन वर्ष पश्चात् ही उस काल के श्रेष्ठ कवि हरिनाथजी ने १६३१ ई० में नायक-नायिका वर्ण्य विषय को लेकर 'विनय प्रकाश' नामक ग्रंथ लिखा। इस प्रकार इन्होंने रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थ प्रस्तुत कर साहित्य की सरस धारा को पूर्ववत् ही प्रवाहित किया। कवि ने एक यौवन में झूमती कामातुर नवेली नायिका, जिसके मदमाते नयनों की मार से मोहित ससार अचेतनावस्था में पड़ा है, का मनमोहक वर्णन किया है—

मन मैंन मेली नैंन उरभेंती जैंसी।
वचन की वेली ऐसी नाइका नवेली है॥

'रूप रस रेली' तथा 'प्रेम भरी परम प्रवीन अलवेली' नायिका को देख 'सुर नर मोहन मधुप वृन्द' होना स्वाभाविक ही दिखाया गया है। इसी प्रकार नायक-भेद करते हुए हरिनाथजी ने लिखा है कि—

"पति उपपति वैसुक कहा नायक तीन विचारि।
अनुकूल दछिन धृष्टा सठ चारि चारि अनुहारि॥"

ब्रह्मभट्ट पूर्णमल—

इसी प्रकार हम राजकवि ब्रह्मभट्ट पूर्णमल को भी इसी रीतिकालीन प्रवाह में अपना योगदान देते पाते हैं। आपने समस्या पूर्ति तथा स्फुट कविताओं के करने में सरस सुन्दर ब्रज-भाषा को अपनाया। शृंगार रस के सरोवर में गोते लगा उस हेमन्त ऋतु का वर्णन किया है, जिसमें पुष्पों का अभाव होते हुए भी यौवन सुख के उपभोग हेतु सर्वोत्तम मानी जाती है तथा जो मदिरा और कामनियों के यौवन पान का समय है। ऐसे में विरहाग्नि से शंकित नायिका की मनोकामना का पूर्ण प्रदर्शन कर कवि ने अपनी सहृदयता का पूर्ण परिचय दिया है—

शीतल वायु बहै निशि बासर शीतल अम्बर भूमि लता है।
शीत के भीन सबै जग कम्पित कीन्हो कठोर हिमन्त हला है॥
ऐसे में पीव पयान जो ठानत दीनी दई तुम्है कौन सला है।
मैं कर जोरि करो हौं निहोरी, दिन दस और रहो तो भला है॥

मदमाते यौवन से झूमती कामनियों को हेमन्त-ऋतु के सहवास के अभाव की शंका ही दुःसह हो जाती है। इस ऋतु में वे अपनी यौवनावस्था की मधुमय मदिरा पान करने हेतु पर्याप्त पहिले से ही पूर्ण प्रबन्ध करती दीख पड़ती है। इस नायिका में रीतिकालीन वासक-सज्जा-

नायिका की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। इस प्रकार कवि ने कामातुर कंचन की सी कान्ति वाली कोमल कली का सम कामिनियों की मनोदशा का मनमोहक वर्णन कर अलवर राज्य के रीतिकालीन साहित्य मे अपनी चतुर चेतना का पूर्ण परिचय दिया है।

आनन्दीलाल जोशी—

राजा विनयसिंहजी का सुमन समान सुन्दर दरबार काव्य-वाटिका के कवि रूपी भ्रमरो के आकर्षण का अनोखा स्थान बन रहा था। एक बार फारसी के विद्वानो ने हिन्दी साहित्य-जगत में शृंगार रस के अभाव का संकेत करते हुए फारसी की शेरो-शायरी दरबार में सुनायी। महाराज के संरक्षण मे रहने वाले विद्वान श्री आनन्दीलाल जोशी को यह व्यंग्य बाण सह्य नही हुआ और हाथो-हाथ शृंगार रसराज कवि बिहारी की सतसई के एक सरस सुन्दर दोहे का फारसी में अनुवाद कर आगन्तुकों को प्रत्युत्तर मे प्रस्तुत कर हिन्दी-साहित्य के शृंगार-रस का रसास्वादन कराने मे पूर्ण सफल रहे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण सतसई का ही फारसी में अनुवाद किया। समय की साहित्य रीतिनुसार ही कवि कार्य-कर्त्ता के लक्षणो का परिचय देते हुए बताया कि कवि मायने मन का मालिक जो कि आत्मानन्दानुभूति मे सर्वदा सुख-सागर में गोते लगाता रहता हैतथा सहृदयजनों को भी साहित्य सरोवर के सरस जलपान हेतु सामग्री समर्पित कर सुखा-भास कराता है—

> लहनो निज आत्मानन्द को, पुनि होय हिमातय को गहनो।
> पर संचित कर मन की गति को, अवलोकि बनै न कछु कहनो॥

अलवर के काव्याकाश में प्रसारित प्रकाश-पुंज मे अपना योगदान देने हेतु मिश्र शम्भुनाथ ने 'सररतंगिणी' की रचना की जिसमें रीतिकालीन साहित्यिक रीतिनुसार ही साहित्यांगों के लक्षण प्रस्तुत करने हेतु इस रचना में रस का स्वरूप वर्णन दोहे और छन्दों के सहारे से किया है। इस प्रकार हिन्दी-जगत की कमी को कम किया है।

जगन्नाथ अवस्थी--

बिहारी सम शृंगार-रस मे बह जाने वाले हिन्दी संस्कृत के उच्च श्रेणी के विद्वान पं० जगन्नाथ अवस्थी को हम अलवर के साहित्य जगत मे चार चाँद लगाते पाते हैं। अवस्थी जी के मन-मयूर को, भरपूर यौवन से युक्त, मदमाती नैनों वाली नवीन नायिका ने, अपना शिकार बना ही तो दिया। फलस्वरूप उनके हृदयोद्गार देखे—

> घायल मो मन तैं कियो, दै नैननि को बान।
> अब निठुराई क्यो धरी, सो कहिए दिल जान॥

काव्य रीतिनुसार ही अवस्थीजी ने शृंगार रस युक्त दोहों की रचना में जो अलंकारों की बौछार सी कर दी है उसमे हमें कही भी तो अस्वाभाविकता के दर्शन नही होते। बल्कि अलंकारों की अधिकता ने भावाभिव्यक्ति को बढ़ावा दिया है। अलंकारों से युक्त सरस, सुन्दर

व सरल भाषा कवि की अभिव्यक्तानुभूति से पाठको का साधारणीकरण कराने मे पूर्ण सफल हुई है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित दोहा प्रस्तुत है—

कर उठाय दिखाय कुच, फिर कुच सकुच दुराय।
कर घायल घर को गई, पायल पाय बजाय॥

इसी प्रकार रीतिकालीन प्रमुख ब्रजभाषा का भी अवस्थीजी ने ऐसा सरल प्रयाग किया है कि मन मे मण्डराने वाली मनमोहक मनोकामनाओ की अभिव्यक्ति मे आकर्षण आ गया है। यहाँ कवि के हृदयगत स्वानुभूति की अभिव्यक्ति सहृदय पाठका को रसास्वादन कराने मे कुछ कम नही दीख पड रही है—

ऐर निकट बसैया, मित्र सुजान।
मिलन सुन्यो नही प्यारे, तरफत प्राण॥
करदी बलम जुलम ने हर दी राग।
नाहि सुनै बेदरदी दरदी राग॥

माधव कवि —

जहाँ स्वय राजा कवि हृदय हो क्या वहाँ के राजदरबारी भी सहृदयजन नहीं होंगे। महाराज विनयसिंहजी के राज सभासदो मे माधव कवि ठाकुर बिड्दसिंहजी अलक राज्य के साहित्य सृजन मे अपना अमूल्य हाथ बटाने हेतु अलकार वर्णन, ऋतु वर्णन और शृगार विषयो पर कला पक्ष की दृष्टि से उच्च कोटि का काव्य प्रस्तुत किया है। इन द्वारा प्रस्तुत फुटकर कविताओ को रीतिकालीन साहित्यिक विशेषताओ की कसौटी पर कस कर देखा जावे तो हमे किसी भी कमी का आभास नही होगा। उदाहरणार्थ चन्द्रमा के प्रति चन्द पक्ति रच कवि के कुशल प्रयत्न ने अलवर साहित्य मे चार चाद लगा दिये हैं—

कलक धो पुनि दोष करे निसी बिचरे रहे वक हमस।
उदय लखि मित्र को होत मलीन, कुमोदन को सुखदान विशेष॥
रखे रचि 'माधव' वारुणी की, बपुरे बिरहीन को देत कलेस।
न जाने कौन बिचारि बिरचि रच्यौ इहि चन्द को नाम द्विजेस॥

चन्द्रशेखर बाजपेयी—

महाराज श्री शिवदानसिंहजी के शासनकाल (१८५७-७४) मे भी साहित्य ने अपने प्रवाह को निरन्तर बनाये रखता है। श्री चन्द्रशेखर बाजपेयीजी द्वारा प्रस्तुत 'हम्मीर हठ' नख शिख, और 'रसिक विनोद' मे से प्रथम को छोड अन्य दोनो मे रीतिकालीन प्रवृत्ति का पर्याप्त प्रभाव दीख पडता है। 'नख शिख' के सौंदर्य वर्णन मे रीतिकालीन प्रतीको को अपना, रीति का निर्वाह स्वच्छन्द रूप से होना दीख पडता है।

राज दरबार मे सम्मानित कवि राव गुलाबसिंह को अलवर साहित्य मे अच्छा स्थान प्राप्त है। राजाओ की प्रशसासूचक स्फुट काव्य की रचना का आपने न केवल राज समाज को ही

मोहित किया बल्कि आपकी काव्य प्रतिभा से इस समय के अन्य कवि भी विशेष प्रसन्न थे। बूँदी के कवि सूर्यमल्लजी ने इनकी प्रशंसा में लिखा—

मुनि गुलाब तव गुन सुजस, मस्तक सवन घुमात।
तिहि निदान पाताल तजि, खिल ठां पठवहु ख्यात॥

रीतिकालीन साहित्यानुसार आपका मुख्य विषय श्रृंगार रस रहा तथा भाषा में अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग कर अपनी रचनाओं में अत्यधिक स्वाभाविकता का परिचय दिया है।

चन्द्रकला बाई —

समस्यापूर्ति में सिद्धहस्त तथा कुशाग्र बुद्धि वाली कवयित्री चन्द्रकला बाई का नाम यहाँ के साहित्य में सदा अपना अनोखा स्थान रखेगा। आपकी अलंकारों से युक्त सरस, सरल तथा व्यवस्थित भाषा पाठकों के हृदय में श्रृंगारिता के सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने में सदा समर्थ रही है। कवयित्री ने रीतिकालीन मध्या-स्वकीया-अभिसारिका का मनोहारी वर्णन किया है। जिनके शरीर मध्य लज्जा और काम भावना समान रूप से है। हृदय में काम और नेत्रों में लज्जा दोनों के चौखटे पर रखी दीप शिखा सी, एक तरफ काम केलि के भाव तो दूसरी तरफ सखियों की लज्जा से लदी, सोलह श्रृंगार कर नवोढा-नायिका अपने प्रियतम से मिलन हेतु अभिसार करती दिखाई गई है। सरल व सरस ब्रजभाषा में अलंकारों की बौछार स्वाभाविक भाषा में आ कवयित्री की अभिव्यक्ति को पाठकों के सम्मुख एक सुन्दर चित्र समर्पित करने में पूर्ण सफल रही है। काव्य रीति के सभी तत्त्व इस पद्यांश में समाये से जान पड़ते हैं—

नख तैं सिखलौं सब साज सिंगार छटा छवि की कहि जात नहीं।
अंग लाय अलीन लली ललचाय चली पिय पास पास महा उमही॥
कहि चन्द्रकला मग आवत ही लखि दौरि तिया-पिय बांह गही।
नहिं बोल सकी सरमाय चली हरषाय हिए मुसकाय रही॥

काव्य-कला के कला-पक्ष की कुसुमित कलियों के विकसित होने का कुशल वातावरण प्रस्तुत करने में कवि इन्द्र कँवर भी कुछ कम नहीं दीख पड़ रहे हैं। आपने 'शिवदान चन्द्रिका' नामक काव्य लिख अपने कौशल का परिचय प्रस्तुत किया तथा अलवर राज्य के साहित्य प्रवाह में योगदान दिया है।

इसी काल में अनेक अन्य कवि समय-समय पर स्फुट रचनाये श्रृंगार रस में भी कर, समाज सम्मुख रसास्वादन का साधन प्रस्तुत करते रहे हैं। जिनमें मुख्य हैं भवानी बख्श, कन्हैयालाल, शुकदेव, इन्द्रमल, भट्ट दामोदर, वृन्दावन, गंगादान आदि।

इसके पश्चात् महाराज मंगलसिंहजी का काल आता है। इस समय के साहित्यक जगत में रीति परम्परा के स्थान पर काव्य कला इससे पूर्व समय के साहित्य से अधिक प्रभावित दीख पड़ती है। इसमें डिंगल भाषा कुछ गम्भीर रूप धारण कर प्रयुक्त हुई है। कहीं-कहीं उर्दू शब्दों का प्रयोग भी दीख पड़ा है। पर फिर भी रीति कालीन परम्परा हमें, बारहट शिवबख्श

की मुख्य रचना 'ममाल अलवर' मे षड-ऋतु वर्णन दीख पड़ती है। जिसमे भावाभि व्यक्ति सरल तथा अलकारोमय भाषा का प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषा के प्रचार तथा प्रसारार्थ मुख्य समय सवाई श्री जयसिंहजी का रहा है। आप स्वय हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि के ज्ञाता तथा कवि, गुणायक, गद्य लेखक, उच्च कोटि के वक्ता तथा हिन्दी के प्रचारक व आश्रयदाता रहे हैं। इन सभी गुणो के फलस्वरूप हिन्दी को आगे बढ़ने का स्वर्णावसर मिला है।

जयदेव—

इस काल मे हिन्दी प्रचार तथा प्रसार अवश्य बढ़ा पर जब हम रीति-कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति को चित्त मे रख इस काल की ओर रख करते हैं तो रीति साहित्य की परम्परा की अन्तिम ज्योति को अस्त होने तथा वर्तमान साहित्यिक वृत्तियों को उदय होते पाते हैं। ज्योतिमय दीपक का प्रकाश तेलाभाव के कारण जब मन्द होता हुआ अपनी जीवन यात्रा समाप्त करता है तो अस्त होने से पूर्व एक बार अधिक प्रकाश प्रसारित करता है। ठीक इसी प्रकार अलवर साहित्य की रीति कालीन प्रवृत्ति का अस्त हम अलवर के सुप्रसिद्ध कवि जयदेव के पश्चात् मानते हैं। आपने 'राधिका शतक' नामक ग्रंथ मे राधिका वर्णन को अनुपम रूप दिया है। अपने विभिन्न प्रकार के छंदो मे ब्रजभाषा प्रयुक्त कर अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग किया है —

> 'जयदेव' रहै जल पूरित पै पिय पानिप प्यास अजौ न टरी।
> जबतें नन्द-नन्द के नेह नहे इन नैनन नीति नई पकरी॥

उक्त पद्यांश मे अलंकारो का भरपूर प्रयोग दर्शनीय है।

अधिकतर रीतिकालीन कवियों को राज्याश्रय प्राप्त था। ठीक इसी प्रवृत्ति के आधार पर हम अलवर राज्य के अधिकतर कवियो को भी किसी ना किसी रूप मे राज्याश्रय मे पाते हैं। ऐसे आश्रयो के पुनीत परिणामों के प्रभाव मे कवियो का स्वतत्रतानुभूति होती रही है। अत वे भौतिकवाद से अछूते रह वास्तविक साहित्य का सृजन सरलता मे करते रहे हैं। कवियो को जैसा वातावरण मिला उसी के अनुकूल उन्होंने काव्य सृजन कर प्रस्तुत किया। राजा विलास-प्रिय रहा तो कवि भी विलास प्रियता मे योगदायी प्रवृत्ति से पूरित कवितायें ही प्रस्तुत करने म जुटा रहा। इसी प्रकार के प्रयत्नों के परिणामों का फल ही रीतिकालीन काव्य है। अलवर साहित्य को भी हम इस प्रभाव मे अछूता नहीं पाते।

अलवर साहित्य के कुछ और भी ऐसे स्तम्भ हैं जिनके अध्ययन से हमे और भी रीति कालीन प्रभावो को खोज निकालने का अवसर मिल सकता है। परन्तु समय-भाव तथा स्थानाभाव के फलस्वरूप इन कृतियों का यहाँ नाम मात्र देना ही उपयुक्त समझा गया है। ये हैं वाणी भूषण, रसिक मजरी, काव्य कुतूहल, साहित्य सुधाकर, दृग रत्नावली, दृग बोधिनी, निवदान प्रकाश, रामरास, गोविन्दलीला तथा मानलीला आदि। आशा है इनमे भी हमे उक्त वृत्तान्तानुसार अलवर राज्य के हिन्दी साहित्य मे और भी अधिक रीतिकालीन प्रवृत्तियों की खोज कर पाने मे सफलता मिल सकती है।

अर्वाचीन परम्परा—

भक्ति एवं रीति परम्परा की भांति साहित्य की अर्वाचीन परम्परा भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रही है। वास्तव में तो महाराजा जयसिंहजी के समय में हिन्दी-साहित्य का अर्वाचीन काल प्रारम्भ होता है जहां हिन्दी को राज्य-भाषा घोषित किया गया। १९०८ ई० में अलवर में हिन्दी राज्य-भाषा घोषित कर दी गयी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वानों को राज्य में सम्मान देकर साहित्यिक परम्परा को श्री जयसिंहजी ने बढ़ावा दिया। राज्य-भाषा की आज्ञा को कार्यान्वित करने के लिये देवनागरी परीक्षा बोर्ड की स्थापना की गयी और राज्य कर्मचारियों को हिन्दी की शिक्षा देने का विशेष प्रबन्ध किया गया। अनेक राज्य पदों एवं विभागों का, राजमार्गों एवं राज भवनों के हिन्दी नाम निश्चित किये गये जो आज भी स्वर्गीय राजा के हिन्दी प्रेम का परिचय देते हैं। राजा जयसिंह स्वयं भी हिन्दी के कवि थे।

१९२९ में श्री महेशचन्द्र ने 'जयविनोद' अथवा 'अलवर कवि कीर्तन' ग्रन्थ प्रकाशित कराया था। इस ग्रंथ में अलवर के ५२ कवियों का परिचय तथा रचनाओं के उदाहरण संकलित किये गये थे। अलवर के साहित्य के विषय में यह प्रथम ग्रंथ है। ग्रन्थ के ५२ कवियों में खड़ी बोली के भी तीन कवि हैं। पं० कृष्णदत्त शास्त्री (जन्म १९०० ई०) हिन्दी और संस्कृत के कवि थे (शास्त्रीजी अभी भी जीवित हैं) विनोद में उनके द्वारा रचित खड़ी बोली का एक पद उद्धृत किया गया है—

> किसी नीच ने किसी भांति से होके निर्भर।
> दे दे के उपदेश किया तुमको अति निर्दय॥
> जाना जाता नहीं [illegible] वह फल पावेगा।
> कलपा करके हमें [illegible] क्या फल पावेगा॥

विनोद के अनुसार इनका कविता [illegible] १९२१ ई० में आरम्भ होता है।

विनोद में उल्लिखित दूसरे कवि [illegible] रामचन्द्र शास्त्री हैं। इनका जन्म काल १९०० ई० है। 'विनोद' की रचना के समय में [illegible] हाई स्कूल बहरोड़ में अध्यापक थे। इनकी खड़ी बोली कविता का उदाहरण निम्नलिखित है—

> चलते बने दिनराज भी सन्ध्या समय अब आगया।
> जो लुप्त था दिनराज के डर, वह अंधेरा छागया॥
> दिन भर विपिन में घूमकर पशुवृन्द घर आने लगे।
> आहार लेकर पक्षिगण निज नीड़ को जाने लगे॥

१९३० में राजा जयसिंह ने राजऋषि कॉलिज की स्थापना की। १९३५ ई० में राजऋषि कॉलिज की पत्रिका 'विनय' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। अलवर राज्य में प्रकाशित यह प्रथम पत्रिका है। १९३७ ई० में राज्य की आर्थिक सहायता से 'तेज प्रताप' नामक सप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो बहुत वर्षों तक प्रकाशित होता रहा।

अलवर में खड़ी बोली साहित्य का विशेष विकास १९३९ में 'हिन्दी परिषद्' की स्थापना के द्वारा हुआ। अलवर के साहित्यिक इतिहास में 'हिन्दी परिषद्, का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा

जायेगा। 'हिन्दी-परिषद्' ने अलवर की साहित्यिक चेतना को प्रथम बार सगठित रूप प्रदान किया। 'हिन्दी विद्यालय' की स्थापना भी परिषद् के द्वारा की गई जो पंजाब विश्वविद्यालय एवं हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा संचालित हिन्दी-परीक्षाओं के शिक्षण एवं परीक्षा की व्यवस्था करता था। परिषद् ने समय-समय पर अनेक कवि-सम्मेलन आयोजित किये जिनमें भारत के तत्कालीन प्रसिद्ध कवियों ने भाग लिया। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री जैनेन्द्र कुमार आदि प्रसिद्ध साहित्यकार परिषद् के आमंत्रण पर अलवर आये। एक वर्ष परिषद् ने कहानी सम्मेलन का आयोजन भी किया था। साहित्यिक-जयन्तियाँ और गोष्ठियाँ तो परिषद् द्वारा नियमित रूप से आयोजित होती ही रहती थी। 'हिन्दी-परिषद्' के प्रथम सभापति श्री काशीराम गुप्त थे।

'हिन्दी-परिषद्' का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है—'अरावली' मासिक का प्रकाशन। श्री लक्ष्मण त्रिपाठी के सम्पादन में 'अरावली' मासिक का पहला अंक अगस्त १९४४ ई० में प्रकाशित हुआ था। श्री चतुरसेन शास्त्री 'अरावली' का उद्घाटन करने के लिये अलवर पधारे थे। अरावली के पहले अंक में सात गीत एवं कवितायें, दो कहानी तथा चार लेख प्रकाशित किये गये थे। इस अंक में प्रकाशित कवि थे—सवश्री लक्ष्मण त्रिपाठी, हरिनारायण किंकर, सुधीन्द्र, श्यामसुन्दरलाल दीक्षित, रघुवीर स्वरूप भट्ट, आर. एस. भारती और अक्षयसिंह रत्नू। श्री रत्नू की कविता मेवाती भाषा में थी। प्रथम अंक के कहानीकार श्री योगेशचन्द्र पराग और सुश्री कमला चौधरी थी। चार लेखक थे सर्वश्री प्रभुनारायण सहृदय (मीरांबाई), चतुरसेन शास्त्री (भारतीय नारी चौराहे पर), प्रेमेन्दु (श्री प्रफुल्लचन्द्रराय) और सुश्री सुशीला त्रिपाठी (सावण रुत वरसियो)। अरावली लगभग तीन वर्ष तक प्रकाशित होती रही और इसके ३०-३२ अंक प्रकाशित हुये। अरावली के प्रथम सम्पादक श्री लक्ष्मण त्रिपाठी थे, उनके बाद क्रमशः श्री योगेशचन्द्र पराग और श्री वंशीधर मिश्र इसके सम्पादक बने। सामान्य अंकों के अतिरिक्त अरावली के तीन विशेषांक भी प्रकाशित हुये। पहला विशेषांक राजपूत अंक था। इसके बाद अगस्त सितम्बर-अक्तूबर १९४५ का अंक 'अलवर अंक' के रूप में प्रकाशित हुआ। अन्तिम विशेषांक 'कहानी विशेषांक' था।

'अरावली' मासिक अलवर का गौरवमय प्रकाशन है। इस पत्र का प्रचार सभी हिन्दी भाषी प्रान्तों में था और अपने समय के सभी प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यिकारों का सहयोग अरावली मासिक को प्राप्त था। इस पत्र में अलवर के सर्वश्री लक्ष्मण त्रिपाठी, हरिनारायण किंकर, रघुवीर स्वरूप भट्ट, प्रेमेन्दु, नाथूराम शर्मा भारद्वाज, कुमारी रेणु, अक्षयसिंह रत्नू आदि के साथ तत्कालीन प्रसिद्ध कवि श्री गोपालदास नीरज, डा० सुधीन्द्र, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, अनूप शर्मा आदि कवियों की कवितायें भी प्रकाशित हुई थी। अरावली में सर्वश्री जयनारायण व्यास, चतुरसेन शास्त्री, प्रभाकर माचवे, सत्यदेव परिव्राजक आदि की रचनायें भी प्रकाशित होती रहती थी। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से सम्बन्धित लेख भी अरावली के अंकों में प्रकाशित होते रहते थे। जापान द्वारा कोरिया पर आक्रमण, सोवियत संघ में शिक्षा की प्रगति, अमरीकी नेता विल्टेन

विलकी पर अरावली में लेख प्रकाशित किये गये थे। अरावली के पहले अंक में ही श्री प्रफुल्लचन्द राय के देहावसान पर एक श्रद्धांजलि लेख प्रकाशित किया गया था। अरावली के सम्पादकीय लेखों में विभिन्न प्रान्तो मे हिन्दी भाषा के प्रचार की प्रगति एवं हिन्दी-परीक्षाओं की मान्यताओं के विवरण के साथ सामयिक राष्ट्रीय घटनाओं पर टिप्पणियाँ भी सम्मिलित रहती थी, उदाहरण के लिये ब्रिटेन के प्रधानमंत्री श्री लायड जार्ज और अमरीकी राष्ट्रपति श्री रूजवेल्ट के देहावसान पर अरावली में सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित की गई थी। आजादी के पूर्व ही 'अरावली' का प्रकाशन अनेक कारणो से स्थगित करना पड़ा, यह अलवर की साहित्यिक प्रगति के लिये बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण घटना रही।

श्री हरदयालसिंह मौजी—

'अरावली' मासिक की एक विशेष देन अलग से उल्लेखनीय है। इस मासिक पत्र के माध्यम से अलवर में कहानीकारो की एक सशक्त पीढ़ी विकसित हो रही थी। इन कहानीकारों में प्रमुख थे श्री हरदयालसिंह मौजी। श्री मौजी की कहानियाँ तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र 'प्रतीक' में भी प्रकाशित हुई थी और श्री रायकृष्णदास ने उनका स्थान हिन्दी के प्रमुख प्रगतिशील कहानीकारो मे माना था। श्री मौजी की कहानियो मे यथार्थवादी चित्रण के साथ आदर्शवाद का सुन्दर समन्वय दिखलाई देता है। उन्होंने अपनी कहानियो में भारतीय समाज के निम्न वर्गों का सुन्दर चित्रण किया है। दुर्भाग्य से श्री मौजी का कोई कहानी-संग्रह प्रकाशित नही हो सका और अब उनकी रचनायें सुलभता से उपलब्ध भी नही हैं। श्री योगेशचन्द्र पराग भी उस समय उत्तम कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध थे। 'अरावली' के अतिरिक्त 'चांद' और 'सरस्वती' जैसे प्रसिद्ध पत्रो में भी उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई थी किन्तु दुर्भाग्य से श्री पराग की कहानियाँ भी पुस्तक रूप मे प्रकाशित नही हो सकी। श्री वंशीधर मिश्र ने विशेष रूप से व्यंगात्मक कहानियाँ लिखी थी। अरावली के अंको में उनकी अनेक कहानियाँ छद्म नामों से भी प्रकाशित हुई थी। श्री मिश्र ने अरावली का प्रकाशन स्थगित हो जाने के बाद 'रजनी' नाम से एक कहानी मासिक का प्रकाशन भी आरम्भ किया था मगर उन्हें उस कार्य में सफलता प्राप्त नही हो सकी और दो अंको के बाद ही उसका प्रकाशन समाप्त हो गया। श्री मिश्र कहानीकार के साथ अच्छे कवि और लेखक भी रहे हैं। श्री मिश्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे नयी से नयी प्रवृत्ति का स्वागत करने के लिये हमेशा तत्पर रहते थे। हिन्दी-परिषद् के कार्यकर्त्ताओं के साथ उन्होंने जिस तत्परता से कार्य किया था, उसी तत्परता के साथ उन्होंने अलवर के साठोत्तरी पीढ़ी के साथ भी कार्य किया है। अलवर के अधिकांश साहित्यिक-प्रकाशन उनकी देखरेख में और उनके मुद्रणालय मे ही तैयार होते थे। श्री प्रेमन्दु भी अलवर के अच्छे कहानीकार रहे हैं और उन्होने अनेक मार्मिक कहानियाँ लिखी हैं। लघु-कथा लिखने में उन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की थी।

श्री ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ—

श्री ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ का नाम अलवर के कहानीकारों के प्रसंग में अलग से उल्लेखनीय है। उनका एक कहानी संग्रह 'ज्वालाओ के उरोज' के नाम से प्रकाशित हुआ था

जो अब अलवर मे प्राप्त नही है। श्री बरुआ ने अप्रेल १९४५ ई० मे 'राजस्थान क्षितिज' नाम से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी आरम्भ किया। राजस्थान प्रगतिशील लेखक सघ ने 'राजस्थान क्षितिज' को अपना मुख पत्र बनाया था। अलवर मे श्री बरुआ न साहित्यिक-प्रकाशनो के लिये एक मुद्रणालय स्थापित करने का भी प्रयत्न किया। अलवर मे रहते हुये श्री बरुआ को अपने साहित्यिक कार्यों मे अधिक सफलता नही मिली किन्तु श्री बरुआ कलकत्ता मे रहते हुये अब भी साहित्य-रचना मे लगे हुये हैं और उनके अनेक ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं।

माघ १९४४ ई० मे हिन्दी परिषद् की ओर से श्री रामकुमार के सम्पादन मे अलवर के आठ कवियो का एक सामूहिक सकलन 'नीराजन' के नाम से प्रकाशित हुआ। अलवर के खडी बोली कवियो का अब तक यह प्रथम और अन्तिम सयुक्त काव्य सकलन है। इस सकलन मे सर्वश्री लक्ष्मण त्रिपाठी, हरिनारायण किंकर, रघुवीर स्वरूप भट्ट, चन्द्रशेखर शर्मा, नाथूराम शर्मा भारद्वाज, रमेशचन्द्र पत, कुमारी शाति भागव और प्रभुदयाल गुप्त की ३९ रचनायें सम्मिलित थी। नीराजन मे सकलित रचनाओ मे द्विवेदी कालीन वर्णनात्मकता एव राष्ट्रीयता तथा छायावादी कल्पना एव भावुकता की प्रधानता दिखलाई देती है। सकलन की अधिकाश रचनाये गीतो के रूप मे लिखी गई है, अतुकान्त मूल छन्द मे रचित कवितायें बहुत कम हैं। रचनाओ की भाषा परिमार्जित है और शैली मे स्पष्टता एव प्रवाह है।

श्री लक्ष्मण त्रिपाठी—

अलवर के आधुनिक कवियो मे श्री लक्ष्मण त्रिपाठी सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। श्री त्रिपाठी प्रतिभाशाली कवि और लेखक थे। साहित्यकार होने के साथ वे सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता भी थे। वे कई वर्षों तक जिला काग्रेस के अध्यक्ष रहे थे और राज्य-सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने के कारण उन्हे जेल-यात्रा भी करनी पडी थी। बाद मे जेल जीवन के अनुभवो के आधार पर उन्होने एक उपन्यास 'बारक छाया' लिखा जो प्रकाशित भी हुआ। हिन्दी परिषद् की मासिक पत्रिका 'अरावली' का नामकरण उनकी एक कविता के आधार पर ही किया गया था। अलवर के तत्कालीन साहित्यिक जीवन मे श्री त्रिपाठी का महत्त्व इससे भली भाति प्रकट है। वे 'अरावली' पत्र के पहले सम्पादक भी बने और सम्पादन कार्य से मुक्त होने के बाद भी उनकी अनेक सुन्दर रचनाये 'अरावली' मे प्रकाशित होती रही। राष्ट्रीयता और क्राति भावना श्री त्रिपाठी के लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

श्री हरिनारायण किंकर—

अलवर के लोकप्रिय कवियो मे श्री हरिनारायन किंकर का स्थान महत्त्वपूर्ण है। श्री किंकर हिन्दी-परिषद् के सर्वाधिक सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। 'नीराजन' के प्रकाशन की योजना मे भी इनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। श्री किंकर के प्रकाशित ग्रथ दो हैं—युगधर्म और जीवन के मत्र। युगधर्म महाभारत के विदुलोपाख्यान के आधार पर रचित एक छोटा किन्तु कवित्वपूर्ण खण्ड काव्य है। आजादी के बाद इस खण्ड-काव्य को माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम मे भी स्थान दिया गया था। सम्पूर्ण काव्य राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत

है। 'जीवन के मंत्र' में किंकरजी की मौलिक-गीत रचनायें संकलित हैं। किंकरजी ने और भी अनेक ग्रंथों की रचनायें की है किन्तु दुर्भाग्य से वे अभी तक अप्रकाशित हैं।

श्री नाथूराम भारद्वाज—

श्री नाथूराम भारद्वाज पहले व्रजभाषा मे कविता करते थे किन्तु वाद में खड़ी वोली में ही कविता करने लगे। सागर पर स्थित महाराज बख्तावरसिंह की छत्री के विषय में इन्होंने एक भावपूर्ण कविता लिखी है। लगभग दो साल पहले श्री भारद्वाज का 'विषाद-योग' नामक एक खण्ड-काव्य भी प्रकाशित हुआ है। यह खण्ड-काव्य गीता के आरम्भिक कथानक पर आधारित है।

स्व० कुमारी शांति भार्गव—

अलवर की कवयित्रियो मे स्व० कुमारी शाति भार्गव का नाम अलग से उल्लेखनीय है। इनकी रचनाओं में महादेवी वर्मा जैसा गहन-वेदना भाव दिखलाई देता है। दुर्भाग्य से इनकी मृत्यु वहुत कम अवस्था मे ही होने से इनका काव्य-विकास अधिक नही हो सका। श्री रमेशचन्द्र पत की जो रचनाये 'नीराजन' में सकलित है, उन पर हिन्दी के क्रांतिकारी कवि निराला का कुछ प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रकार श्री प्रभुदयाल गुप्त की कविताओं में रामधारीसिंह दिनकर के समान अतीत प्रेम, आवेग और उद्‌वोधन की प्रवृत्तियाँ दिखलाई देती है। श्री चन्द्रशेखर शर्मा की कविताओं मे प्रकृति-चित्रण की अधिकता है। 'नीराजन' में संकलित उनकी 'कादम्बिनी' नामक कविता उपमाओं की दृष्टि से सुन्दर कविता है। श्री रघुवीर स्वरूप भट्ट की कविताओं में प्रेम की आशा और निराशा का चित्रण हुआ है।

श्री रूपनारायण चन्द्रुल—

श्री रूपनारायण चन्द्रुल की कवितायें 'नीराजन' में संकलित नहीं हैं किन्तु वे अलवर-क्षेत्र के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। हास्य रस के कवि के रूप में श्री चन्द्रुल दूर-दूर तक विख्यात हैं और कवि सम्मेलन के प्रेमी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा करते हैं। श्री चन्द्रुल ने कुछ गम्भीर प्रगतिशील रचनायें भी लिखी हैं किन्तु उनकी हास्यरस की रचनायें इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि उनकी अन्य रचनाओं को प्रायः भुला दिया गया है। श्री चन्द्रुल ने खड़ी वोली के साथ-साथ मेवाती और राजस्थानी भाषा में भी कवितायें लिखी है, किन्तु उनकी कवितायें पुस्तक रूप में अभी तक प्रकाशित नही हुई हैं।

अलवर के साहित्यिक जीवन में दो कमी ऐसी रही हैं जिनके कारण यहाँ के साहित्य का विकास वहुत अधिक नही हो सका। अलवर में अनेक उत्तम कवि हुये हैं, किन्तु उनकी रचनाओं के प्रकाशन की उत्तम व्यवस्था नहीं हो सकी जिसके कारण वे क्षेत्रीय कवि ही होकर रह गये हैं। श्री भगवतीसिंह भावुक ऐसे ही एक कवि हैं जो आज भी अपने गांव में रचनारत हैं, किन्तु उनकी रचनाओं से अलवर क्षेत्र के ही बहुत कम लोग परिचित हैं। श्री हरिनारायन सैनी भी अपने समय के उत्तम प्रगतिशील कवि रहे हैं, किन्तु उचित प्रकाशन के अभाव में हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्रों में अपरिचित हैं।

आजादी के बाद हिन्दी परिषद् का कार्य शिथिल हो गया और 'अरावली' भी बन्द हो गई। हिन्दी परिषद् और अरावली के अभाव मे जो शून्यता उत्पन्न हुई दुर्भाग्य से दीर्घ समय तक उसे भरा नही जा सका। १९५१ ५२ ई० मे श्री कृष्णचन्द्र खण्डेलवाल ने 'महिला-जाग्रति' के प्रकाशन द्वारा 'अरावली' के अभाव को दूर करना चाहा किन्तु उनकी पत्रिका दीर्घजीवी नही हो सकी। १९५५ ई० मे कुछ नवयुवक लेखको ने 'साहित्य परिषद्' का गठन करके 'हिन्दी परिषद्' के अभाव को दूर करने का प्रयत्न किया किन्तु एक वर्ष बाद यह प्रयत्न भी असफल हो गया। १९५६ ई० मे राजस्थान साहित्य अकादमी की ओर से अलवर में एक त्रि दिवसीय गोष्ठी का आयोजन किया गया किन्तु यह आयोजन अलवर के साहित्य जीवन को गहराई से प्रभावित करने मे असमर्थ रहा। सगठित प्रयत्नो के अभाव मे अलवर की अनेक साहित्यिक प्रतिभायें पूर्ण विकसित होने से पहले ही समाप्त हो गई।

इस प्रकार ४७ से लेकर ५६ तक की साहित्यिक प्रवृत्तियो मे स्थायित्व नही आने के अनेक कारण हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अलवर मे पजाबी सस्कृति के आगमन के कारण उर्दू का प्रभाव भी विशेष आया। पुरानी पीढी के प्रतिष्ठित लेखको मे से बहुत से वृहत् राजस्थान बनने के कारण नौकरी के कारण इधर-उधर स्थानातरित हो गये और इस प्रकार पुराना गठबधन टूट गया। बरुआ, किंकरजी जैसे लोग अलवर से बाहर चले गये और शहर का एक जो सुगठित साहित्यिक गठन था वह प्राय छिन्न भिन्न हो गया।

वास्तव मे तो यह सक्रान्ति काल था। कॉलेज मे पढाने वाले प्राध्यापको एव शहर के बुद्धिजीवी व्यक्तियो की टाउनहाल मे यदा-कदा अनेक विषयो पर गोष्ठियाँ अवश्य हुआ करती थी, जिनमे श्री विशन सिन्हा श्री कृपादयाल माथुर श्री गुलजारीलाल जैन आदि विशेष सक्रिय थे। कॉलेज मे नवोदित कवि कॉलेज पत्रिका के माध्यम से सामने आने लगे थे। अधिकतर कवियो एव लेखको की प्रवृत्ति शृगारी भावनाओ की ओर अधिक थी, इसलिए छायावादी शैली मे रोमाटिक गीत लिखने की ही प्रवृत्ति अधिक थी। निश्चय ही ऐसी रचनाओ को स्थानीय अलवर पत्रिका के सम्पादक कैलाश मोदी ने भी विशेष बढावा दिया। उनके राजस्थान अक मे कमलेश जोशी, जयसिंह नीरज, श्री नन्दकिशोर भट्ट 'जीवन', कृष्ण कुमार द्विवेदी आदि की साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित हुई थी।

अब तक जो कुछ लिखा गया है वह मुख्यत खडी बोली के साहित्य के विषय मे लिखा गया है किन्तु इसके अतिरिक्त इस काल म अनेक कवि व्रजभाषा मे भी रचना करते रहे हैं। ऐसे कवियो मे श्रीमन्नारायण शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। फुटकर कविताओ के अलावा उनके दो ग्रथ 'विनय-विनोद' और 'प्रेमोल्लास' भी प्रकाशित हुये हैं। व्रजभाषा के कवियों मे इसके अतिरिक्त श्री गिरिजभँवर, श्री तेजदानसिंह बारैठ, श्री गिरवर गोपाल, श्री मोतीलाल शास्त्री आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

पंडित रामदत्तजी शर्मा—

इस लेख के अंत में पंडित रामदत्तजी शर्मा का उल्लेख अलग से जरूरी है। अलवर के प्राचीन इतिहास और साहित्य के ज्ञान के लिये पंडितजी विश्वकोष के समान है। उन्होंने 'शस्त्र-शास्त्र' नामक एक ग्रंथ भी लिखा है, जिस पर उन्हें एक हजार रुपये का अनुदान मिला था। पंडितजी के पास अलवर के संबंध में प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों एवं प्राचीन मुद्रित ग्रंथों का अपूर्व भंडार है, जिसका समय-समय पर शोधार्थी लाभ उठाते रहते है।

नव लेखन

अलवर में नव लेखन का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ इसकी सीमा रेखा बांधना बहुत कठिन है, किन्तु इतना अवश्य है कि ५७-५८ से पूर्व तक अलवर से बाहर रहने वाले नवयुवक लेखक नव लेखन की प्रवृत्तियों से परचने लगे थे। अपने पठन-पाठन एवं लेखन में नवीन विचार-धारा एवं नवीन शिल्प के प्रति उनकी रुझान होने लगी थी। श्री जयसिंह नीरज एवं जुगमन्दिर तायल ५८ मे कॉलिज में नियुक्त होकर आये। नयी कविता और नयी कहानी पर चर्चाएँ होने लगी। श्री भागीरथ भार्गव भी इस क्रम मे जुड गये। कॉलेज मे तथा शहर में और खासतौर से मास्टर वशीधरजी की प्रेस में छोटी-छोटी अनौपचारिक गोष्ठियाँ होने लगी, जिनमें नयी कविता और नयी कहानी जैसे विषय ही अधिकतर चर्चा के विषय रहते थे। कॉलेज के कवि सम्मेलन में भी नयी कविताएँ सुनाई जाने लगी थी। अध्यापक कक्ष मे नयी कविता को लेकर समय-समय पर मखौल होने लगती थी। श्री त्रिभुवननाथ चतुर्वेदी नयी कविता की मखौल उड़ाने के लिए नयी कविताएँ रचने लगे और सचमुच इसी बहाने अच्छे नवीन प्रयोग करने लगे थे।

अलवर नव लेखन का सुव्यवस्थित रंगमंच 'कविता' के प्रकाशन से बना। 'कविता' के कारण अलवर के सारे नव लेखक एक मंच पर एकत्रित हुए एवं उनका संपर्क अखिल भारतीय स्तर पर अन्य नये कवियों से होने लगा। कविता का प्रथम अंक सन् ६१ में प्रकाशित हुआ। अंक चर्चित रहा और उसे अखिल भारतीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हुई। 'कविता' के अंकों के प्रकाशन की शृंखला एक के बाद एक निरन्तर चलती रही। अब तक इसके छः अंक प्रकाशित हुए हैं। 'कविता' का एक अंक श्री ओमप्रभाकर के सहयोग से 'नवगीत' अंक प्रकाशित हुआ जो साहित्य-जगत में अत्यधिक चर्चा का विषय रहा। ओमप्रभाकर और जुगमन्दिर तायल द्वारा संपादित अनियत कालीन लघु काव्य-पत्रिका 'शब्द' का प्रकाशन भी अलवर के नव लेखन मे अपना विशेष योगदान रखता है। इसके माध्यम से अनेक अखिल भारतीय स्तर के लेखक एक मंच पर जुड़े। छपाई, सज्जा एवं रचनाओं के स्तर की दृष्टि से इसके ५ अंक (केवल ५ अंक ही प्रकाशित हो पाए) छोटी पत्रिकाओं में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

'कविता' के प्रकाशन से जहाँ एक ओर अलवर हिन्दी नयी कविता का एक प्रमुख केन्द्र बना वहाँ दूसरी ओर अलवर के नवयुवक साहित्यकारो को एक स्थान पर मिल बैठने का माध्यम भी

प्राप्त हो गया। विनिमय मे अनेक लघु पत्रिकाएँ कविता कार्यालय मे आने लगी जिसके कारण सम्बन्धित लेखकगण हिन्दी की नयी से नयी अच्छी बुरी गतिविधि से परिचित रहने लगे। निश्चय ही इन्ही कारणो से इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, कलकत्ता, बनारस आदि साहित्यिक स्थानो की भाति अलवर भी नवलेखन का एक प्रमुख स्थान माना जाने लगा। यही कारण रहा है कि डॉ० नामवरसिंह ने साहित्य सगम का उद्घाटन करते हुए कहा कि—"हिन्दी के साहित्य-जगत के नक्शे मे अलवर का नाम स्पष्ट उभरा हुआ है, जिसका श्रेय 'कविता' के प्रकाशन एव यहाँ के नव लेखको को है। यही कारण है कि 'कविता' की नगरी अलवर मेरे लिए आकर्षण का केन्द्र रही है।"

नव लेखन को बढावा देने मे कॉलेज का योगदान भी किसी प्रकार कम नही है। नव लेखन सबधी पत्रिकाएँ एव पुस्तकें कॉलेज पुस्तकालय मे प्रचुर मात्रा मे आने लगी। अनेक गोष्ठियो मे नयी कविता पर चर्चा होने लगी। बाहर से अनेक विद्वान चर्चाओ मे भाग लेने के लिए बुलाए जाने लगे तथा वार्षिक कवि सम्मेलनो मे नए कवि भी अधिकाधिक भाग लेने लगे। विनय' मे नयी कविता पर आलोचनात्मक लेख छपने लगे। 'नयी कविता', 'नयी कविता की भाषा', 'नयी कविता का शिल्प विधान' आदि विषयो पर विनय मे समय समय पर लेख प्रकाशित हुए। अनेक छात्रो ने नयी कविताएँ लिखकर दी, जिन्हे सुधार कर विनय मे छापा गया। नव लेखन को बढावा देने मे कॉलेज के हिन्दी विभाग की सस्था 'हिन्दी साहित्य सगम' ने अविस्मरणीय कार्य किया। अनेक गोष्ठियो का आयोजन किया गया जिनमे नव-लेखन पर ही अधिकतर विचार हुआ डॉ० नामवरसिंह, डॉ० सरनामसिंह, डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, मणिमधुकर, विजेन्द्र, रमेश गौड आदि पुराने और नये लेखको ने सगम के माध्यम मे नव लेखन पर सभी दृष्टि से विचार किया। प्राध्यापक समाज के अनेक जिज्ञासु प्राध्यापको ने गोष्ठियो मे भाग लिया और नव लेखन सम्बधी अनेक अच्छाइयो और बुराइयो पर समय-समय पर चर्चा की। इन चर्चाओ मे प्रो राय, प्रो श्री पी माथुर, प्रो पुरुषोत्तम सिन्हा, प्रो बी एस शर्मा, प्रो दर्शन, प्रो चन्द्रशेखर शर्मा, प्रो गुलजारीलाल जैन, प्रो त्रिभुवन चतुर्वेदी आदि ने विशेष रुचि ली। यही कारण है कि कॉलेज के मच से नव लेखन को विशेष बढावा मिला।

इसमे समय समय पर बाहर से आने वाले साहित्यकारो का योगदान भी कुछ कम न रहा श्री ओमप्रभाकर अलवर मे लगभग एक वर्ष तक रहे और उन्होने यहाँ की नव लेखन सम्बन्धी गतिविधियो को विशेष बढावा दिया। इस दृष्टि से श्री निरजन महावर और आग्नेय का नाम भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। इस प्रकार कितने ही वर्षो के अनवरत विकास के बाद अलवर मे नव लेखन सम्बन्धी कुछेक नाम उभर कर सामने आये जिनका साहित्यिक परिचय देना अनुचित न होगा।

जयसिंह नीरज—

अलवर में नव लेखन से सम्बन्धित जयसिंह नीरज पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने सन् ५५ से ही नयी कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया था। ५६, ५७ मे उन्होंने 'कमरा और जीवन' 'सड़क का अनुभव' 'भ्रम' आदि कविताओं में भाव एवं शिल्प की दृष्टि से परम्परा से हटकर नवीन प्रयोग किए हैं। इसके उपरान्त से उन्होंने अधिकतर नयी कविताएँ ही लिखी हैं, जो समय एवं प्रवृत्तियों के अनुसार आधुनिक बोध की द्योतक रही हैं। राजस्थान में सबसे पहले नयी कविता का संकलन जयसिंह नीरज का ही प्रकाशित हुआ। कविता प्रकाशन, अलवर से प्रकाशित 'नीलजल सोई परछाइयाँ' सन् १९६३ का प्रकाशन है। इसमें कुल ४५ कविताएँ हैं, जिनको विषयानुसार तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम 'पोर पोर की आग' में प्रगतिशील विचारों से संबधित कविताएँ है। दूसरे में गंभीर वैचारिक रचनाएँ हैं, जिसे 'अतलात का प्रतिवेदन' शीर्षक दिया गया है और तीसरा शीर्षक है 'मुखौटाधारी हम' जिसमें व्यंग्य कविताएँ हैं। 'नीलजल सोई परछाइयाँ' सकलन की अखिल भारतीय स्तर पर चर्चा हुई है। नयी कविता में भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से नीरज ने अनेक प्रयोग किए है। ग्रामीण एवं शहर बोध का समन्वय भाव एवं भाषा दोनों में ही विशेष द्रष्टव्य है। रंग बोध उनकी रचनाओं को अधिक उभर कर आया है। दूसरा संकलन 'दुःखान्त समारोह' प्रकाशित होने को है।

५५ से पूर्व नीरज ने अधिकतर गीत लिखे हैं, जिनमें विरह-जन्य भावों का बाहुल्य है। नीरज की कलात्मक प्रवृत्तियों में विशेष रुचि रही है। वे अलवर के हिन्दी के प्रथम पी-एच. डी. है जिन्होंने 'राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण-काव्य' पर डॉ० सरनामसिंह शर्मा के निर्देशन में मौलिक कार्य किया है। कविताओं, साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त नीरज ने चित्रकला सम्बन्धी अनेक लेख लिखे हैं जो अखिल भारतीय स्तर की पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। घुम्मकड़ी का उन्हें विशेष शोक है, जिसकी छाप उनकी कविताओं में विशेषतया देखी जा सकती है। निश्चय ही अलवर में नव लेखन को बढ़ावा देने में नीरज का योगदान अविस्मरणीय है।

जुगमन्दिर तायल—

नव लेखन से संबंधित दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम जुगमन्दिर तायल का है। विकास की दृष्टि से लेखक जुगमन्दिर ने अनेक मोड़ देखे हैं, किन्तु उनकी मूलभूत वैचारिक दृष्टि प्रगतिशील तत्त्वों से जुड़ी हुई रही है। प्रारम्भ में उन्होंने 'योजना' में प्रकाशित होने लायक हल्के-फुल्के गीत लिखे और धीरे-धीरे उनके काव्यगत शिल्प में विकास होता गया। ५६ से ६४ तक उन्होंने सुन्दर कहानियां लिखी किन्तु बाद में उन्होने अपने को कविता और समीक्षात्मक लेखों तक ही सीमित कर लिया। 'समीक्षा' तथा 'कविता' के प्रकाशन में उनकी साहित्यिक अभिरुचि का सहज ही परिचय मिल जाता है। उन पर प्रेमचन्द का विशेष प्रभाव है। प्रगतिशील

विचारों से तायल गम्भीर चिंतक हैं, हर विषय पर चिन्तन करने का उनका अपना एक तरीका है। नगर व देश की राजनीति के वे अच्छे पाठक हैं। वे योजना बनाकर कार्य करते हैं और नियमित हिसाब लिखते हैं।

तायल कवि के रूप में ही अब प्रसिद्ध हैं। वैसे उनकी कहानियां "कादम्बिनी", 'सारिका', 'आजकल' जैसी प्रतिष्ठित कहानी पत्रिकाओं में छपी हैं और प्रसारित हुई हैं। तायल एक लम्बे अरसे से कविताएँ लिख रहे हैं। जब वे हाई स्कूल में थे तो एक खंड काव्य लिखा था, एक अधूरा उपन्यास भी। कॉलेज में पहुँचने तक तो तायल 'त्रिशंकु' के छद्मनाम से अत्यन्त लोकप्रिय कवि हो चुके थे। अलवर के साप्ताहिक 'विमान साथी' में त्रिशंकु के नाम से छपने वाली कविताएँ उनके पाठकों द्वारा उसी चाव से पढ़ी जाती थी जिस चाव से 'काका' की फुलझड़ियां। उनके बाद तायल 'योजना' (देहली) के कवि बने। 'योजना' के सम्पादक श्री मन्मथनाथ गुप्त ने तायल की कविताएँ 'योजना' के मुखपृष्ठ पर बड़े चाव से लगातार कई वर्ष तक प्रकाशित की। तायल की ऐसी कविताओं का एक लघु संग्रह "रोशनी का रथ" प्रकाशित भी हुआ है।

तायल ने अपनी इस प्रवृत्ति को अब त्याग दिया है और अब वह प्रकृति का गायक कवि है। प्रकृति को तायल जितने निकट से देखने का आदी है वह उसकी अपनी निधि है। "धूप भरी सुबह" व "सूरज सब देखता है" उसके ये दो कविता संकलन उसके प्रकृति प्रेम के साक्षी हैं। तायल की कविता की भाषा सहज और सरल है। सरल से सरल शब्दों के द्वारा तायल अपने भावों को अभिव्यक्ति देते हैं। इसीलिए कभी-कभी समझाकर व खुलासाकर बात करने व कहने के अंदाज में उनकी अभिव्यक्ति अधिक वर्णनात्मक और सपाट हो जाती है। फलस्वरूप आज के युग के संत्रास को भोगने वाले पाठक को वह कविता उपदेश पहले और कविता बाद में लगती है, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। आम पाठक को जो शिकायतें नयी कविता से हैं वे तायल के दोनों संग्रहों को पढ़ने से दूर हो सकती हैं।

सुन्दर बंगले (जो उन्होंने स्वयं बनाया है) के निवासी तायल रहन सहन में सरल और स्वभाव से नम्र हैं। स्वयं के नाम और लड़कियों से दूर रहने वाले तायल अपने को समाज से पूरी तरह जुड़ा हुआ मानते हैं। तायल के लिखने का भी तरीका उतना ही सरल है जितना रहने का। उन्हें लिखने के लिए किसी प्रकार की टीमटाम की जरूरत नहीं होती। उनकी राईटिंग टेबुल पर दो सस्ते पैन रहते हैं। वे कागज के दोनों ओर लिखते हैं। यदि कागज पर एकबार पेन्सिल से लिखा हो तो उस पर दुबारा पैन से लिखकर इस प्रकार कागज बचाकर उन्हें दुगुनी प्रसन्नता होती है।

अलवर की साहित्यिक पीढ़ी ऐसे सहज व्यक्तित्व को पाकर गर्वित है। तायल कॉलेज में परिश्रमी प्राध्यापक के रूप में छात्रों में लोकप्रिय हैं और हिंदी की लघु पत्रिकाएँ उन्हें अपना साथी मानती हैं। अलवर से प्रकाशित 'कविता' के सम्पादन, प्रकाशन में उनका गहरा सम्बन्ध रहा

है। 'शब्द' के यशस्वी सम्पादक के रूप में उन्हें अलवर से बाहर जाना जाता है। अनियत-कालीन पत्रिकाओं की परम्परा को जन्म देने वाले तायल ही हैं। 'समीक्षा' के प्रकाशन की योजना भी उनकी थी। उसका सम्पादन भी उनकी ही देखरेख में हुआ था।

भागीरथ भार्गव—

अलवर से बाहर साहित्यिक जगत् में भागीरथ भार्गव को सबसे अधिक जाना जाता है। कारण है उनके द्वारा सम्पादित दो पत्रिकाएँ "समीक्षा" (आलोचनात्मक द्वैमासिक) व "कविता" (त्रैमासिक काव्य प्रधान पत्रिका) दोनों पत्रिकाएँ अपने-अपने क्षेत्र की श्रेष्ठ रही हैं। 'कविता' ने अलवर को साहित्यिक केन्द्र बनाया है। वर्तमान में "कविता" हिन्दी कविता की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। भार्गव के घुमक्कड़ी व मिलनसार स्वभाव के बाहर कारण अनेक साहित्यिक मित्र हैं। उत्साही व परिश्रमी भार्गव गद्य व पद्य दोनों ही लिखते हैं। अनेक सुन्दर कहानियों, समीक्षाओं व व्यंग्य के प्रकाशन के बाद अब अधिकतर कविताएँ ही लिखते है। भार्गव की कविताएँ हिन्दी की प्रायः सभी पत्रिकाओं में छपी और प्रशंसित हुई हैं और राजस्थान की नयी पीढ़ी के कवियों में वे प्रतिष्ठित है। "युग पुरुष की बिदा पर" का सम्पादन व प्रकाशन भार्गव के परिश्रम व सुरुचिपूर्ण सम्पादन का स्वयं परिचय देता है। बहुधन्धी भार्गव अभीतक साहित्य के प्रति पूरी तरह से गम्भीर नहीं बन पाये है। इन्जेक्शन लगाने के कार्य से लेकर नाटक कम्पनियों, संगीत विद्यालय व बाल-भारती का संचालन तक वे करते हैं। हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों की कुंजियां तैय्यार करने में तायल के बाद उनका ही नम्बर आता है। भार्गव यदि साहित्य के प्रति गम्भीर होकर कार्य करें तो उनसे बहुत सी आशाएँ की जा सकती हैं।

बंसीधर मिश्र—

श्री मिश्र कविता—६१ के कवि है। पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों में अब अकेले जीवन्त साहित्यकार हैं जो अब भी कभी-कभी लिखते हैं और निरन्तर हिन्दी के नये साहित्य को खरीद-कर पढ़ते हैं। प्रतिभाशाली श्री मिश्र कवि व कहानीकार होने के साथ कुशल चित्रकार व सितार-वादक हैं। श्री मिश्र अरावली प्रेस के मालिक व व्यवस्थापक हैं। प्रेस का कार्यालय वर्षों से नयी पीढ़ी के लेखकों का अड्डा रहा है और वे मिश्रजी से प्रेरणा लेते रहे हैं। 'समीक्षा', 'कविता' व 'शब्द' का मुद्रण अरावली प्रेस में ही हुआ है। इस प्रकार के साहित्यिक प्रकाशनों में श्री मिश्र गहरी रुचि लेते हैं और कभी-कभी अपना योग भी देते हैं।

ऋतुराज—

"मैं आंगिरस" के कवि श्री ऋतुराज शर्मा इस कविता संकलन के प्रकाशन के बाद अधिक चर्चित और प्रतिष्ठित कवि बने हैं। 'मैं आंगिरस' का हिन्दी जगत् में जिस प्रकार और जैसा स्वागत हुआ है वह किसी भी नये कवि के लिए प्रेरणास्पद है। दुबले-पतले नवयुवक श्री ऋतु-राज मूडी हैं। मुझे नहीं मालूम वे कविताएँ किस मूड़ में लिखते हैं, किन्तु उन्हें देखकर कवि अवश्य कहा जा सकता है। कबीर के कथनानुसार दुखिया कवि ऋतुराज हैं। श्री शर्मा मूलतः कवि हैं और एकमात्र कवि हैं। आपकी कविताएँ साधारण पाठक के लिए अधिक दुर्बोध है,

गद्य के अधिक निकट व पाश्चात्य दर्शन और अंग्रेजी कवियो से प्रभावित है (श्री शर्मा अग्रेजी के व्याख्याता है) कवि शर्मा एक अन्डानुमा पैन रखते हैं और उनका कहना है कि हर साहित्यकार को ऐसा पैन रखना चाहिए ताकि वह उसके माध्यम से समाज मे साहित्यकार के रूप मे पहचाना जा सके, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक सूरदास को उसकी सफेद छडी से पहचाना जाता है। श्री शर्मा इस पहचान पर बहुत जोर देते हैं। समाज से उनकी इसी बात पर नाराजगी है कि समाज के ही सामाजिक जीव उन्हे पहचानते नही और पहचानकर कवि का सत्कार नही करते। कवि का स्वाभिमान ऋतुराज मे अधिक है इसीलिए वे हिन्दी की छोटी पत्रिकाओ को सहयोग नही देते और न ही चन्दा भेजते हैं।

श्री ऋतुराज की कविताएँ हिन्दी की सभी प्रतिष्ठित, साहित्यिक पत्रिकाओ मे छपी हैं। श्री तायल की तरह ऋतुराज की भी कविताएँ "धर्मयुग" के रगीन पृष्ठो पर छपी हैं।

निरजन महावर—

मूलत अलवर के महावर अनेक वर्षो से सागर व रायपुर मे अपनी शिक्षा व व्यवसाय के कारण रहकर अब स्थाई रूप से अलवर मे अपने औद्योगिक व्यवसाय मे जुटे हैं। श्री निरजन एक समझदार व्यवसायी के साथ उग्र साम्यवादी विचारक भी हैं। मार्क्स और उनके दर्शन मे उनकी गहरी आस्था है। मुक्तिबोध के सम्पर्क म रहे और उनके प्रशसक श्री महावर स्वय श्रेष्ठ कवि हैं किन्तु प्रकाशन से दूर ही रहे हैं। उनकी अधिकाश श्रेष्ठ कविताएँ लम्बी है। लम्बी कविताओ को व्यवसायी पत्रिकाएँ जो कविता को सजावट की वस्तु मानती हैं कम ही छापती हैं, इसीलिए उनकी अधिकाश कविताएँ अप्रकाशित है। इन कविताओ का प्रकाशन व मूल्याकन आवश्यक है। मुझे बेहद प्रसन्नता होगी जिस दिन श्री महावर का कविता सकलन प्रकाशित होगा।

आधुनिक चित्रकला व मूर्तिकला मे कवि निरजन की गहरी रुचि है। स्वय उन्होंने कई सुदर मूर्तियाँ कोरी हैं। इन दिनो श्री महावर अनेक योजनाओ को कार्यरूप देने मे चिन्तित हैं—मसलन अलवर मे व्यवसायिको का एक सगठन बनाना, श्रेष्ठ स्तरीय रगमच की स्थापना करना और नाटक अभिनीत कर कुछ हजारो की बचत द्वारा एक साहित्यिक पत्रिका का सकलन करना।

विशन स्वरूप—

अलवर के सबसे ताजा और महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं विशन स्वरूप। अलवर की नवीनतम साहित्यिक उपलब्धि के रूप मे विशनस्वरूप अभिनन्दनीय है। इन्होंने अपना लिखने का प्रारम्भ कविताओ से किया था। ये कविताएँ उनके मित्रो की कविताओ से बेहद प्रभावित थी और उनमे भाषा व शिल्प का बेहद बिखराव था। इसके बावजूद भी वे अनेको लघु पत्रिकाओ मे छपी, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपनी भूल को स्वीकार कर लिया। मित्रो की राय थी कि उनका क्षेत्र कविता नहीं कहानी है और तब से आप एक मात्र कहानियाँ ही लिख रहे हैं। पिछले दो साल मे इन्होने करीब चालीस कहानिया लिखी हैं और सभी प्रकाशित हुई हैं। आज की कहानी

के शिल्प को इन्होने पकड़ लिया है और कहानी में हो रहे निरन्तर प्रयोगों को अपनी कहानियों में उतारते चल रहे हैं। श्री विशन स्वरूप कहानी के प्रत्येक आन्दोलन और आन्दोलनकारी पत्रिकाओं के साथ हैं। पत्रिकाओं की मांग व प्रवृत्तियो के अनुरूप सफलता के साथ कहानियां लिखते हैं। फलतः विशनस्वरूप का अपना अलग व्यक्तित्व तो नहीं बन पाया है, किन्तु लघु पत्रिकाओं से कहानी की माँग के लिए अनेक पत्र प्रतिदिन विशनजी को मिलते हैं, इसलिए विशनजी के लिए कहानी को छपाने की समस्या नही रही है। जब उनकी यह समस्या हल हो गई है तो उन्हें निश्चय ही अपनी कहानियों के स्तरीय विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।

विशन सिन्हा—

कहानियों की चर्चा चलने पर मुझे एकाएक यह नाम याद हो आया है। अनेक वर्षो से अपने अध्यापन जीवन को बीकानेर में व्यतीत कर स्थानीय राजर्षि कॉलेज के आचार्य के रूप में आपका शुभागमन अलवर में हुआ है। राजस्थान के कहानीकारों में आपका नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है। सौम्य प्रकृति के श्री सिन्हा उच्चमध्यमवर्गीय पात्रों को लेकर कहानी का ऐसा ताना-बाना बुनते हैं कि पाठक बरबस आकर्षित होकर बतरस में डूब जाता है। आप सपाट कहानियाँ लिखते हैं, ये कहानियाँ किसी आन्दोलन या प्रवृत्ति के समर्थन में न लिखी जाकर एक मूड की उपज होती हैं। बीकानेर में डागा-भवन (वातायन कार्यालय जहाँ स्थित है) साहित्यिकों के लिए इसलिए भी चर्चित रहा कि उसमे श्री सिन्हा रहते थे। आपके बीकानेर में रहने से एक साहित्यिक वातावरण का निर्माण हुआ था। भाई यादवेन्द्रचन्द्र श्री सिन्हा के अलवर आने से बीकानेर में एक अभाव की बात कहते थे। निश्चय ही इस परिवर्तन को अलवर वाले एक अभाव की पूर्ति कहेंगे और श्री सिन्हा अपने वतन में आकर साहित्य के प्रति अधिक समय देंगे, ऐसी मैं कामना कर सकता हूँ। श्री विशन सिन्हा के अनुज कॉलेज के उप आचार्य श्री पुरुषोत्तम सिन्हा ने इधर बड़ी सुन्दर कविताएँ लिखी हैं किन्तु उनके पढ़ने या सुनने का सौभाग्य कुछ ही बन्धुओं को मिला है। यह एक सुखद रहस्योद्घाटन है।

विशम्भर गुप्त—

कविता—६१ के कवि व "समीक्षा" के प्रकाशक श्री गुप्त केन्द्रीय सरकार में अफसर हैं। लेखाधिकारी गुप्त साहित्य के अच्छे पाठक व अध्येता हैं और नई-नई साहित्यिक गतिविधियों व उथल-पुथल की पूरी जानकारी रखते हैं। साहित्यिक उखाड़-पछाड़ के समाचार को पहलवान मास्टर चन्दगीराम की कुश्ती के समाचार की भाँति दिलचस्पी के साथ पढते हैं। उन्होंने अनेक सुन्दर कविताएँ व कहानियाँ लिखी हैं जो संकोची स्वभाव के कारण अप्रकाशित ही रही हैं।

वल्लभदास वर्मन—

श्री वर्मन राजस्थान के शीर्षस्थ मॉडर्न चित्रकार हैं, किन्तु उन्होंने अभिव्यक्ति के दूसरे सशक्त माध्यम कविता को भी छोड़ा नहीं है। उनकी कुछ कविताएँ साहित्यिक गोष्ठियों में पढ़ी गई हैं। श्री वर्मन प्रचार से दूर कला के साधक हैं। अलवर की

साहित्यिक गतिविधियों के वे सहयोगी रहे हैं। "समीक्षा", "कविता-६१" व "युगपुरुष की विदा पर" के आवरण आपकी तूलिका द्वारा ही सज्जित हुए हैं।

सुरेन्द्रसिंह सुर्रे—

श्री सुर्रे मूलत गीतकार हैं, किन्तु इन्होंने कुछ अतुकान्त कविताएँ भी लिखी हैं। सुर्रे के गीत छायावादी युग की गिजगिजाहट से दूर आज के धरातल के गीत हैं। इन गीतों में कृषक जीवन की झलक है, मजदूरों का लाल झंडा भी है। प्रगतिशील विचारों वाले श्री सुर्रे पूरे मनमौजी हैं। अपने मनमौजी स्वभाव के कारण इनका लेखन व पाठन भी व्यवस्थित नहीं रह पाता है। यदि यह व्यवस्थिता हो तो सुर्रे को प्रतिभाशाली कवि के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

कॉलेज के वातायन से—

राजर्षि कॉलेज में समय समय पर स्थानान्तर के फलस्वरूप कुछ साहित्यिकों का भी आगमन होता रहता है। यह एक अलग बात है कि स्थानान्तर के कारण श्री त्रिभुवन चतुर्वेदी जैसे सुधी साहित्यिक को अलवर से दूर भी जाना पड़ा है। श्री चतुर्वेदी अपनी "अधजली सिगरेट" और "क्षमा कीजिए" (व्यंग्यात्मक निबन्धों की पुस्तक) के कारण काफी चर्चित रहे हैं। आपका एक निकाय-गीत सहकारी विभाग द्वारा पुरस्कृत भी हुआ था। अलवर में आयोजित राजस्थान साहित्य अकादमी के उपनिषद् का सफल संचालन भी चतुर्वेदीजी ने किया था।

इसी सत्र में कॉलेज के हिन्दी विभाग में डॉ० गोविन्द रजनीश का आगमन हुआ है। हँसे वदन के रजनीशजी स्वभाव में उतने ही खुले हुए हैं। आपको श्रद्धेय डॉ० रांगेय राघव की निकटता में रहने का अवसर मिला है। डॉ० राघव के प्रति रजनीशजी में गहरा सम्मान है और किन्हीं अंशों में वे उनसे प्रभावित भी हैं। वैसे ही उत्साही व परिश्रमी रजनीशजी हैं। डॉ० रजनीश को 'हिन्दी का फागु काव्य' शोधप्रबन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टरेट प्राप्त हुआ है। आपकी एक आलोचनात्मक पुस्तक "हिन्दी काव्य पिछला दशक" प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी नवलेखन के चर्चित आलोचकों में डॉ० रजनीश का नाम लिया जाता है। अलवर का साहित्यिक वातावरण उनसे बहुत कुछ लिखा ले जायेगा, इसका मुझे विश्वास है।

चेतन पाराशर—

तपाक से मिलने में कभी कंजूसी नहीं करते और गहरी आत्मीयता के साथ बात करते हैं, किन्तु आश्चर्य की बात यह कि उनके निकट के ही मित्र यह न जान सके कि श्री पाराशर सुन्दर कविताएँ भी लिखते हैं। उनका लघु कविता सकलन 'आलोक अंकुरण' जिस दिन प्रकाशित होकर आया और उन्होंने कम्पलीमेन्ट्री कापियाँ दी, तभी यह रहस्योद्घाटन हुआ। अब चेतनजी मित्रों के आग्रह पर कविताएँ प्रकाशनार्थ भेजने लगे हैं। पाराशर में अभिनेता के भी गुण हैं। राधेमोहन राय, अंग्रेजी के प्रवक्ता हैं, किन्तु हिन्दी कविता में हो रहे प्रयोगों के साथ हैं और अपना क्रियात्मक योगदान देते हैं। 'युयुत्सा' व 'उत्कर्ष' में मैंने उनकी कुछ अच्छी कविताएँ पढ़ी हैं। श्री राय कवि

सम्मेलन में भी अपने पुराने गीतों के कारण प्रशंसा पाते है। नयी कविता के समर्थक सशक्त कवि आग्नेय (सागर के) की पत्नी कॉलेज में प्रवक्ता के रूप में आगई है इस प्रकार आग्नेय भी अलवर से जुड गये है। अलवर की गतिविधियो में उनका सहयोग होगा। यह सुखद है। **श्री ओमप्रकाश दर्शन,** प्रवक्ता अंग्रेजी विभाग ने भी कुछ रचनाएँ लिखी है।

कुछ और भी महत्त्वपूर्ण नाम—

अलवर के मैथिलीशरणजी श्री किंकर के सुपुत्र **शिवकुमार शर्मा** सहृदय कवि है। उनके गीत अनेक कवि सम्मेलनों में मैंने सुने है, उनमें से कुछ एक 'सरिता' में भी प्रकाशित हुए है। श्री शर्मा हिन्दी की साहित्यिक पत्रिकाओं के अच्छे पाठक है। नयी कविता में भी अब रुचि लेने लगे है। **रूपनारायण चन्द्रुल** हिन्दी और मेवाती बोली में लिखते है। आपकी हास्य व व्यंग्य की कविताएँ कभी जमेजमाये कवि सम्मेलन को उखाड़ने में और कभी उखडे हुए कवि सम्मेलन को जमाने के लिए नायाब चीज है। "जवानी किसको कहते है", "जूती" आपकी लोकप्रिय कविताएँ है। हाजिर जवाब चन्द्रुल दाँतों के उखड़ जाने के बावजूद आज भी पूरे जिन्दादिल है और नये कथा-साहित्य और कहानी पत्रिकाओं के नियमित पाठक है। कवि सम्मेलनों की हास्य-रस परम्परा के ही एक चर्चित कवि **हरिशचन्द्र दीक्षित** है। **बलवीरसिंह करुण** के गीत भी कभी-कभी कवि सम्मेलनों में सुनने को मिलते है।

कवि सम्मेलन के एक अन्य लोकप्रिय कवि **सूर्य देव बारेठ** है। अपने मधुर कंठ व नाटकीय व्यक्तित्व के कारण श्री बारेठ कवि सम्मेलनों में खूब ही जमते है। आपकी "यह देहली है" "मेजर शैतानसिंह" लोकप्रिय कविताएँ है। श्री बारेठ अपनी सक्रिय राजनीति से साहित्य के लिए इतना समय निकाल लेते है, यह सुखद है, किन्तु अलवर का साहित्यिक वातावरण आपसे अधिक अपेक्षाएँ करता है। नवयुवक एडवोकेट श्री **हरिशंकर गोयल** की रचनाएँ स्थानीय साहित्यि विशेषांकों में खूब छपती है। अन्त मे मुझे एक नाम और याद आ रहा है और वह है कमलेश जोशी का। वे अब कहाँ है ? संभवतः यह एक रहस्य है किन्तु अलवर में एक अरसे तक रहकर उन्होंने यहाँ के साहित्यिक जीवन को गति दी थी। मुख्यतः गीतकार कमलेश जोशी प्रतिभाशाली है। आपका एक खण्ड-काव्य "विभावरी" १९५९ में प्रकाशित हुआ था। 'निशान्त' नाम से एक साहित्यिक मासिक का सम्पादन व प्रकाशन भी श्री जोशी ने कर साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए पुनः पृष्ठभूमि तैय्यार की थी। 'निशान्त' के तीनों प्रकाशित अंक बग्र कत चर्चित रहे थे। अलवर की आज की साठोत्तरी पीढ़ी उनके काफी निकट रही है।

अलवर की साठोत्तरी साहित्यिक पीढ़ी की यह एक झलक हमारे सामने है। यह पीढ़ी अपने उत्तरदायित्वों को पूरी तरह से जानती है और उनके प्रति जागरूक है। अलवर की इस जागरूक पीढ़ी से निश्चय ही अलवर का साहित्यिक इतिहास गौरवान्वित होगा।

शायरी के दौर

जहाँ अलवर की पर्वतमालायें अपनी गोद मे प्राकृतिक स्थलो को, बाला किला अतीत की गाथाओ को और विनय-विलास एवं अन्य प्राचीन महल उन वैभव-शाली राजा महाराजाओ की याद दिलाते है तो अचानक यही कही दीवान-ए खास और दीवान-ए-आम से निकलकर चुपचाप अतीत की शायरी हमारे कानो मे एक मादक इतिहास कह जाती है।

महाराजा शिवदानसिंहजी और महाराजा जयसिंहजी के समय म उर्दू की जो उन्नति हुई उसे राजस्थान मे उर्दू का स्वर्ण युग कहा जावे तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। उर्दू शायरी राजस्थान मे अलवर राज्य म विशेष रूप से पली और उसी का ही प्रभाव है कि आज भी अलवर की जनता मे शायरी के प्रति ममत्व और ललक है। १८५७ प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम का काल, जब मुगल-शासन अपनी आखिरी साँस ले रहा था, उस समय अलवर का राज दरबार शायरो, कलाकारो एव साहित्य-प्रेमियो से जगमगा रहा था। देहली के प्रसिद्ध कवि, शायर, गणिकाये तथा कलाकारो ने राजदरबार को सुशोभित किया। १६५८ ई० तक यहाँ कवि-सम्मेलन और मुशायरे अपने आन बान मे हुए है। बाद मे शायरी एव गोष्ठी कॉलेज तक ही सीमित रही यह बात और है। अलवर मे शायरी, इतिहास की लम्बी सीढियो को पार करने के बाद शुरु होती है। यहाँ का इतिहास प्रतापसिंहजी मे प्रारम्भ होता है और विनयसिंहजी तक आते आते राज्य की नीवें दृढ होती है।

विनयसिंहजी के बाद शिवदानसिंहजी इनके उत्तराधिकारी बनते है। यह युग शृंगारिक-युग था। राजा-महाराजा कचन और कामिनी से मदमस्त थे। इन्ही के शासन के समय मे विभिन्न मुशायरो का आयोजन किया गया जिनमे दूर-दूर के शायर गण यहाँ पर आये। इन्ही शायरो का कलाम आज भी सग्राहालयो एव अजायबघरो की शोभा बढा रहा है जिनका वर्णन आगे दिया जावेगा। इस अमूल्यनिधि का प्रकाशन सन् १६३५ मे महाराजा जयसिह ने तीन उर्दू की पुस्तकें एव देवनागरी लिपि मे करवाया। ये शायर किसी न किसी रूप मे अलवर राज्य से सम्बन्धित थे। स्वय महाराजा जयसिह ने भी अपनी मौलिक रचनाये की जो आज भी शायरी के पन्नो मे चाँद सूरज की तरह चमक रही है। रतनलाल 'अशयार' लिखित 'फसाने ए-आज़ाद' की मूल कृति आज भी अजायबघर मे रखी हुई है, जिसका हिन्दी-अनुवाद मुन्शी प्रेमचन्द ने अपनी पहली हिन्दी-पुस्तक के रूप मे किया था। इसके अतिरिक्त दीवाने कासिम, दीवाने-हाफ़ीज, दीवाने जामी, दीवान अली, बाबर नामा, अकबर नामा की मौलिक हस्तलिखित पुस्तकें भी सग्रहित है। महाराजा जयसिह ने उर्दू मे शेर, गजलें, 'नगमे मस्ताने', 'वहशी' तखुल्लस मे की है। प्रस्तुत है उन शायरो का सक्षिप्त परिचय एव कलाम, जिन्होने इस देवी के मन्दिर मे श्रद्धा सुमन चढाते-चढाते अपना दम तोड दिया।

मिर्जा गालिब—

मिर्जा गालिब के पिता मिर्जा अबदुल्लाबेग हैदराबाद से नौकरी छूटने पर अलवर आ गये। यहाँ उनको सेना मे नौकरी मिली तथा किसी युद्ध मे मारे गये। राजगढ के किले के पास

उनकी समाधि है। गालिब १८६७ में अलवर आये। इन्होंने शिवदानसिंहजी की प्रशंसा में एक फारसी कविता भी लिखी। चूंकि वे आर्थिक कठिनाइयों में बहुत अधिक गुजर रहे थे, इसलिए उन्हें अलवर एवं रामपुर दरबार से १००) रुपये मासिक पेन्शन भी प्राप्त होती थी। वे सूफी सम्प्रदाय से बहुत अधिक प्रभावित थे जिसका पता हमें इन पंक्तियों में लगता है—

जो आकर न जाये, वह जवानी देखी।
जो आकर न जाये, वह बुढ़ापा देखा॥

मजरूह—

ये गालिब के प्रिय और योग्य शिष्य थे। आजीविका की खोज में ये अलवर आये तथा 'मजहर मानी' नामक ग्रंथ रामपुर में ही रहकर प्रकाशित कराया था। इनकी भाषा सरल और मधुर है। इश्क के लिए वे कहते है—क्या हमारी नमाज क्या रोजा बख्श देने के सौ बहाने है?

सालिक—

ये भी गालिब के प्रमुख शिष्यों में रहे है। सन् १८५७ की लड़ाई के बाद अलवर आये, बाद में ये हैदराबाद चले गये होंगे, ऐसा अनुमान किया जाता है। इनकी गजल में भी माधुर्य-भाव बहुत अधिक झलकता है—

ऐतबारे निगाहे नाज है क्या-क्या उनको।
कत्ल को आते है और हाथ मे शमशीर नहीं॥
नही इकबार भी अब सुनने की ताकत दिल में।
पहले सौ बार तेरा नाम लिया करता था॥

स्वामी हंसास्वरूपजी—

स्वामी हंसास्वरूजी को यदि शायरी के इतिहास से हटा दिया जावे तो शेष बचता ही क्या है? उनके गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्त, ईश्वरी प्रेम एवं अध्यात्म जो हमको उनकी शायरी में देखने को मिलता है वह अद्वितीय है। इन्ही के चन्द नगमें पेशे खिदमत है।

आज क्यों नजरें आपकी टेढ़ी सी हैं।
भौंहे चढ़ती हुई वो त्यौरियाँ बेड़ी सी हैं॥
तुम गुनाहों को मेरे दिल में न लादो साहिब।
अब करो माफ़ न सताओ साहिब॥
कत्ल करने की जो ख्वाहिश हो तो सर हाजिर है।
नोक मिजगाँ की तरह जिगर हाजिर है॥

इश्क के सम्बन्ध मे सुनिये—

कही खन्जर कही नेजा तलवार भी है।
इश्क जालिम है, सितमगर है, खूँख्वार भी है॥

महाराजा जयसिंह—

जहाँ महाराजा जयसिंह को हम एक सुदृढ राज्याधिकारी के रूप में देखते है वहाँ हम उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को भी अपनी आँखो से ओझल नहीं कर सकते। आपकी भाषा सरल एव ग्राह्य है। भाषा का माधुर्य, तथा हृदय के सरल भावो का प्रवाह देखते ही बनता है। शेरो, ग़ज़लो एव लोक साहित्य को स्वय ने ही 'चमने वहशत', एव 'अजुमने वहशत' के नाम से उर्दू एव देव-नागरी लिपि मे प्रकाशित की। उनकी भाषा की कोमलता का इस पत्र से पता चलता है। "लोग मुझे फुलवारी वाटिका का बागवान कहते हैं। मुझे इसमे कोई उजर नही, लोग बाग देखने आया करते है बागवान को नहीं। बागवान तो पानी सीचने का मुलाज़िम होना है तो यह भी उसका पेशा उतार लिया। अब तो खुद बागवान को लोग प्रेमरस से सीचना क्या, डुवाने पर आमादा हैं—सीचो, डुवोओ, तुम्हारी मरजी।" उनकी शायरी की दो चार पक्तियो से उनकी शायरी का पता चल सकता है जो वरवस ही पाठक को मदहोश बना देती है—

क्यो खाक कर दिया है दिल को जला-जलाकर।
मतवाला तू बनादे जलवा दिखा-दिखाकर॥
बेहोश हमको करदे सागर पिला-पिलाकर।
इक जाम हमको दे दे साकी बुला बुलाकर॥
बैठे है दिल को थामे, शैदा तुम्हारे हरसू।
सूरत दिखादे अब तो परदा उठा-उठाकर॥
'वहशी' बना हूँ तुझ बिन दीदार होगा किस दिन।
छानी है खाके सहरा मैंने उडा-उडाकर॥

उपर्युक्त शायरो के अतिरिक्त और भी शायर थे जो कि अलवर मे शायरी के दौर मे अपना प्रमुख स्थान रखते थे। इनके नाम हैं जाकिर, जामिन, खलील, मुन्ताज, जौहर, अमीर हसन, मजीद बेगम, मसरूर आदि। इन शायरो की रचनायें आज भी हमारे पास सुरक्षित हैं। 'अजुमने वहशत' नाम के ग्रन्थ मे इन्हीं शायरो की फुटकर रचनाओ का सग्रह किया गया है। लीजिए कुछ इनकी भी बानगी—

(१) साकी कहदे शराब दे दे, महताब मे आफ्ताब दे दे।
वाकी साकी जो कुछ हो ले ले, साकी वाकी शराब दे दे॥

(२) गरदिश मे रखना था ता बनाना था जामे मय।
इसा बनाके क्यो मेरी मिट्टी खराब की॥

(३) गुलशन मे फिरोके सैरे सहारा देखूँ, जामे मय को हो दस्तो दरिया देखूँ।
हरजा तेरी कुदरत के है लाखो जलवे, हैरा हूँ कि दो आँखों से क्या क्या देखूँ॥

ये थे उस युग के शराब और शायरी के दौर। जाम की घूँट, नर्तकी की थिरक और तबले की एक ठुमक के साथ, शायरो की आँखो मे शायरी सुन्दरी उतर आती थी और

यह सुन्दरी उन दिनों राजा-महाराओं के हाथ बिक चुकी थी जिनके शिकन्जों से यह बेचारी इस युग में आकर मुक्त हुई है। अलवर दरबार में यह शायरी मुग़ल-दरबारों से आई जहां इसका हमें प्रारम्भिक रूप देखने को मिलता है।

भारत विभाजन के बाद अलवर में शायरी भी विलग होती सी प्रतीत होती है, किन्तु अभी भी कुछ पजाबी भाइयो में जोश-खरोश बना हुआ है। जून माह में महाराजा जयसिंह की यादगार मे एक विशाल-मुशायरे का भी आयोजन किया जाता है, जिसमें दूर-दूर के शायर-गण भाग लेते है। वैसे अलवर के साहित्याकाश में दो चार शायर-गणों के नाम ही इधर-उधर सितारो मे चमकते हुए दिखाई देते है उनके नाम है श्री अर्जुनसिंह बख्शी, डा० सरदाना, ओमप्रकाश 'दर्शन' आदि।

ये शायर ही, इस प्राचीन शायर की कब्र पर अपनी आँखों से अश्रु-कुसुम टपका-टपकाकर चढाते रहते है और यही उनकी तमन्ना है—

तमन्ना है तेरी अगर है तमन्ना,
तेरी आरजू है अगर आरजू है।
निकल जाये दम तेरे कदमो के नीचे,
यही दिल की हसरत यही आरजू है॥

लोक-साहित्य

वस्तुतः लोक-साहित्य लोक-संपत्ति है। इसी से वह जनता का सच्चा प्रतिबिम्ब भी प्रस्तुत करता है। इसमे सम्पूर्ण समाज का हास-विलास एवं उल्लास-उच्छ्वास, निहित रहता है। निश्चय ही लोक-साहित्य समाज द्वारा, समाज के लिए समाज का होता है। लोक-मानस की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों का सहानुभूतिमय चित्रण, लोक-साहित्य की विशेषता है। लोक-साहित्य की धारा में वर्गभेद, जातिभेद अथवा पदभेद को स्थान नही है। कई अर्थो में लोक-साहित्य कृत्रिम साहित्य का जन्मदाता कहा जा सकता है। मिस्टर सिजविक का कहना है कि "It is older than literature, older than alphabet. It is lore and belongs to the illiterate." रुचिभेद से लोकभावना, जो पैतृक थाती है, विविध रूपों में व्यक्त होती है। कही कही लोक-वार्ताओं मे, कही गाथाओं में, कही कथाओं में तो कही गीतों में। लोकगीत सामान्य जन की भावना की अभिव्यक्ति का सरलतम, सुगम, एवं संगीतात्मक साधन है।

सच्चे काव्य मे मानव-जीवन का निष्कपट अभिव्यंजन होना चाहिए। इस प्रकार के साहित्य मे सर्वत्र समानता प्राप्त होती है। अलवर जिले में लोक-गीत साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। इसका प्रसार एवं विस्तार इतना फैला हुआ है कि जीवन का कोई भी पक्ष, भाव या क्रिया ऐसी नही जो गीतिमय न हो। लोकगीत जीवन के साथ घुले मिले रहते है। व्यक्ति कैसी भी, किसी भी परिस्थिति मे हो वह कुछ न कुछ गुनगुनाता रहता है। वस्तुतः लोकगीत मानव जीवन के प्रत्येक क्षण का भावभरा संगीतात्मक आलेखन है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त

इन्ही गीतो मे पलता रहता है। विभिन्न अवसरों, तिथि-त्यौहारो, मेलो ठेला एव उत्सवो के अवसर पर वसतागम पर कूकने वाली कोकिल की तरह सहस्त्रो नारी कण्ठो मे जीवन राग फूट पडता है। जिले के प्राप्त लोकगीतो को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित कर सकते हैं—

लोकगीत वर्गीकरण—

(१) सस्कार गीत (२) धार्मिक गीत (३) त्यौहार गीत (४) ऋतु गीत (५) सामाजिक गीत (६) कृषि गीत (७) राजनीतिक चेतना के गीत (८) दोहा (९) बिरहडा (१०) पद (११) रतवाई (१२) अनमिल (१३) जस (१४) विविध।

लोकसाहित्य रूपी सागर म अनगिनत लोकगीतो की मणियाँ छिपी पडी हैं। लोकगीत एक अमूल्य मणि है। इसका मूल्याकन करना कठिन है। इन गीतो मे सस्कार सम्बन्धी गीतो का प्राधान्य है। यहाँ हम स्थानाभाव के कारण, जिले मे प्राप्त सभी प्रकार के लोकगीतो का विवरण नहीं दे सकते। यहाँ 'सस्कार सम्बन्धी' गीतो की भाकी प्रस्तुत करना ही हमारा ध्येय है।

सस्कार गीत विभाजन—

सस्कार गीतो को मुख्य रूप से ३ रूपो मे वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) पुत्र जन्म सम्बन्धी।

(२) वैवाहिक सम्बन्धी।

(३) मृत्यु गीत या हरजस सम्बन्धी।

(१) पुत्र-जन्म सम्बन्धी गीत—प्राय सम्पूर्ण देश मे ही पुत्र-जन्म एक उत्सव होता है, जबकि पुत्री-जन्म एक शोक। यद्यपि पुत्री सम्बन्धी विचारधारा मे अब परिवर्तन आने लगा है, फिर भी लोकमानस तक पहुँचते-पहुँचते इस विचारधारा को काफी समय लग जावेगा, अत पुत्र जन्मावसर पर अनेक प्रकार के गीत गाये जाते हैं जैसे—ओजण (दोहद), जामणा, स्यावड, छठी, पीला (कूआ पूजन), जच्चा आदि।

(२) वैवाहिक गीत—भारतीय जीवन मे विवाह का कितना महत्त्व है, यह रहस्य नही है। विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत भी अनेक अथाह है। वैवाहिक प्रत्येक सस्कार या विधि पर, बल्कि कदम-कदम पर लोकगीतो का जाल बिछा है। कुछ प्रमुख अवसरो पर गाये जाने वाले गीत निम्न प्रकार हैं—सगाई के गीत, लगन, हल्दातवान, बनडा, भात, चाक, बनवारा, जनेऊ, निकासी, सेहरा या सलाम, रतगा, फेरा, कँवर कलेवा, सीठणा, पहरावणी, बिदाई, नौमी उतारना, गृह-प्रवेश, सेढ-चौरा पूजन, जूआ आदि।

(३) मृत्यु गीत—अवसर मृत्यु-सस्कार के गीत वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर ही गाये जाते हैं। जवान व्यक्ति की मृत्यु पर गीत न गाकर, उसके गुणो का बखान रुदनात्मक ढग से किया जाता है। मृत्यु गीतो को 'हरजस' कहते है। इस अवसर पर अनेक नीति एव धम कम सम्बन्धित गीत

पीलो तो ओढ़ म्हारी जच्चा सरवर चालो जी ।
कोइ सारै सहर सराई गाडामारू जी ।। पीलो रंगादयो जी ।।
कोण्या की तो सायबा कुल वधु कहिये जी ।
कोई कोण्या की भरनारी जी ।।

(४) खतना—अहिंदु जातियों (मुसलमान, मेव, सैय्यद, पठान आदि) में 'खतना' संस्कार सपन्न किया जाता है। बच्चे के कुछ बड़े हो जाने पर, नाई द्वारा तेज उस्तरे से, घड़े पर बैठा कर उसकी मूत्रेन्द्रीय के ऊपर का अतिरिक्त चम काट दिया जाता है। उपहार स्वरूप नाई को एक रुपया दिया जाता है तथा परिवार-पड़ोसियों में अनाज, गुड़ आदि बाँटे जाते हैं। साथ ही मेव नारियों का कल-कण्ठ कूजने लगता है—

बंधो दीन को सेहरो हुये मुसलमान रै।
नाईडो मेरो भाईडो, उस्तरो होस्यार रै।।
काई को तेरो उस्तरो, काई की बगडोर रै।
जै तू चूका उस्तरो हिन्दू मुसलमान रै।।

मुझे वे दिन याद आते हैं जब क्षेत्र-कार्य के दौरान मेवात का भ्रमण करते हुए मैंने अनेक मेवणियों को गाते सुना था। उस समय यह कथन—'गाणो मेवणी को, कमाणो जाटणी को तथा रोणो खानजादी को' साकार हो उठा था। मेवों की 'रतवाई' तो अपना सानी ही नहीं रखती।

विवाह-सम्बन्धी गीत—

(१) सगाई—विवाह संस्कारों में 'सगाई' सब प्रथम संस्कार है। इसे 'टीका' भी कहते हैं। इस दिन वर-पक्ष के घर कन्या-पक्ष का नाई या ब्राह्मण 'पीठ नारियल' लेकर जाता है। सायंकाल गांव के, पास-पड़ोस के व्यक्ति इकट्ठे होते हैं। लड़के (वर) को एक पट्टे पर बैठाकर नाई या ब्राह्मण उसके माथे पर रोली-चावल लगाकर तिलक करता है। उसकी झोली में 'पीठ नारियल' डाल दिया जाता है। इस अवसर पर निम्नलिखित गीत गाया जाता है—

कैठया सै आया सै नारेल, कठया से आया जी म्हारा—
गाहडमलका सूरजमलका बीडला जी वा जी राज।

(२) हल्दातवान—हलदातवान को 'बान' या 'तेलबान' भी कहते हैं। सगाई के बाद 'लगन' आता है। लगन में 'लगन-पत्र' या 'लगन-पत्री' आती है, जिसमें विवाह की तिथि, वार आदि लिखे होते हैं। इसमें लड़के एवं लड़की के 'हलदानवान' का भी विवरण होता है। लड़के के हलदानवान ज्यादा दिन के होते हैं जैसे—९, ७, ५ दिन तथा लड़की के कम होने हैं जैसे—५, ३ दिन। इस दिन लड़के को तेल चढ़ाया जाता है। इस अवसर पर उबटन लगाया जाता है। अलवर के मेवाती क्षेत्र में निम्नलिखित गीत गाया जाता है—

आ मेरी मायड देख लैं, बालो भोलो बैठयो उबटणैं।
तोहे देखत सुख होय, बालो भोलो बैठयो उबटणैं।।

काहीं को तेरो उबटणों, काहीं को तेरो तेल।
गीहूं चणा को उबटणो, राह चमेली को तेल ॥……

और अहीरवाटी या राठी बोली क्षेत्र का भी एक नमूना देखिए—

काय कटोरी में उबटणो, काद कटोरी में तेल,
राज्जादो बैठ्यो उबटणै, हरियालो बैठ्यो उबटणै।
सोन कटोरी में उबटणु, रूप कटोरी में तेल, रायजादो बैठ्यो उबटणै,
मैल झड़े अड़ में पड़ै रूप चढ़े बैंकी देह, सूरजमल बैठ्यो उबटणैं।
आवो मेरी दादी, मायड़, ताई देखल्यो, थम देख्यां सुख होय ! हरियालो ॥……

(३) चाक पूजन—बारात जाने के एक दिन पूर्व 'मेल-मंडप' का कार्य किया जाता है। बन्धु-बांधवों को खाना खिलाया जाता है। इसे 'जीमणवार' कहते हैं। कन्या पक्ष में मण्डप या मांडा खड़ा किया जाता है। सायंकाल स्त्रियां सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर 'चाक-पूजने' कुम्हार के घर जाती है। इस अवसर पर 'बनड़ा' गाया जाता है। एक गीत की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

जी बनां, सूरज उग्योजी राज,
ओजी थारै महलां में हुयो ए उजास. नवल बना वार्‌यां जी राज।
जी बन्ना वार्‌या सिंगारया जी राज।
ओजी थारा देसां में हुयो ए उछाव, नवल बना वार्‌यां जी राज ॥……

(४) भात—इधर 'चाक-पूजन' हुआ उधर भात लेकर 'भातई' आ जाते हैं। वर-कन्या दोनों पक्षों में 'भातई' आता है। ये लड़के-लड़की के मामा होते हैं। कहीं-कहीं 'बड़ भातई' भी आते हैं। ये लड़का-लड़की के पिता के मामा होते हैं। 'भातई' की स्वागत की तैयारी में लड़के-लड़की की माँ लग जाती है। 'भातई' कुछ रुपये, वर या कन्या के वस्त्रादि लाते है। बहन (वर या कन्या की मां) को चूंदड़ी ओढ़ाते है। इस अवसर पर करुणा भरे, मर्मस्पर्शी एवं भावभीने गीतों की स्वर-माधुरी गूंज उठती है—

ऊँचा तो घर की पोल माई जाया, नीचा रै घर को बारणु।
घमसाल ऊबी जोऊं बाट, ओजूं ऐ ना आया मेरा भातई ॥
तैं कित ल्याई वार, जामण जाया सारा रै पहलै वीरा न्यूतियो।
तेरी भावज ल्याई वार जामण जाया अपना ए कंवर सींगारतां ॥……

भातइयों की अगवानी का वह मर्मस्पर्शी दृश्य देखते ही बनता है। बहन-भाई के इस उत्तान्दम्भ भरे मधुर-मिलन की पवित्र वेला में कौन सहृदय द्रवित नहीं होगा।

(५) बनवारा—'बनवारा' का भी अपना विशेष स्थान है। अलवर जिले में प्रायः सभी जाति एवं वर्गों में यह रिवाज प्रचलित है। इसमें 'नौसे' (वर) के सम्बन्धियों के द्वारा उसे

अच्छा भोजन करवाया जाता है। नौसे को 'ल्हासी' (दुपट्टा) का 'चदोवा' के नीचे चार सुहागिन औरतें, उबटन लगाकर, स्नान करवाकर खाना खिलाने ले जाती है। रात्रि को वर को गाव के पहले चौराहे या 'परस' पर पूजन के लिए ले जाया जाता है। उस अवसर पर गाये जाने वाले एक लोक गीत का नमूना देखिए—

मैं तोय बूझू मेरा सुगड बना तेरो बनवारो रै किन नै नौतो।
भाई मेरो राजा भावज राणी होय, मेरो बनवारो उननैं नौतो॥

(६) जनेऊ—हिन्दुओ (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्यादि) मे 'जनेऊ' (यज्ञोपवीत) सस्कार भी मनाया जाता है। इस दिन वर को ब्रह्मचारी बनकर 'मूज' का जनेऊ धारण करना पडता है। इस समय हवन होता है। गुरु शिष्य (वर) को 'मत्र' (जो प्राय गुप्त रखने हेतु कान मे दिया जाता है। परन्तु अधिकतर गायत्रिमत्र को गुरु-मत्र की बिछ्या (भिक्षा) के रूप मे देते है। और उधर मधु स्वर-लहरी फूट पडती है—

(अ) ब्राह्मण को बेटो जी कै काशी जी पढण चल्यो।
वैकी दादी ताई बरजै जी कै बेटा यहीं पढो॥

(आ) मूज की जनेऊ तेरो दादो जी पहरावे जी, ताऊ, जलहर जी पहरावै जी।

(७) मौड (सेहरा)—जनेऊ के बाद दूल्हे को भातई (मामा) के द्वारा लाये गये गुलाबी वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसके सिर पर मौड (सेहरा) बाधा जाता है। इस सस्कार को हिन्दू मौड तथा मुसलमान (मेवादि) 'सेहरा' कहते हैं। इस अवसर पर यह गीत गाया जाता है—

नो रग लाग्या लाडा सेहरा, तेरे म्हा आच्छा लाडा सेहरे।
लागा सै बहोत बियाणजी, नो रग लाग्या लाडा सेहरे॥
कैठ्या की मालणी और कैठ्यै बधीए खिजूर। नो रग
गढ तिलडी की मालणी और मेरठ बधीए खिजूर जी॥
आटी तो लागी सूत की, पार अठा रहा पाट जी। नो रग
सोनु तो लाग्यो सोहणु रूपा को अत न पार जी॥ नो रग

(८) निकासी—'निकासी' को 'घुडचढी' भी कहते है। जनेत (बारात) चढने से पूर्व 'निकासी' सम्पन्न होती है। एक सजी हुई घोडी पर दूल्हा बैठ जाता है। उसी घोडी पर उसका छोटा भाई या भतीजा 'बिन्दायक' (बिनायक) के रूप मे बैठाया जाता है। पीछे पीछे बहन 'आरता' की थाली लेकर चलती है। इसमे घी का दीपक जलाया जाता है। इस शुभावसर पर 'बदडा' गाया जाता है—

(अ) चचल घोडी चालणी मथुरा सू आई।
ले मेरे काका मोल की तेरी होय बडाई॥
आगै नौसा ताडलौ पीछे दल भारी। चचल घोडी ॥

(आ) अनोखा लाडला हो राईभर मजलां-मजलां चाल।
धूप पड़े धरती तपै हो राईभर, तपै लखीणी बरात ।। अनोखा……

(९) रतगा या खोड़िया (रात्रि जागरण)—निकासी निकालने के बाद बारात मारकसों (रथ, बहली, ऊँट आदि) में या मोटर-बस आदि में कन्या-पक्ष वालों के घर चली जाती है। वर-पक्ष में रात्रिजागरण (रतगा) होता है। यह दो बार होता है—बारात के जाने के बाद तथा लौटने के बाद। इस अवसर पर स्वांग आदि नाटक किये जाते हैं। प्रायः विवाह संबंधी रूपक ही स्त्रियां खेलती हैं। एक सुन्दर सी स्त्री वधू बनती है तथा दूसरी स्त्री वर बनकर वर-वधू का नाटक करती है। साथ की साथ मधुर-मनोरंजक गीत भी गाये जाते हैं—

ज्यानी घूम घूमन्तो घाघरो ग्रौर कड्यां रसकता खेस।
ज्यानी सूतां तो सूतां तड़को ह्वै गयो, ग्रौर जागी जीवा जूण।
ज्यानी बड़ा ए जेठ के रतजगो ग्रौर उतरे जगाई सारी रैन।
गोरी ना तेरा हाथां मंहदियाँ ग्रौर ना तेरा नैणा नींद।
देवर धोय उतारी मंहदियाँ ग्रौर सोय गमाई नींद।………

(१०) फेरा—बारात के कन्या-पक्ष वालों के यहाँ पहुँचने पर पहले 'पेशवाई' की रस्म अदा होती है। पेशवाई में रुपये या ऊँट (बोतड़ा) भेंट में देकर बारात का स्वागत किया जाता है। बारात 'जनवासे' में पहुँचती है। वहाँ पर थोड़ी देर में 'गोरवा' लिया जाता है। इस अवसर पर भी रुपये आदि वर को दिये जाते हैं। इसके बाद वर, कन्या को दर्शन देने 'बारोठी' पर जाता है। वहाँ कन्या के द्वार पर उसका तिलकादि एवं मिष्ठान खिलाकर स्वागत किया जाता है। अपनी सखियों में छिपी-छिपी कन्या वर को निहार कर प्रसन्न होती है। इसके बाद बारात तो जनवासे में लौट जाती है, परन्तु वर को मण्डप (मांडा) के नीचे फेरों के लिये ले जाया जाता है। 'फेरे' विवाह संस्कार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रस्म होती है। अहिन्दुओं में 'निकाह' पढ़ी जाती है। फेरे में वर के बैठ जाने पर मंत्रोच्चार के साथ पुरोहित हवन करता है। इसके बाद कन्या को बुलाया जाता है। कन्या का मामा उसे गोद में उठाकर लाता है तथा दूल्हे के दांई ओर बैठा देता है। फेरे होने पर कन्या बांये अंग बैठ कर यथार्थतः 'वामांगी' बन जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में से कुछ की झांकियां देखिए—

गढ छोड़ रुकमण बाहर आई, करै ये दादा जी सैं बीनती।
मैं तो क्यूंकर आऊँ मेरा राय दूलहा मामाजी फूफाजी बैठ्या उचोढ बारनै।
थारा मामाजी रा नौकर रहस्यां थारां फूफाजी रा गुण दास रहस्यां।।
बाहर आग्रो राणी रुकमणी।

लोकगीतों की इस पवित्र देव सरिता की रस-माधुरी को सुनकर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसके कर्ण-पुट स्नेह-स्निग्ध नहीं हो जाते हों। इसके बाद फेरे आरम्भ होते हैं। शास्त्रोक्त

रीति से वचनादि भर कर वर-कन्या फेरे लेते है। निम्नलिखित लोकगीत मे जैसे शास्त्रीय परम्परा को गूथ कर प्रस्तुत कर दिया गया है—

पहलै फेरे दादा की पोतियाँ, दूजे फेरे ताउ की धीयडिया।
तीजे फेरे जलहर की धीयडियाँ, चौथे फेरे बीरा की बाहणलिया।
पचम फेरे मामा की भाणजियाँ, छठे फेरे फूफा की धीयडिया।
सातवें फरे हुई ये पराईयाँ।

(११) कवर कलेवा—फरे हो जाने के बाद दूसरे दिन 'कँवर कलेवा' होता है। वर के साथ उसके कुछ मित्र, छोटे भाई या भतीजे 'कलेवा' करने जाते हैं। इस अवसर पर चावल बनाये जाते हैं। 'वर' का खाना प्रारम्भ करने के लिए कुछ रुपये आदि दिये जाते हैं। इस समय प्रस्तुत लोकगीत नारीसमूह की जिह्वा पर थिरकने लगता है—

चावल राधू ऊजला, बिर हरा ये मूगा की दाल।	
कवर कलेवा हूँ रह्यो।	
बिर माडा झोलू रिमझिमा, बिर तीखण तीस बत्तीस।	कवर
बिर बीजावर को बीजणू, बिर शेरपरा को थाल।	कवर
बिर जीमत निरखु आगली, बिर बोलत सुगणी सी जीभ।	कवर
बिर मूगफली सी आगली, बिर जीभ कवल को फूल।	कवर

फेरे के बाद 'वर' कन्या पक्ष मे 'जवाई' की सज्ञा पाता है। 'कवर कलेवा' के समय कुछ 'जवाँई' भी गाये जाते है। ये सीठण भी कहलाते हैं। इनमे से एक जवाँई गीत यहाँ प्रस्तुत है—

माज्या धोया थाल, परास दिया भात जी।
आओ-आओ राज्जी बैठो म्हारँ पास जी।
बैठो म्हारँ पास बताओ थारी जात जी।
बाप म्हारो मालजादो माय छिदाल जी।
भूवा म्हारी भगतण भडवा रँ साथ जी।
वाह जी नाचण का जाया भली बनाई जात जी।

(१२) बढार—सायकाल से पूव 'बढार' का समय होता है। वस्तुत यह दोपहर का भोजन होता है। बढार के समय 'सीठणे' दिये जाते हैं। 'सीठणा' एक प्रकार की मधुर, उपालभपूर्ण, सगीन-मय गाली होती है। वर बरातियो एव समधी को दिये जाने वाले सीठणो के नमूने द्रष्टव्य है। मेवाती क्षेत्र मे प्रचलित सीठणा—

कामा का बाग मे कामसाई बेल, या नौसा की बहना खान गई बेर।
या बरातियान की बहना खान गई बेर, मीठा २ खा गई खाटा गई बखेर।
लाला वाह-वाह रे, लाला वाह-वाह रे।

'समधी' या 'व्यायीजी' को लेकर गाये जाने वाले गीत अत्यधिक मनोरंजक होते हैं। दक्षिणी अलवर के माल्हावेड़ा क्षेत्र में यह गीत प्रचलित है—

(१) व्याई जी री लोठी माल्लजादी जी असल में हमारी व्यान जी।
भीतर माड्या माडला बाहर मड्या मोर,
व्याई जी तो सो गया व्याण नै ले गया चोर।

(२) व्याई जी की लोठी लाडली म्हानी धोती वारी मंदर जाती,
मदिर का पूजारी रखो लाज हमारी जी।

(१३) पहरावणी—बढार के बाद 'पहरावणी' का अवसर आता है। इस अवसर पर वर-पक्ष की ओर से कन्या के लिए सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणादि दिये जाते हैं। वर का पिता या बाबा (दादा) कन्या की गोद भरने जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत का नमूना द्रष्टव्य है—

(१) म्हारा श्री राम करवा पल्याणा जै जै मेवाल्यो।
मेवाती मेवा ल्याया जै जै मेवा ल्यो।

(२) पहरावणी सजन मिलावणी।
तो करना जी श्री रामजी रा पूत कर लीछमन पहरावणी।

(१४) विदा—विदाई-वेला का दृश्य हृदय-द्रावक होता है। पिता-घर से जाती हुई कन्या को देख कर मुझे महर्षि कण्व के वे शब्द याद आ जाते हैं जब वे कहते हैं कि—'यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयम्' जब एक बैरागी का ही मन इतना दुखी हो जाता है तो गृहस्थी के मन पर क्या गुजरती होगी? विदाई के क्षणों का वर्णन नहीं किया जा सकता। 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'

दादा के पीछवाड़े री तुलसां या तुलसां कण निरदली।
आयगो नाचण को री जायो या तुलसां उण निरदली।

विदाई के क्षणों की वेदना का अनुभव करती हुई कन्या अपने परिवार वालों को धैर्य दिलाती हुई कहती है—

धीरै मेरा दादा धीरै भी रहियो, आज की रैन पहर दोय चार।
धीरै मेरा ताऊ (सल्हर, चाचा, मामा) धीरै भी रहियो, आज की रैन पहर दोय चार।
अपणो कटक मैं ले उतरूँगी पार, थारो नगर सुबस बसो।

कन्या, परिवार वालों से विदा होकर बहल में बैठकर चल पड़ी। माता का हृदय यह देख कर फफक पड़ा—

कोटनला कै बाड़ै की चलीए बहलड़ी जी, देख बीनूरै मायड़ी जी।
तूं क्यूं बीनूरा मेरी जनन दीवानण जी, जायां को फल आज जी।

के हम आवा री अम्मा भावज कै जापै जी के हरयाली तीज।
बाग तला के बाईं की चनी ए वहलडी, कोयल सबद सुणायो जी।
तू क्यू बोला ए म्हारी काली सी कोयल, छाड्यो बावाजी रो देस जी।

शायद शकुन्तला ने भी अपने पिता कण्व का यही कह कर धैर्य दिलाया था। परन्तु सखियों के हृदय पर क्या गुजर रही है यह केवल पक्ति से ही स्पष्ट हो जायेगा—

'साथण चाल पडी मेरा डब डब भर आया नैण।'

नेत्रो का डबडवा जाना ही उनके हृदयगत भावो का दर्पण है।

(१५) नौमी या वदडी उतारना—वधू वर के घर पहुँचती है। उसकी अगवानी के लिए नारियों का समूह उमड पडता है। फिर उसे रथ या मोटर आदि से उतारा जाता है। बडे सत्कार के साथ उसे घर की ओर ले जाया जाता है। रास्ते मे औरतें पचम स्वर मे गाने लगती हैं—

(१) *बहू सीता पूत भला जण्या और के अरजन के भीम,*
टोडारमल जील्या जी।

(२) इतनै सामड पाणी नैं जाय इतने वहूए गिदोडा खाय।
इतनै सास बलाई जाय, इतने बहूए मनाद खाय।
आ मेरी सासड सास ले मैं पीमू तू कान ले।
आ मेरी सासड सूत ले मैं आई तेरी धून ले।

(१६) बार गुटाई—इतने मे घर का द्वार आ जाता है। वहन द्वार रोक कर खडी हो जाती है। वह 'नेग' लेकर ही गृह प्रवेश करने देगी। इसी बीच वह 'जूडा' (जूआ) तथा 'नेता' (दही बिलौने की रस्सी) से वर वधू को नापती है। इस अवसर पर यह गीत गाया जाता है—

नेनडिया वहू नेनल्यो, सूतडिया बहू सूतल्यो।
पीपल पान पनामडिया, आ मेरी सासड सास ले।
गैर गडी बहू गैर गडी, सासू छोटी बहू ए बडी।

(१७) मैड मैया—गृह-प्रवेश के दूसरे दिन 'मेड-मैया धोकने जाना पडता है। इसे 'दई देवता' पूजन भी कहते हैं। पूजन के बाद *'साटकी' खेली जाती है। इस अवसर पर मैया* (भोमिया, भैरव) के गीत गाये जाते हैं। साथ ही गणेशजी, हनुमानजी, श्यामजी आदि के गीत गाये जाते हैं। गैर हिन्दुओ के यह प्रथा नहीं है। एक गीत देखिए—

हाथ घडो सीलीमेट को मींचै म्हारै श्री राम जी की माय।
लिछमन की माय, हनुमान की माय, ठाकुर जी की माय।

(१८) जूआ—सेढ-मैया पूजन के बाद घर लौटने पर वर-वधू को वर का जीजा या भाभी जूआ खिलाती है। पानी भरे मिट्टी के वर्तन (कूंडा) में हल्दी की गांठ, चांदी की अंगूठी तथा कुछ पैसे डाल कर जूआ खिलाया जाता है। इसी अवसर पर 'मुट्ठी खोलनी' भी पड़ती। 'कांकन डोरा' भी एक-दूसरे के पैर से खोला जाता है। इसी बीच एक गीत फूट पड़ता है —

काली गोरो मतो उपायो बाधी काकरण डोरी रै। वरणखण्ड का राजा लोरी रै।
काली गोरो व्याहरण चढग्या सारस की सी जोडी रै। वनखण्ड का.................।
काला के तो गोरी आई, गोरा कै तो काली रै। वनखण्ड का.................।

इसके बाद सायकाल वर-वधू को एकान्त दे दिया जाता है। दो अजनबी दो तन एक प्राण हो जाते हैं।

इस तरह अलवर जिले के संस्कार गीतो मे जीवन की सादगी, सारल्य एवं मधुरता कूट-कूट कर भरी हुई है। न जाने कब से लोक-जिह्वा पर थिरकते ये गीत जनता के कण्ठहार बने हुए हैं।

दोहे मेवात के—

वावल तेरा देश में इक बेटी इक बैल।
हाथ पकड़ कर दीनी जावां परदेशी की गैल ॥१॥

गोरा मुँह पे तिल घणा नारंगी नैणा।
गोरी तेरा रूप पे मोहे वैरागी होणां ॥२॥

खेत पिरायो पक गयो, मारन लग्गी भूर।
हाथ चलायो वाल नू, खेत सरकगो दूर ॥३॥

पीपल नूं कीकर बड़ी, वासूं बड़ी खिजूर।
वामे चढके देखलो, मेरो पीहर कितनी दूर ॥४॥

गीहूँन की कोठी भरी खपरो खायो जाय।
वावल तेरा देस मे मेरो पिया चरणा की खाय ॥५॥

सब तन उजलो क्वार में जैसे सिकल करायो सेल।
लिपटी रहूँ सरीर के पीछे, जैसे नागर वेल ॥६॥

जली जलाई मैं जलूँ, और जलावै धूप।
परछाई लेती फिरूँ, मेरो सारो जलगो रूप ॥७॥

पीपल तो पतझड़ हुयो, गूलर गदराई।
कहियो नणदी वीर नूँ, मोहे ज्वानी चढ़आई ॥८॥

कालो हूँ रे नाहिवा, मोहे कालो करके राख।
माँ वापन की लाडली, मोहे न्यारी करके राख ॥९॥

कीकर काटी मूल सू, टाली थर्राई।
कहियो नणदी बीर सू मैं अब रन पे आई ॥१०॥

बदन अँगीठी लग रही, मिलण मिलण धूँधाय।
ऐसो कोई ना मिले, जो फूँक दिये जल जाय ॥११॥

वाट जोहनी मैं रही, जोबन मे भरपूर।
मिलगत छोडी माह मे जैसे विणजारा की पूर ॥१२॥

तनक सरक तो सू कही, कहा हठ पडगो तोय।
कालो तज दे कांचली, पीया ऐसे तजगो मोय ॥१३॥

निदरा पथरा ना गिणैं, भाजन गिणे न भूक।
निरिया नानो ना गिणे, जब उठे विरह की हूक ॥१४॥

साले हैं हाले नही, ऐसी लगी कलेजे फाँस।
जिनका प्यारा बिछटगा, उनपे लोही चढे न मास ॥१५॥

सदा ज हँसकै बोलता, रहा ज गल का हार।
उनकी सूरत सुपना हो गयी, दिन में मिलना
जो सो सो बार ॥१६॥

कै कोई कडकी विजली, कै अरजन को बाण।
कै कोई कोई जोधा भिडा, कै फाट गया पाखाण ॥१७॥

दत वितमू तेगा भुगा भूप रहा वल खाय।
इन मे कायर कौण सो, जो पीछे कू हट जाय ॥१८॥

कै कोई लडे लडायनो कै कोई लटे अजाण।
हिम्मत वालो आदमी, ढहा देस पाखाण ॥१९॥

ना कोई कै संग चली, ना कोई करो निहाल।
पडा रहेगा 'भीखजी' मरदूदन का माल ॥२०॥

दो गोरी दो सावलो, दो बिरहल दो बाभ।
इन पे जोबन जब चढै, जब होती आवै साभ ॥२१॥

नाही पाल समन्द की, नाही गारो कीच।
तू हसा कैसो भयो, फिरे जो परभत बीच ॥२२॥

ना अपणाँ को काज है, ना अपणा सू हेत।
अरजन भुम्भ पिछाण ले, हीन रचे कुर खेत ॥२३॥

फूटा मोती ना जुडे, ना दूध फटे घी होय।
जिनका तन कटगा, मन फट गया, उन पर
आदर कैसे होय ॥२४॥

अपणी अपणी अक्ल मे, कमती ना है कोय।
उनकी करणी रम रहे, जिनके मुगड मलाही होय ॥२५॥

भाषा और बोलियाँ

अलवर जिला : सीमा क्षेत्रफल एवं जनसंख्या—

अरावली पर्वत-श्रेणियों के मध्य स्थित अलवर जिले का अपना विशेष स्थान है। अनेक कारणों से यह राजस्थान का प्रवेश-द्वार कहलाता है। राजस्थान का सीमान्त जिला होने के कारण यहाँ की भाषा एवं साहित्य का भाषावैज्ञानिक एवं साहित्यिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है।

इसकी सीमा के उत्तर में जिला गुड़गावा (हरियाना), दक्षिण में जिला जयपुर, पश्चिम में जिला महेन्द्रगढ (हरियाना) तथा पूर्व मे जिला भरतपुर तक विस्तार है।

अलवर जिले का क्षेत्रफल लगभग ८ हजार वर्ग किलोमीटर है। यह चार उपविभागों—अलवर, वहरोड, राजगढ, तिजारा एव ९ तहसीलो—अलवर, किशनगढ, तिजारा, बानसूर, वहरोड़, राजगढ, थानागाजी, मुंडावर एवं लक्ष्मणगढ में विभक्त है। सन् १९६५-६६ ई० तक जिले मे १९४२ नगर एवं ग्राम थे।

सन् १९६१ ई० की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार यहाँ की जनसंख्या १०९०००० थी। इसमे अकेले अलवर नगर की जनसंख्या ७२७०७ थी। जिले की विभिन्न तहसीलों मे क्रमशः निम्नलिखित जनसंख्या थी—अलवर–२२८०००, वहरोड़ १३४०००, बानसूर ७८०००, लक्ष्मणगढ १८४०००, राजगढ़ १२७०००, थानागाजी ७१०००, किशनगढ़ १०२०००, तिजारा, ७९०००, मुंडावर ८७०००।

अलवर जिला : बोली-भाषा—

भाषावैज्ञानिकों के अनुसार अलवर जिले मे शौरसेन प्राकृत (शौरसेनी अपभ्रंश) से उत्पन्न भाषा का प्रचार था। इसकी वर्तमान बोली पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी) की ही पुत्री है। आजकल इस जिले में चार बोलियो का प्रचार है। पूर्व में व्रज, पश्चिम मे अहीरवाटी, उत्तर मे मेवाती तथा दक्षिण में ढूंढाड़ी प्रचलित है, परन्तु विशेषतः अलवर जिले में दो बोलियों का प्राधान्य है—मेवाती एव अहीरवाटी। व्रजभाषा का प्रभाव लक्ष्मणगढ तहसील में तथा ढूंढाड़ी का प्रभाव राजगढ़, थानागाजी एवं बानसूर तहसीलों मे देखा जा सकता है।

अलवर : बोली-सीमा, नामकरण, वर्गीकरण—

अलवर की बोली के पूर्व मे भरतपुर एवं पूर्वी गुड़गाव की व्रजभाषा, दक्षिण मे जयपुरी की डांग या ढूंढाड़ी उपबोली, उत्तर मे पश्चिमी गुड़गावा की अहीरवाटी, दक्षिण-पश्चिम मे जयपुरी की तोरावाटी उपबोली एवं उत्तर-पश्चिम मे नारनौल तहसील की मिश्रित बोली प्रचलित है। प्रधानतः अलवर जिले की बोलियाँ अपनी सीमाओ पर बांगरू, व्रज एवं जयपुरी से प्रभावित होती रही है।

डॉ० केलाग के अनुसार जयपुर के उत्तर-पूर्व में स्थित जिला अलवर की बोली को 'अलवरी' कहते हैं। डॉ० ग्रियर्सन इसे उत्तर-पूर्वी राजस्थानी कहते हैं, जिसमें मेवाती एवं अहीरवाटी—दो प्रमुख बोलियाँ बोली जाती हैं। उनके अनुसार अलवर में बोली जाने वाली बोली के चार रूप मिलते हैं—यथा—

	बोली भेद	वक्ताओं की संख्या
१	खड़ी मेवाती	२५३८००
२	राठी मेवाती	२०२२००
३	नहड़ा मेवाती	१६९३००
४	कठर मेवाती	११३३००
	योग	७९८६००

उपर्युक्त विभाजन से स्पष्ट है कि डॉ० ग्रियर्सन ने अलवर जिले में बोली जाने वाली मेवाती के उपभेद किये हैं। हमारे मत में अलवर जिले में मुख्यतः ३ बोलियों का प्रयोग है।

१ मेवाती।
२ अहीरवाटी।
३ जयपुरी (ढूंढाड़ी)

मेवाती—

यह अलवर के मेवात क्षेत्र की बोली है। यों तो मेवाती की सीमा गुड़गांवा एवं भरतपुर जिले तक विस्तृत है, पर अलवर में यह किशनगढ़, तिजारा, अलवर, लक्ष्मणगढ़ तहसीलों में बोली जाती है। गजेटियर के अनुसार तिजारा मेवात की राजधानी है। परन्तु मेवात का केन्द्र अलवर ही है। लक्ष्मणगढ़ तहसील की मेवाती पर व्रजभाषा का प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ तक कि कठूमर एवं गोविन्दगढ़ क्षेत्रों में तो व्रजभाषा का ही प्रचलन है। मेव लोगों की बोली होने के कारण यह मेवाती कहलाती है। 'मेवात' शब्द की व्युत्पत्ति 'मेदत्रा' शब्द से हुई है। मेदत्रा-मेवत्ता-मेवत्ता-मेवात। अठारहवीं शताब्दी की 'आठदेस की गूजरी' नामक कृति में मेवात की गूजरी अपना परिचय अपनी बोली में देती है। खेद है कि अब यह प्रति अनूप संस्कृत-पुस्तकालय, बीकानेर से लुप्त हो गई है। इसमें इतना तो स्पष्ट ही है कि इस बोली में भी साहित्य-सृजन होता था। लालदास ने तो अपनी वाणियों में इसी का प्रयोग किया था।

स्थान भेद से मेवाती के चार रूप हैं—खड़ी, राठी, नेहड़ी एवं कठेर। इन उप-रूपों में राठी अहीरवाटी से, नहेड़ी जयपुरी से तथा कठेरी व्रज से अधिक सम्पर्कित है। राठी, अलवर के पश्चिमोत्तर राठ क्षेत्र की बोली है। 'राठ' का अर्थ है, निर्दय, निर्मम, अक्खड़ आदि। यही कारण है कि यहाँ की बोली में कुछ कर्कशता आ गई है। परन्तु जैसा कि हम कह चुके हैं अब राठी का अस्तित्व अहीरवाटी में समाहित हो गया है। यह मुंडावर, कोटकासिम, बानसूर, बहरोड़ के आसपास बोली जाती है। नहेड़ी थानागाजी तहसील की बोली है, जो राजगढ़ तक

प्रचलित है। इस क्षेत्र को नहेड़ा कहते हैं। इसी के नाम से बोली को नहेड़ी कहा जाता है। कठेर पूर्वी अलवर के काठैंड़ नामक स्थान की बोली है। इसमें तहसील अलवर का मालाखेड़ा तथा लक्ष्मणगढ़ तहसील का क्षेत्र आता है।

लेकिन अब मेवाती के स्पष्टतः दो रूप देखने को मिलते हैं—(१) मेव मेवाती (२) ब्राह्मणी मेवाती। प्रथम का संबंध मेव, खानजादा, सैय्यद, पठान तथा अन्य निम्न वर्गों से है, जबकि दूसरी का सम्बन्ध ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य, अहीर, गूजर, जाट आदि से है। दोनों में कोई विशेष अन्तर नही है। प्रथम में उर्दू, फारसी की शब्दावली का प्रचुर प्रयोग होता है, जबकि द्वितीय में आर्य भाषाओं—संस्कृत, प्राकृति की शब्दावली प्रयुक्त होती है। मुख्य अन्तर कर्म-कारक की 'लू' एवं 'कू' विभक्ति से स्पष्ट होता है। यथा—

(१) नू लू कहा जा रो है। (इधर को कहाँ जा रहा है)

(२) नू कू कहा जा रो है। (इधर को कहाँ जा रहा है)

इसके अतिरिक्त भेद शब्द के उच्चारण का है, अन्यथा कोई अन्तर नही है। अलवर जिले में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार बड़ी तेजी से हो रहा है। परिणामतः पढ़े-लिखे व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है। इससे जहाँ राष्ट्र-भाषा का विकास हुआ है, लोक-बोली का ह्रास भी हुआ है। यही कारण है कि सन् १९६१ की जन-गणना रिपोर्ट के अनुसार मेवाती वक्ताओं की संख्या अलवर मे केवल १६,६०९ रह गई।

मेवाती की विशेषताएँ—

(१) स्वर अ, आ, इ, उ जैसे—

मूर-सूरा, मोर-मोरा, भ्रमर-भंवरा, जलूस-जिलसा, जमा-जिमा, खजूर-खिजूर, सरकारी-सिरकारी, अमृत-इमरत, नकुल-नुकल, सम्मुख-सुनमक, कपास-कुपास, ससुर-सुसर मथुरा-मुथरा।

(२) आ-ओ—मेला-मेलो, भेड़िया-भेड़ियो, बिटोड़ा-बिटोड़ो, मीणा-मैणो, पाला-पालो।

(३) इ-अ, ए—शिमला-समला, नियम-नेम, मीणा-मेणू।

(४) उ-अ—चतुराई-चतराई, नुकीला-नकीलो, असुर-असर, वासुकी-वासक।

(५) ऊ-ई, ओ—छूआ-छीओ, खुशबू-खसबो।

(६) ऋ-इ, ई—मृग-मिरग, शृंगार-सिंगार, शृंग-सींग।

व्यंजन—

(१) अल्पप्राण क, ग, ज, ट, त, द, प का महाप्राण ख, घ, झ, ठ, थ, ध, फ में परिवर्तन

यथा—कही-खई, केश-खेस, किस्सा-खिस्सा, कैरी-खैरी, गमला-घमला, पंजा-पंझो, करवट-कलोठ, काटू-काठू, कांत-कंथा, दोपहर-धूपर, पहेली-फाली, पुष्प-फूल।

(२) महाप्राण ख, घ, ठ, थ, ध, फ, भ का अल्पप्राण क, ग, ट, त, द, प, ब, हो जाता है।

यथा—धोमे-धोके, चौखट-चौकट, सीखी-सीकी, सरीखे-सरका, शृखला साकल, सिखाई-सिकाई, लिख-लिक, रघुवश रगवस, साथ-सात, हथियार-हनियार, हाथी हाती, सामर्थ्य-सामरत, बाँध-बद, अथा ग्रादो, राधा-रादा, साधु-माद्दु, सफाई-सपाई, साफ-सपा, लोभी-लोबी, स्तम्भ खब, गोभी गोबी, सभी मबी ।

(३) हिन्दी की अनुनासिक अल्पप्राण वर्त्स्य न' ध्वनि का मेवाती मे 'ण' हो जाता है। यथा—थाना याणो, देने दैण ।

(४) म व—ग्राम गाव, नाम नाव, भीम-भीव ।

(५) र ड, ल—कचहरी-कचेडी, महर-महड, महरि मह्डि, सियार-स्याड, हरण-हडण, न्यारा न्याला, करवट कलोठ ।

(६) मेवाती मे केवल दन्त्य 'स' ध्वनि का प्रयोग होता है ।

(७) *अन्त्य 'ह' ध्वनि का लोप हो जाता है। यथा—*

सोलह सोला, जगह-जग्गै, सलाह-सल्ला, सुबह-सुबै, विवाह-ब्या, सरहद-सरद ।

(८) व्यजनो के द्वित्व प्रयोग भी देखने को मिले है, यथा—

आकाश अग्गास, जिला जिल्ला, छलाग-छग्गाल ।

व्याकरणात्मक विशेषताएँ—

परसर्ग—कर्ता कारक के साथ नै' का, कर्म के साथ 'लू' एव 'कू' का सम्बन्धकारक के साथ को, का, की का, करण अपादान के साथ सै, तैं का प्रयोग होता है ।

सर्वनाम—मैं हम/हमा, तु/तम, यम, यो, वो, जो, कौण, के, कोई, काई, अपणो ।

क्रिया—वर्तमान मे हूँ/है, भूतकाल मे हो/हा, भविष्यत्काल मे-ग रूप प्रचलित होना है ।

मेवाती बोली का उदाहरण—

कठ घोटणिया सवन पड़गो मरजी है करतार की ।
धरती का म्लडा सूखगा, आमर लीलो कच्च है ।
धणी अबीडो औसर दखियो, अक्कल सबकी जच्च है ।
धच्च मलीदो हवा हो गयो, टूकन का बी लाला है ।
चणा कुटक्वाकु न रहा है, कैसा नरम निवाला है ।
आज नाज का तोडा मे हो फली खा रहा ग्वार की ।

अहीरवाटी बोली

नामकरण—

अहीरवाटी अहीरवाल या हीरवाल की बोली है । मुख्यत इस क्षेत्र मे अहीर रहते है, अत इस बोली का नाम भी अहीरो के नाम पर ही पडा । 'अहीर' शब्द की व्युत्पत्ति 'अभि+ईक'

से हुई है, जिसका अर्थ 'निर्भय' होता है। कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति 'आभीर' शब्द से भी मानते हैं। इन्हीं आभीरों की एक पट्टी इस क्षेत्र में आगई थी अतः 'आभीरपट्टी' ही बाद में 'अहीरवाटी' कहलाई, जैसे शेखा राजपूतों की पट्टी शेखावाटी कहलाती है।

सीमा-क्षेत्र, जनसंख्या एवं प्रभाव—

अहीरवाटी की सीमा अति विस्तृत है। राजस्थान में जिला अलवर की तहसील बहरोड़, मुंडावर, किशनगढ़ (पश्चिमी भाग), जिला जयपुर की तहसील कोटपूतली (उत्तरी भाग), दिल्ली के दक्षिण का कुछ भाग, हरियाणा के जिला गुड़गांव की तहसील रिवाड़ी, पूरा जिला महेन्द्रगढ़ तथा जिला रोहतक की तहसील झज्जर का कुछ भाग अहीरवाटी बोली की सीमा है, लेकिन जिला अलवर में तहसील बहरोड़, मुंडावर, बानसूर (कुछ भाग), किशनगढ (पश्चिमी भाग) अहीरवाटी बोली की सीमा है।

भाषा सर्वेक्षण के अनुसार अहीरवाटी वक्ताओं की संख्या ४४८९४५ थी, लेकिन १९६१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान में इसके वक्ताओं की संख्या २१११९ रह गई। इसमें से जिला अलवर में अहीरवाटी के वक्ता १९६०९ थे।

अहीरवाटी पर अपनी सीमान्त बोलियों—मेवाती, जयपुरी, हरियानवी, एवं शेखावाटी का प्रभाव पड़ा है। बांगडू से यह अधिक प्रभावित रही है।

अहीरवाटी की विशेषताएँ—

(१) स्वर ध्वनियाँ—अहीरवाटी बोली में अ का इ, आ का ओ, इ का अ तथा ऋ का इ, इर में परिवर्तन हो जाता है। यथा—

अब-इब, चतुर-चितर, निश्चित-नचीत, समर्थ-सुमरथ, सामरथ, सरस्वती-सुरसती, ससुर-सुसरो, उबटना-उबटणो, अपना-अपणो, खाना-खाणो, इत्र-अतर, इमली-अमली, पंडित-पंडत, शुण्ठ-सोंठ, मुकुट-मोड़, मुहुर-मोहर, बहुत-भोत, मृग-मिरग, घृत-घी, बृहस्पति-बिसपत।

(२) व्यजन ध्वनियाँ—मेवाती के समान अहीरवाटी में भी अल्पप्राण व्यंजन ध्वनियों का महाप्राण व्यंजन ध्वनियों की तरह उच्चारण होता है। इसी तरह महाप्राण का अल्पप्राण की तरह। मुख्य विशेषता 'न' दन्त्य ध्वनि का 'ण' मूर्धन्य ध्वनि में बदल जाता है। य का ज बन जाता है। यदि-जदि, याचि-जाती, यात्रा-जात्रा, यम-जम आदि। संयुक्त 'र्' ध्वनि का सर्वत्र लोप रहता है। मूर्धन्य एवं तालव्य ष्, श् ध्वनियों का सर्वत्र दन्त्य 'स' की तरह उच्चारण होता है। यथा—वंश-वंस, आषाढ-साड, आश्विन-आसोज, शर्म-सरम आदि।

व्याकरणात्मक विशेषताएँ—

परसर्ग—नै, सै, खातर, पर, मूं, मैं, का, के, की आदि।

सर्वनाम—मैं, मूनै, मेरो; हम, हमनै, म्हारो; तू, तूनै, तेरो; थम, थमनै, थारो; वो, ऊंनै, ऊंको, वै, उननै वैको। उपर्युक्त पुरुषवाचक सर्वनाम के अतिरिक्त निम्नलिखित सर्वनामों का प्रयोग किया जाता है—

के, कौण, कुण, कैंह्का, वैह्का, जैह्का, ऐंह्का, आण, कण, वण, जण, उठा, श्रणा, क्णा, वणा, जणा, उणा, आठये, कठये, वैठये, जैठये, इत, कित, वित, जित, उत, कैंठया, वैठया, जैठया, आठया, उठया, ओड, जोड, कोड, ऊमैं, ऐंहमैं, सबनै, किम, किमी, कितनो, इतनो, जितनो, उतणो, वितणो, यो, या, इस्यो, उस्यो, किस्यो, जिस्यो, उरै, परै, ग्रहने, क्हने, जहनै, वहनै, थारी, म्हारी, कनै, दूर के पतो आदि ।

क्रिया—वर्तमानकाल—सू, सा। सा, सो। सै, सं। भूतकाल—थो, था। भविष्यकाल—ऊगो, आगा। आगो, ओगा। ऐगो, ऐंगा का प्रयोग किया जाता है।

प्रत्यय—'वाला' अर्थ के लिए 'णो' एव 'डो' प्रत्ययो का प्रयोग किया जाता है। यथा रोवणो, सोवणो, खोवणो, जलोक्डो, पिटोक्डो, हँसोक्डो आदि। 'के लिए' अर्थ को बताने के लिए 'बानैं' तथा 'खातर' प्रत्ययो का प्रयोग किया जाता है। खाबानै जाबानै, न्हाबानैं, खाणखातर, जाणखातर आदि।

अव्यय— जै जद, क, तो, पण, क्यू क, कबै, जभी, अक, आर, आदि।

अहीरवाटी बोली का उदाहरण—

दो मा वेटा था। तो बेटो भार खेलै यो कुश्रा कनै। तो बिस्पतजी महाराज बूढो बिरामण बण कै आयो ऊ छोरा कनै। कै रै भाई हमने एक बाल्टी पाणी की खीच दया तो हम न्हाल्या। वा बोल्यो अक मेरी मानै बूभयाऊ सू। मा एक बूडो बिरामण बाल्टी खिचवावै सै। कै बेटा खीच दे ठेमवा काम करयाई करै सै। फेर खीच दी। न्हालियो। कै भाई हम तो आज दो रोटी खाऊगा भूखा सा, रोटी खाऊगा। जब पाछै बोल्यो मा वा तो कहै सै भूखा सा रोटी खाऊगा। कै तो भाई च्यार रोटी पोई सै। आपा एक-एक रोटी खा ल्यागा, दो वो खा लेगो। कहदे। फेर वै दो रोटी धरदी थाली मैं। वै खालयी। फेर बोल्यो ओर ल्याओ। फेर एक दे दी। ऐतरा च्यारु रोटी दे दी। फेर नू बोल्यो ओर ल्याओ। फेर बोल्यो महाराज ओर तो म्हारै कोन्या। च्यार चणा छीका पै ओर सै। ओर रोटी कोन्या। कै वै च्यार चणा ल्याओ। तो वै च्यार चणा लै कै च्यारूँ कूटा भर गयो। हाथ जाड कै खडी हो गई, म्हाराज हम रह्वा कैठे। तो कोठला कै लातमारी। महल बण गयो। च्यारूँ कूटा घर भर गयो। हे बिस्पतजी महाराज ऊनै टूटयो इस्यो सबनै टूटिये। कहता सुणता होकारा भरता सबनै।

जयपुरी (ढूढाडी)

नामकरण, क्षेत्र जनसख्या प्रभाव—

जयपुर एव आसपास के क्षेत्र मे बोली जाने के कारण इसे जयपुरी कहते है। धूंधू राक्षस का प्राचीन स्थान होने के कारण जयपुर के आस-पास का स्थान ढूढार कहलाता है, इसी से इस प्रदेश की बोली ढूढाडी कहलाती है।

इसका क्षेत्र अतिविस्तृत है, परन्तु अलवर जिले में तहसील राजगढ, थानागाजी एवं बानसूर में इस बोली का प्रचार है। राजगढ, थानागाजी का क्षेत्र नहेड़ा कहलाता है, अतः यहाँ के लोग इसे नहेड़ी भी कहते है। इस बोली को अधिक अच्छा नही समझा जाता है। बानसूर की ढूंढाड़ी को 'बत्तीसी बोली' भी कहते है। इस क्षेत्र को 'वाल' कहते है।

अलवर जिले की ढूंढाड़ी पर ब्रज, मेवाती एवं जयपुर की जयपुरी का प्रभाव स्पष्ट है। इसका व्याकरण जयपुरी से अधिक शासित है। इसके वक्ताओं की सख्या करीब ३५ लाख मानी जाती है। परन्तु अलवर जिले में इसके वक्ताओं की संख्या बहुत कम है।

व्याकरणगत विशेषताएँ—

ध्वन्यात्मक विशेषताएँ जयपुरी एवं मेवाती दोनों बोलियो की मिलती है। फिर भी अल्प-प्राण को महाप्राण बनाने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। यथा—कह-खै, कहानी-खाणी, पढ-फड आदि।

सम्बन्धकारकीय परसर्ग में को, का, की का प्रयोग होता है। कर्ता-कर्म में नै, का प्रयोग भी मेवाती की तरह है। जयपुरी का प्रभाव सहायक क्रिया मे देखा जा सकता है। वर्तमान काल एक वचन मे छूं, छै भूतकाल मे छो, छा भविष्यकाल में ग रूप प्रचलित है। सर्वनाम थे, थारो, मैं, मूनै, तू, तूनै, तेरा, थानै, ऊनै, कुण, मारा (म्हारा), मानै, ई, आ, अपणा, वा, उनै, कांई आदि का प्रयोग होता है।

अव्यय—तो, अवकै, ओर, फेर, पण आदि।

बोली का उदाहरण—

एक चिड़िया छी ओर एक छो चिड़ो। वै दोन्यो मिलकर रहबो कर छा। एक दिन चिड़ा नै पायो चांवल ओर चिड़ी न पायो मूंग। वै दोनो मिलकऽणा खिचड़ी बनाई। चिड़ी चिड़ा नै बोल्यो कि मैं तो पाणी भर ल्यावूं छूँ। खिचड़ी बण जाय छै। मैं आवू जितणऽ तू सूत्यो रीज्यो। उठीणै चिड़ी पाणी भरवा चली गी ओर खिचड़ी बनता ही चिड़ो ऊनै खा गयो। जब चिड़ी आकर पूछी तो चिड़ो बोल्यो मैं तो सूत्यो छो मुनै कोना मालुम क खिचड़ी न कुण खागयो। चिड़ी बोली अगर तू ना खायो तो फेर कुण खा गयो। चिड़ो बोल्यो बिरा मूनै तेरी सोगन मैं तो कोना खायो। मैं खायो हूँ तो म्हारो बाप मरजाज्यो। चिड़ी बोली थारो बाप तो पैल्या ही मर गयो छो। अब तो अयां ख्यो क मारी रांड मरजाज्यो। चिड़ो बोल्यो ना भाय अयां पार ना पड़ै। मैं थानै सही-सही खैदयां पण तू म्हानै मारै। चिड़ी बोली मैं थानै कुछ भी ना खू। पण थे सही-सही खैदयो। चिड़ो बोल्यो खचड़ी तो मैं ही खायो छू पण तेरा डर को मार्‌यो सही ना ख्य सक्यो। चिड़ी बोली अब तो थानै माफ करद्‌यां छा पण आइन्दा अस्या झूंठ मतणा बोलज्यो।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात हुआ कि अलवर जिले की भाषा एवं बोलियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। डॉ० सरनामसिंह जैसे भाषा वैज्ञानिकों का तो अनुमान है कि खड़ी बोली के उद्भव को मेवाती बोली में खोजा जा सकता है। निश्चय ही अनेक बोलियों की सीमा से जुड़ी हुई अलवरी बोली भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए उपयोगी हो सकती है।

साहित्यिक संस्थाएँ

संगठन अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। जनतान्त्रिक युग में अनेक संगठन देखने को मिलते हैं। ये बनते मिटते हैं और अपने पीछे कुछ चिन्ह और स्मृतियाँ छोड जाते हैं। साहित्यिक संस्थाएँ साहित्यिकों के संगठन हैं। छिछली राजनीति से साहित्यिक संस्थाएँ दूर रहकर ही अधिक कार्य कर सकने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं, किन्तु ऐसा हो नहीं पाता है। फलस्वरूप संस्थाएँ अपने मूल उद्देश्य से विचलित होती नजर आती हैं। एक निश्चित दिशा दृष्टि के अभाव में भी संस्थाएँ केवल मात्र प्रदर्शन की वस्तु बनकर रह जाती हैं। साहित्यिक संस्थाएँ साहित्यिकों का एक मंच देने और एक वातावरण निर्मित करने में सहयोग देती हैं। पिछली अर्ध शताब्दी की अलवर की कुछ महत्त्वपूर्ण व वर्तमान साहित्यिक संस्थाओं का परिचय प्रस्तुत है।

हिन्दी परिषद्—

इस संस्था का जन्म १९३६ में हुआ। अलवर के साहित्यिक इतिहास में इस संस्था का नाम सदा स्वर्णाक्षरों में सुरक्षित रहेगा। संस्था के कार्यकर्त्ता पदों के लोभी न होकर मिशनरी भावना से डटकर कार्य करना चाहते थे और उन्होंने किया। तत्कालीन अलवर नरेश के हिन्दी प्रेम व हिन्दी को प्रोत्साहित करने की नीति के कारण संस्था को राजकीय सहायता प्राप्त हुई। संस्था के माध्यम से अलवर की साहित्यिक चेतना को प्रथम बार संगठित रूप मिला। साहित्यिक गोष्ठियाँ, कवि-सम्मेलन, कहानी सम्मेलन जैसे आयोजन परिषद् द्वारा किये गये, जिसमें अखिल भारतीय स्तर के साहित्यिकारों ने भी भाग लिया। सत्यकेतु विद्यालंकार, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार प्रभृति प्रसिद्ध साहित्यिकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। परिषद् द्वारा नियमित गोष्ठियों और जयन्तियों व समारोहों ने अपूर्व साहित्यिक वातावरण निर्मित किया।

परिषद् द्वारा 'हिन्दी विद्यालय' का संचालन भी किया गया। पंजाब विश्वविद्यालय व हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हिन्दी परीक्षाओं के लिए इस विद्यालय द्वारा कक्षाएँ चलाई जाती थी। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य परिषद् के है—अलवर के नई पीढ़ी के युवा कवियों की कविताओं का सामूहिक संकलन "नीराजन" के माध्यम से अलवर के तत्कालीन कवियों की एक पीढ़ी अपनी रचनाओं सहित सामने आ सकी। ये कवि थे—सर्व श्री हरिनारायण 'किंकर' लक्ष्मण त्रिपाठी, रमेशचन्द्र पन्त, नाथूराम भारद्वाज, कुमारी शान्ति भार्गव, चन्द्रशेखर शर्मा, रघुवीर स्वरूप भट्ट और प्रभुदयाल गुप्त। संकलन के प्रकाशन से इन रचनाकारों का व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। इस संकलन के सम्पादक वर्तमान दैनिक पत्र "राजस्थान टाइम्स" के सम्पादक रामकुमार राम थे।

"अरावली" साहित्यिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन और भी महत्त्वपूर्ण कार्य परिषद् का है। "अरावली" के सभी अंक अपने सम्पादन, रचना सामग्री और मुद्रण की दृष्टि से उत्तम हैं। अपने प्रकाशन काल में शीघ्र ही साहित्यिक पत्रिकाओं में अरावली ने अपना स्थान बना लिया था। अलवर के रचनाकारों के साथ अखिल भारतीय स्तर के साहित्यकार भी "अरावली" में

प्रकाशित हुए। इसके प्रथम सम्पादक थे श्री लक्ष्मण त्रिपाठी बाद में बने श्री योगेशचन्द्र पराग और अन्तिम थे श्री वंसीधर मिश्र। श्री मिश्र के सम्पादक में "अरावली" का "कहानी अंक" प्रकाशित हुआ और अरावली लुप्त हो गई। इसके लोप के साथ ही अलवर साहित्य युग के स्वर्ण-युग का पटाक्षेप हो गया। हुआ यह कि सन् १९४७ में देश स्वतन्त्र हुआ, तत्पश्चात रियासतों का संयुक्त राजस्थान में विलीनीकरण हो गया। परिषद् के उत्साही कार्यकर्ता राज्य कर्मचारी थे और वे अलग-अलग स्थानों पर स्थानान्तरित होकर अलवर से बाहर चले गये। परिषद् के प्रेरणा-स्रोत नही रहे, राजकीय आश्रय भी समाप्त हो गया। फलस्वरूप परिषद् अपनी समस्त आदर्श स्थापनाओं, परम्पराओ के साथ गहन सागर के तल मे जाकर डूब गई। अब शेष रहीं है उसकी स्मृतियां, काश ! शेष रहता परिषद का पुस्तकालय, "अरावली" की सम्पूर्ण फाइल। इस श्रेष्ठ पत्रिका के पूरे अंक भी आज अप्राप्य है।

साहित्य परिषद्—

हिन्दी परिषद् की समाप्ति के पश्चात एक लम्बे अंतराल तक अलवर का साहित्यिक वातावरण शान्त रहा। संभवतया कुछ बनने की प्रक्रिया मे रहा। हिन्दी परिषद् के साथ एक साहित्यिक पीढ़ी सुस्त हो चुकी थी। एक नई पीढ़ी ने जन्म लिया। कुछ नवयुवक सामने आये जिनमें अधिकांश कॉलेज के छात्र थे। इन नवयुवकों ने श्री बसीधर मिश्र के नेतृत्व मे अलवर की साहित्यिक चेतना को पुन संगठित करने का बीड़ा उठाया। १९५५ मे साहित्य परिषद् की स्थापना हो गई। दो वर्ष तक कार्य करने वाली इस संस्था ने जोर-शोर के साथ कार्य किया और नगर के सार्वजनिक क्षेत्र मे जमी काई को तोड़ने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। नगर के सभी बुद्धिजीवियों का भी संस्था को सहयोग प्राप्त हुआ। साप्ताहिक गोष्ठियां होने लगी। कविताओ और कहानियो का पाठ हुआ। परस्पर विचारों का आदान प्रदान हुआ। नवयुवकों को एक वैचारिक धरातल पर बातचीत करने का सुअवसर मिला। साहित्य परिषद् ने अखिल भारतीय पत्र-पत्रिका प्रदर्शनी, चित्रकला प्रदर्शनी, हिन्दी-साहित्य प्रदर्शनी, कवि-सम्मेलन आयोजित किए। प्रेमचन्दजी, जयशंकर प्रसादजी और रवीन्द्र बाबू की जयन्तियां धूमधाम के साथ मनाई गई। साहित्य-परिषद् के सर्वाधिक जोशीले व लग्नशील कार्यकर्त्ता थे श्री ओमप्रकाश गुप्त। उनके परिश्रम व लगनशीलता के कारण ही साहित्य परिषद् में जीवन था: उनके बाहर जाते ही साहित्य परिषद् के कार्य मे शिथिलता आती गई और परिषद् में असाहित्यिक तत्त्वो का प्रवेश हो गया, राजनीतिज्ञों ने भी इसे हथिया कर अपने लिए उपयोग करने का दुश्चक्र रचा फलस्वरूप साहित्य परिषद् की अकाल मृत्यु हो गई। साहित्य परिषद् की अन्तिम बैठक मे सर्वश्री भागीरथ भार्गव, कमलेश जोशी व जुगमंदिर तायल को साहित्य परिषद् की कार्यकारिणी ने परिषद् में प्राण फूंकने व पुनः संगठित करने के लिए समस्त अधिकार दिए। ये तीनों प्राणी भी इस क्रम में कुछ न कर सके। साहित्य परिषद् का कुछ धन आज भी जयपुर बैंक में और महत्वपूर्ण साहित्यिक सामग्री कुछ व्यक्तियों के पास सुरक्षित है।

सृजन—

साहित्य परिषद् की मरी लाश को पुनर्जीवित करने का कार्य कुछ नवयुवक साहित्यकारो को अटपटा लगा। नवलेखन के समर्थ रचनाकार व नयी कविता के प्रतिष्ठित कवि जयसिंह

नीरज (अब डॉक्टर) के संयोजन में "सृजन" की स्थापना की गई। कुछ सुंदर व स्तरीय गोष्ठियों का संचालन सृजन के तत्वावधान में सफलता के साथ हुआ। इन्हीं दिनों राजस्थान साहित्य अकादमी की ओर से तीन दिवसीय एक उपनिषद् का आयोजन किया गया। इस उपनिषद् का उद्घाटन साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार ने किया। 'सृजन' ने उपनिषद् के आयोजन में पूरा पूरा सहयोग दिया। उपनिषद् की सफलता का बहुत कुछ श्रेय 'सृजन' के कार्यकर्ताओं को दिया जा सकता है। शीघ्र ही 'सृजन' शिथिल होती नजर आई और वह कुछ गिने चुने प्रोफेसरों की जमात बन कर रह गई। और फिर इसका भी वही हश्र हुआ जो पिछली साहित्यिक संस्थाओं का हुआ था।

साहित्य संगम—

अलवर नगर की यह नवीनतम संस्था है। संस्था के पास अपना निजी कार्यालय है। नगर के केन्द्र में वाचनालय भी संस्था के द्वारा चलाया जा रहा है। संस्था को अलवर की जनता का पूरा पूरा समर्थन प्राप्त है। संस्था की सदस्यता सभी के लिए खुली है। संस्था का विधिवत् उद्घाटन दिनांक २६ नवम्बर १९६७ को हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० नामवरसिंह ने किया। डॉक्टर साहब ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा—"मुझे आशा है "कविता" ने हिन्दी साहित्य में जो प्रतिष्ठा व प्रतिमान स्थापित किए हैं और अलवर नगर के गौरव को बढ़ाया है उसी प्रकार यह आपकी साहित्य संगम भी कर सकेगी।"

"साहित्य संगम" द्वारा संचालित रवीन्द्र पुस्तकालय व वाचनालय अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए जनता व सरकार का पूरा-पूरा सहयोग मिलना चाहिए। संगम द्वारा कुछेक गोष्ठियों का सफलता के साथ आयोजन किया गया है। डॉ० विश्म्भरनाथ उपाध्याय, रमेश गौड़, मणिमधुकर, विजेन्द्र संगम के निमंत्रण पर बाहर से पधारे हैं। साहित्य संगम से अलवर के साहित्यिक समाज को बहुत कुछ अपेक्षाएँ है और आशाएँ हैं। संगम के उत्साही मंत्री, नवयुवक साहित्यिक जुगमंदिर तायल कुछ कर सकेंगे, संस्था को स्थायित्व देंगे, ऐसी उम्मीद है।

सरस्वती पुस्तकालय, लक्ष्मणगढ़—

छोटे से कस्बे लक्ष्मणगढ़ की संस्था का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा। संस्था के द्वारा सरस्वती पुस्तकालय व वाचनालय पिछले अनेकों वर्षों से संचालित है। कुछ सुरुचि सम्पन्न व्यक्ति इसके कार्यकर्ता हैं। स्थानीय जनता के पूर्ण सहयोग पर संस्था सफलता से चल रही है। पुस्तकालय व वाचनालय के नियमित संचालन के अतिरिक्त पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव पर प्रतिवर्ष एक विराट कवि-सम्मेलन का आयोजन अखिल भारतीय स्तर पर किया जाता है। निरंतर गत वर्षों से नियमित कवि सम्मेलन ने एक आदर्श परम्परा स्थापित की है। कवि सम्मेलन के प्रति यहाँ की जनता में पूरा उत्साह है। कवि सम्मेलन के श्रोताओं को रात के दो बजे तक शान्ति के साथ कवि-सम्मेलन सुनते देखा गया है। हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित कवियों ने लक्ष्मणगढ़ के कवि सम्मेलन के मंच से कविता पाठ किया, सर्वश्री वीरेन्द्र मिश्र, मुकुटबिहारी सरोज, गोपालप्रसाद व्यास, काका हाथरसी, निर्भय हाथरसी, बाल कवि बैरागी, नईम, ओम प्रभाकर, ज्ञान भारिल्ल आदि उल्लेखनीय हैं।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

राजस्थान के प्राच्यशोध-सस्थान की एक शाखा अलवर में है, जिनका कार्यालय एवं भण्डार शहर महल में है। प्राचीन इतिहास और संस्कृति की थाती को जो अब तक उपेक्षित रूप मे पड़ी थी एकत्रित कर विद्वानों एवं शोध प्रेमियों को सुलभ करने एवं अलभ्य, दुर्लभ्य व अज्ञात कृतियों को प्रकाशित करने के लिए राजस्थान सरकार ने पुरातत्व विभाग के तत्वावधान में इस संस्थान की स्थापना सन् १९५६ में की। जोधपुर को प्रमुख कार्यालय बनाया गया और जयपुर उदयपुर, बीकानेर, कोटा, अलवर, टोंक व चित्तौड़गढ़ में इसके शाखा कार्यालय बनाये गये।

राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों की भाँति अलवर भी पुरातत्व की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रहा है। यहाँ के नरेश बड़े वीर एवं विद्याप्रेमी रहे हैं। प्रारम्भ से ही यहाँ के नरेशो को भारतीयता का स्वाभिमान था। भारतीय सस्कृति की रक्षा में इनका भी प्रमुख योग रहा है।

अलवर नरेश महाराजा विनयसिंहजी भी अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार बड़े भगवद्-भक्त राजा थे। संस्कृत शास्त्रों के प्रति इनको बड़ी निष्ठा थी। संस्कृत शास्त्रों की सुरक्षा हेतु ही सं० १९०५ मे इन्होंने पुस्तकशाला की स्थापना करवाई। दूर-दूर के विद्वानो को यहाँ बुलाकर उन्हें यहाँ बसाया। अलभ्य-दुर्लभ्य ग्रन्थों की प्रतियाँ उतरवायी। प्राचीन प्रतियो और अलभ्य ग्रन्थों को उचित मूल्य देकर खरीदा और यही कारण है कि यहाँ की पुस्तकशाला में श्रेष्ठतम संस्कृत शास्त्रों का खासा जमघट हो गया। वेद, वेदाङ्ग, उपवेद, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद्, पुराणेतिहास, कर्मकाण्ड, धर्म-शास्त्र, स्मृतियाँ, राजनीति अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, काम-शास्त्र, काव्य-नाटक आदि सभी प्रकार के ग्रन्थ इस संग्रह में क्रमशः एकत्रित किये गये हैं। कुछ राजस्थानी ब्रज एवं हिन्दी के ग्रन्थ भी इस संग्रह में विद्यमान है। महाराजा विनयसिंहजी से लेकर महाराजा जयसिंहजी के समय तक यह कार्य अबाध रूप से चलता रहा। इतना ही नहीं कुछ नरेशों की स्वयं की रचनाये भी इस संग्रह मे है। जिनसे यहाँ के नरेशों की विद्वत्ता और विद्या प्रेम प्रकट होते हैं।

समय चक्र के परिवर्तन से शनैः शनैः इस कार्य में समाज की अभिरुचि कम होती गई और सन् १९४० में इस पुस्तकशाला को अलवर म्यूजियम के अन्तर्गत कर दिया गया। जहाँ इसका कार्य कुछ शिथिल रहा। राजस्थान के निर्माण के बाद जब पूर्व वर्णित राजस्थान सरकार की योजनानुसार प्रान्त भर में शोध कार्य एवं प्राचीन हस्तलिपियों की सुरक्षा हेतु राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की स्थापना हुई और जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है स्थान-स्थान पर प्रतिष्ठान की शाखायें खुलीं तब अलवर में भी प्रतिष्ठान की शाखा स्थापित कर म्यूजियम से उक्त संग्रह प्राप्त कर लिया गया।

प्रतिष्ठान की योजनानुसार शाखा कार्यालय में उक्त संग्रह के अतिरिक्त अलवर के निकटवर्ती क्षेत्रों एवं अलवर नगर में खोजकर पांच और संग्रह भेंट स्वरूप प्राप्त किये जा चुके हैं।

ग्रन्थ प्रदाता प० पूरणमल शर्मा, रा० वै० लक्ष्मीकान्तजी, प० श्री रामदत्त शर्मा, श्री पीताम्बरदत्त जी तथा श्री नन्दनलालजी है। इस प्रकार अब तक कुल ५६६० ह० लि० तथा पाच सौ मुद्रित ग्रन्थ प्राप्त हो चुके हैं। सग्रह प्राप्त करने का यह कार्य अभी तक चालू है और विभिन्न स्थानो पर इस विषय मे बातचीत की जा रही है।

विशेष रूप से द्रष्टव्य साहित्य—

वेद—शाखा कार्यालय अलवर के सग्रह मे वैदिक साहित्य का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चारो की विभिन्न शाखाओ की सहितायें जो अब दुलभ है यहाँ उपलब्ध है। चारो वेदो के उपवेद १—आयुर्वेद, धनुर्वेद गान्धर्ववेद और मत्र-शास्त्र भी क्रमश प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् तथा गृह्य सूत्र श्रौत सूत्र प्राचीनतम टीकाओ के यहा प्राप्त हैं।

मत्र तत्र—वैसे तो इस शाखा मे सभी प्रकार का साहित्य द्रष्टव्य है परन्तु वैदिक साहित्य के बाद यहा के साहित्य मे दूसरा स्थान है तत्र और मत्र शास्त्र का। यहाँ की शाखा मे गौतमीय तत्र, सारयायन तत्र माहेश्वर तत्र समाचार तत्र भूतडामर तत्र शक्तिसगम आदि तत्र एव सभी देवताओ के कवच स्तोत्र मत्र मत्रमहोदधि मत्रमहार्णव शारदातिलक मत्र चन्द्रिका सौभाग्य रत्नाकर सौभाग्य शुभोदय गणेशमत्र दीपिका आदि मत्र तत्र साहित्य द्रष्टव्य एव अन्वेषणीय हैं।

सस्थान के उद्देश्य—

१—राजस्थान मे और अन्यत्र भारतीय सस्कृति के आधार-भूत सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश राजस्थानी हिन्दी व अन्य भाषाओ के प्राचीन ग्रन्थो की खोज करना तथा उन्हे प्रकाश मे लाना।

२—प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह व उनके सरक्षण की व्यवस्था करना और उपयोगी ग्रन्थो को सम्बन्धित विद्वानो से सम्पादित कराकर उनके प्रकाशन की व्यवस्था करना।

३—साधारणत भारतीय भाषाओ एव मुख्यत सस्कृत व प्राचीन राजस्थानी के अध्ययन अन्वेषण व सशोधन हेतु देश विदेश मे मुद्रित विविध विषयक अलभ्य-दुर्लभ्य सभी प्रकार के प्रकाशित ग्रन्थो का यथा सभव सग्रह कर उत्तम प्रकार का सन्दर्भ पुस्तकालय स्थापित करना।

४—सग्रहीत सामग्री से शोधकर्त्ता एव अध्येता विद्वानो को उनके अध्ययन व शोधकार्य मे सहायता पहुँचाना।

५—राजस्थान के लोक जीवन पर प्रकाश डालने वाले विविध विषयक लोकगीत, भजन, पद आदि भक्ति साहित्य एव लौकिक आचार विचार आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की सामग्री का शोध, सग्रह, सरक्षण एव प्रकाशन करने की व्यवस्था करना।

राजकीय संग्रहालय

अलवर के राजकीय संग्रहालय का परिचय देते समय इसके पूर्व इतिहास के सम्बन्ध में कुछ कहना असंगत न होगा। अलवर रियासत का इतिहास सन् १७७५ से प्रारम्भ होता है। इस रियासत के संस्थापक-शासक राव प्रतापसिंह ने राजगढ़ को अपनी राजधानी बनाया जो माचैड़ी के निकट है, परन्तु राजगढ़ ने राजधानी के पद का दीर्घ समय के लिये उपभोग नहीं किया। महाराजा बख्तावरसिंह के राज्यकाल में दूसरे महल की नींव वर्तमान अलवर नगर में पहाड़ी के ठीक दामन में रखी गयी। इसका निर्माण कार्य परवर्ती शासक महाराजा विनयसिंह के समय में पूर्ण हुआ और "नगर-प्रासाद" के नाम से विख्यात हुआ। स्वर्गीय महाराजा जयसिंह ने नगर-प्रासाद को अन्तिम अभिवृद्धि से सम्पन्न किया। इसके अन्तर्गत उन्होंने प्रासाद के उच्च-तम भाग पर एक ही पंक्ति में तीन प्रशालाओं का निर्माण कराया जिनमें उनके सामन्तों को नृत्य, नाटक, सांध्य-भोज एवं संगीत कार्य-क्रम के लिये एकत्रित होने के लिए स्थान मिला।

अलवर संग्रहालय में लगभग अलवर के सभी शासकों का योगदान रहा। इन सब में महाराजा विनयसिंह का योगदान सर्वथा अधिक रहा। उनके जीवन-काल में अत्यधिक मूल्यवान वस्तुओं को जिनका इतिहास एवं कला की दृष्टि से बहुत महत्त्व रहा है, अलवर-कोष में एकत्रित किया गया। इसी प्रकार से उनके समकालीन महाराजा बलवंतसिंह, ने जो तिजारा के शासक थे, अपना विशेष योग दिया और संग्रहालय को सम्पन्न किया।

प्रारम्भ में समस्त संग्रह को नगर प्रासाद के कई कक्षों में विभिन्न भागों में जैसे—तोपखाना, गुणीजनखाना, पुस्तकालय, सलेहखाना में व्यवस्थित किया गया था। यह केवल उत्कृष्ट-कोटि के व्यक्तियों के लिये ही केवल मात्र सीमित था, जो या तो राज्य के अतिथि होते थे अथवा शाही कुटुम्ब के सदस्य।

सन् १९४० में तत्कालीन प्रधानमंत्री मेजर हार्वे के तत्वावधान में उपरोक्त विभाग इस प्रारम्भिक स्थान से परिवर्तित किये गये और उनको नगर-प्रासाद की सर्वोच्च मंजिल पर तीन प्रशालाओं में प्रदर्शित किया गया। प्रारम्भ में टिकट द्वारा प्रवेश सम्भव था। यह व्यवस्था १९५६ तक जारी रही। प्रशालाओं की व्यवस्था और वस्तुओं का प्रदर्शन मुख्यतः वैयक्तिक अभिरुचि के आधार पर किया गया।

इस संग्रहालय के मुख्य रूप से चार भाग हैं—

(१) मूर्तियाँ तथा शिलालेख।

(२) कला एवं हस्तकौशल की वस्तुएँ।

(३) चित्र तथा पाण्डुलिपियाँ।

(४) अस्त्र तथा रक्षण-भूषा सम्बन्धी वस्तुएँ। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है—

मूर्तियाँ तथा शिलालेख—

लगभग एक दर्जन मूर्तियाँ तथा नौ शिलालेख प्रशालाओं के प्रवेश द्वार पर एक छोटे से कमरे में प्रदर्शित किये गये हैं। मूर्तियाँ मुख्यतः नीलकण्ठ, सैंथली तथा अलवर के दो प्राचीन

मन्दिर स्थलों से प्राप्त की गयी हैं। ये मूर्तियाँ प्राय मध्यकालीन युग अर्थात् ११वी-१२वी शताब्दी की देन है। इनमे नृत्य-मुद्रा मे गणेशजी की प्रतिमा महत्त्वपूर्ण है, जिस पर ११०१ विक्रम संवत लिखा हुआ है। एक अन्य मूर्ति विष्णु तथा पार्वती सहित शिव की है। जैन तीर्थङ्करों की श्वेत संगमर्मर के पत्थर पर कुछ प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। इनमे से एक पर १५१० विक्रम संवत अकित है। कुछ शिलालेख देवनागरी लिपि में संस्कृत तथा हिन्दी-भाषा मे लिखे हुए हैं जो कि बहादुरपुर, मार्चंडी तथा अलवर के विशिष्ट स्थानो से प्राप्त हुए है, कन्नौज के राजा विजयपालदेव के गुजर प्रतिहारमत्री मथनदेव का १०१६ विक्रम संवत् का प्रसिद्ध "कुटिला" शिलालेख जो नीलकण्ठ से प्राप्त हुआ है इस संग्रहालय मे विद्यमान है। इसके अतिरिक्त नौगावाँ एव तिजारा से भी फारसी मे लिखित तीन महत्त्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनमे १४८३ ई० का बहलोल लोदी का शिलालेख सबसे पुराना है। इस शिलालेख से इस बात का पता चलता है कि नौगावाँ के दुग तथा मीनार के द्वार का बहलोलशाह के राजत्व काल मे पुन निर्माण किया गया था। दूसरा शिलालेख अकबर महान् का समकालीन १५८१ ई० सन् का है। यह नत्थू धूसर के पुत्र शाहबाजखान तथा सरवरखान दो भाइयो द्वारा नौगाँव के कस्बे मे एक कूप निर्माण की ओर सकेत करता है। तृतीय शिलालेख सिकन्दर ईसवी का १६०४-५ का है इस पर स्नानागार के निर्माण की तिथि अकित है। ये शिलालेख संग्रहालय मे सुव्यवस्थित एव सुरक्षित रूप म विद्यमान है।

कला एव हस्त कौशल की वस्तुएँ—

विभिन्न कलाओ तथा हस्तकौशल की विभिन्न वस्तुओ को प्रशाला के प्रथम कक्ष म नियोजित किया गया है। य विभिन्न कलाओ के नमूने विशेषत (अलवर) राजस्थान, भारत तथा विदेशो से प्राप्त किये गये हैं। इनमे मुख्यत वेश-भूषा, काष्ठ-कला, प्रस्तर एव हाथी दात की वस्तुएँ, अलवर राज्य भवन निर्माण के प्रतिरूप नमूने, वाद्ययत्र तथा मसाले मे युक्त पशु-पक्षी है।

वेश-भूषा के अन्तगत सस्थापक शासक विनयसिंह का साफा, अगरखा तथा स्वर्गीय महाराजा जयसिंह का "विवाह जामा" मुख्य हैं। उन पर भव्य कसीदाकारी उनके निर्माताओ के हस्त-कौशल का जीता-जागता स्मरण कराती हैं।

वारनिश की चित्रकारी तथा कश्मीर से प्राप्त आबनूस की लकडी के सदूकचो पर हाथी दात की पच्चीकारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मैसूर के सदल काष्ठ मे बने शृगारदानो पर पक्षियो, पशुओ तथा पत्रो के गुच्छो की नक्काशी अपना द्वितीय स्थान रखती है।

जेड पत्थर से बने उपकरण भी अद्भुत हैं। कलमदानो तथा जेड पत्थर से बने छोटे आकार के फूलदानो पर जो सजीव मीनाकारी की गयी है वह कला प्रेमियो की प्रशसा की अधिकारणी है। हाथी-दात की चीन से प्राप्त थाली, पखे, एक गेंद मे पाँच गेंदें तथा शिकार करने की वस्तुएँ आदि उच्च शिल्प शैली के नमूने है।

महाराजा विनयसिंह के विनय विलास जो आज राजर्षि कॉलेज के नाम से जाना जाता है, सरिस्का के महल, पशु पक्षीविहार, स्वर्गीय महाराजा के माऊँट आबू पर बने जय विलास

आदि के छोटे प्रतिरूप नमूने जो वास्तविकता से परिपूर्ण हैं संग्रहालय की प्रथम प्रशाला के परिवेश में देखने को मिलते हैं। ये सुन्दर प्रतिरूप इस बात को प्रमाणित करते हैं कि अलवर के शासक भवन-निर्माण में गहन अभिरुचि रखते थे।

शाही चिह्न को इसी शाला मे प्रदर्शित किया गया है जो इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इसे तत्कालीन दिल्ली के सुलतान शाहआलम ने १७७९ ई० में राज्य के संस्थापक को प्रदान किया था।

कुछ पशुओं एवं पक्षियों में इस क्षमता से मसाला भर कर इस प्रकार से निर्दिष्ट किया गया है कि ग्रामीण एवं बालक जब उन्हें देखते हैं तो भौचक्के रह जाते हैं। इसी प्रकार से एक अन्य आकर्षणकारी चांदी से बनी हुई मेज है। इस मेज के निचले भाग में एक ऐसा यंत्र है जिसकी प्रक्रिया से मेज के ऊपरी भाग में मछलियों के जल में तैरने का सा आभास होता है। यह स्थानीय उत्पादन है, जिसे लाला नन्दकिशोर ने शिल्पित किया था। यहाँ पर प्राप्त वाद्य यन्त्रवीणा, सितार, दिलरुबा, पखावज, सुरमंडल एवं सुन्दर वस्त्र-मंडित ढोलक अपने समयानुसार नक्काशी तथा मनमोहक चित्रकारी के कारण कला के नमूने माने जाते हैं।

अन्त मे प्रत्येक आगंतुक को लुभाने वाला उल्का पत्थर का खंड है। यह बानसूर (जिला अलवर) में १८९२ में गिरा था। इसी प्रकार एक अन्य लचीला पत्थर का खण्ड है जो चरखी दादरी-हरियाणा से प्राप्त हुआ है।

चित्र तथा पाण्डुलिपियाँ—

संग्राहलय के मध्य की प्रशाला अपनी सूक्ष्म कारीगरी एवं सचित्र हस्तलिपि के संग्रह के कारण समस्त आये हुए आगंतुक विद्वानों का एवं दर्शकों का ध्यान बटोरती है। चित्रों को भित्तियों के अविरुद्ध दृष्टिक्रम पर प्रदर्शित किया गया है। ये चित्र मुख्यतः राजस्थानी एवं मुगलकालीन चित्रकला के प्रमुख उदाहरण हैं। यहाँ पर राजस्थानी शैली अलवर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, बूंदी और किशनगढ़ प्रणालियों में विभक्त है।

इसके अतिरिक्त संग्रहालय में सोलहवी शताब्दी के आस-पास के दो मंत्रियों के सुन्दर एवं पूर्ण सजीव चित्र विद्यमान हैं, जिन्हें मुगल कालीन शैली के नमूने कहा जा सकता है। इसी प्रकार अन्य चित्र बाबर, हुमांयू, जहाँगीर आदि के हैं जो सत्रहवी शताब्दी के चित्रों में प्रमुख हैं। कुछ लघु-चित्र भी हैं जिन पर शाही मोहर का निशान मुद्रित है। कुछ महाकाव्य के विषय जैसे लंका-दहन, अशोक-वृक्ष के नीचे सीता जी का चित्र भी मुग़ल शैली में चित्रित है। ये उन्नीसवी शताब्दी की चित्र अभिव्यक्ति हैं। सम्राट शाहजहाँ, मुमताज तथा अन्य व्यक्तियों के विशाल एवं सुन्दर चित्र हैं जो उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ की चित्रकारी के दृष्टान्त कहे जा सकते हैं। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त की सम्पूर्ण मुगल शैली की राग-रागनियों का चित्रण दो पर्दों पर प्रदर्शित है।

संग्रहालय में एक अत्याधिक चित्ताकर्षक दृष्टान्त-चित्र है, जिसमें अकबर "शाह" द्वितीय (१८०६-१८३७) का जुलूस प्रदर्शित किया गया है। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ का यह

चित्र दिल्ली के मुहम्मद इसमाईल द्वारा दिल्ली शैली मे अकित किया गया है। इसमे सम्राट अपने शाही ठाठ-बाट सहित हाथी पर विराजमान हैं तथा इसकी पृष्ठ-भूमि मे लाल किला चित्रित है। इस जुलूस मे राज्य मे स्थित अग्रेज अफसर और उनके कर्मचारी भी शामिल हैं। इसी प्रकार का एक और अन्य जुलूस चित्र विशालाकार मे अलवर शैली मे भी उपलब्ध है। यह बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ का है। इसका निर्माण श्री रामसहाय नैपालिया ने किया था जो सग्रहालय के भूतपूर्व कलाकार थे। इसमे स्वर्गीय महाराजदेव जयसिंह के शाही ठाठबाट को दिखलाया गया है। महाराज हाथी द्वारा चलाये जाने वाले इन्द्र विमान पर विराजमान हैं।

राजस्थानी चित्र मुगल चित्रो से मुख्यत विशिष्ट पद्धति के कारण विचित्र है। वे चमकदार एव सपाट रगो तथा रेखाओ मे अकित हैं। इनके उदाहरण बूँदी-कोटा तथा उदयपुर प्रणालियो मे पाये जाते हैं। दूसरी प्रणालियाँ जैसे जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा अलवर भी यथोचित मुगल शैली से प्रभावित हैं। इनके विषय बडे बडे चित्र जो कि शिकार के दृश्य, रागरागनियाँ, बारह मासा नृत्य करती तथा क्रीडा करती प्रेमिकाएं आदि से सम्बन्धित हैं।

समस्त सग्रह मे उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ काल के किशनगढ प्रणाली के केवल दो ही चित्र विद्यमान हैं, जिसमे से एक में महाराज ईश्वरीसिंह को अपनी अर्धांगिनी के साथ छज्जे पर खडा हुआ दिखलाया गया है। इसी प्रकार से उन्नीसवी शताब्दी के राजस्थानी शैली मे श्री गौराग महाप्रभु का भी एक उत्कृष्ट नमूना उपलब्ध है, इसमे मुख्य चित्र-कृति पर बगला लिपि में परिचय दिया हुआ है।

सचित्र ग्रन्थो का सग्रह भी चित्रो से समान रूप मे सम्पन्न है। ये सग्रह शीशे की सुन्दर अलमारियो मे प्रदर्शनार्थ रखे गये हैं। ये सग्रह लिपि के आधार पर विभाजित हैं। ये सग्रह चित्रित एव सुसज्जित हैं साथ ही इनका सुलेखन अपने आप मे ही कला गिना जाता रहा है। फारसी के सुलेखो मे "वाकियाते बाबरी" अथवा सम्राट बाबर की स्वलिखित जीवन कथा सबसे पुरानी है। मूल ग्रन्थ तुर्की मे था। वर्तमान प्रति को ९३७ सन् हिजरी अथवा सन् १५३० ई० मे हुमायूँ के काल मे हिरात के अली उलकातिब ने फारसी भाषा मे नकल किया। इस पर सादुल्लाह मुहम्मद तथा अन्य चित्रकारो द्वारा मडित अठारह सुन्दर दृष्टान्त चित्र भी हैं। इसको अलवर के प्रसिद्ध जिल्दसाज अब्दुल रहमान ने ग्रथ के आकार मे ग्रथित किया था। ग्रथ के अन्त मे हुमायूँ की मोहर का एक, अकबर के दो, जहागीर का एक तथा शाहजहा के दो निशान मुद्रित हैं।

इसके बाद हमारी भेंट बोस्तान अथवा कविता सग्रह मे होती है जिसे तेरहवी शताब्दी के शेख सादी ने मूल रूप से लिखा था। १५३८ ईसवी मे मुहम्मद बिनइशाक ने सुन्दरता के साथ इसकी प्रतिलिपि तैयार की। इस पर दस रगीन दृष्टान्त चित्र हैं। इस पाण्डुलिपि का अक्षर लेखन उत्कृष्ट है। साथ ही सग्रहालय मे शेख सादी द्वारा लिखित प्रसिद्ध गुलिस्तान अथवा गुलाब का उद्यान की प्रतिलिपि भी यहाँ उपलब्ध है। इसको १२५८ ईसवी सन् मे लिखा गया था, जिसे तुर्कमान अकबर कुटुम्ब के छटे बादशाह अबूबक्र को समर्पित किया गया।

इस ग्रंथ के आठ अध्याय है, यथा—(१) बादशाहो के नियम-संयम (२) दरवेशों (साधु सन्यासियो) के नियम सयम (३) संतोष की उत्तमता, (४) मौन से लाभ, (५) प्रेम तथा यौवन (६) निर्बलता तथा वृद्धावस्था, (७) शिक्षा की शक्ति और (८) आचार के एक सौ छः नियम। अलवर के महाराज विनयसिंह की आज्ञा से १८५६ में गुलिस्तान की अलवर मे प्रतिलिपि तैयार की गयी। कहा जाता है कि इसके प्रत्येक पृष्ठ की तैयारी मे पन्द्रह दिन लगे और समस्त ग्रंथ के अनुवाद मे कुल बारह साल लग गये। इसमे सत्रह सुन्दर रंगीन दृष्टान्त चित्र भी शामिल है जिनको अलवर के बलदेव एव दिल्ली के गुलामअलीखान ने चित्रित किया था। इस सुप्रसिद्ध हस्तलिपि पर दिल्ली के आगा मिर्जा का सुलेखन का कार्य है। अलवर के प्रसिद्ध अब्दुल रहमान ने इसे सुनियोजित ढंग से चमड़े से सजिल्द किया।

इस प्रसंग के अन्तर्गत सुन्दर कुरान का उल्लेख भी आवश्यक है इसे महाराजा विनयसिंह ने तीन हजार रुपये तथा सम्मानीय पोशाक देकर एक मुसलमान यात्री से खरीदा था। हाशियो में कर्ण-रेखाओ में इस पर व्याख्या दी गयी है। शीर्षक हल्के नीले अक्षरो मे पृष्ठ के ऊपर मध्य-भाग में दिया गया है। कुरान की आयते अरबी मे गहरे नीले अक्षरो मे तथा नीचे फारसी मे लाल अक्षरों मे अनुवाद दिया गया है। समस्त पृष्ठ मुख्यतः सुनहरी स्याही में उत्कृष्टता से सुसज्जित है।

इसके अतिरिक्त ११७४ हिजरी मे नकीबखान द्वारा फारसी मे अनूदित महाभारत की प्रति है। १८८६ विक्रमी सवत में शंकर नाथूराम द्वारा लिखित एवं बिहारीलाल द्वारा अनूदित भगवत-गीता की प्रतिलिपि, १८२० का सिकन्दर नामा, हफ्ते औरंग, १०९५ सन् हिजरी के संतों के प्रति उपदेश, १२१२ हिजरी सन् का अकबर नामा दिवाने हाफ़िज, जिसका दिल्ली के आगा मिर्जा ने १८३३ ईसवी सन् में अनुवाद किया था, आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की प्रतिलिपियां संग्रहालय मे मौजूद है।

संस्कृत मे कुण्डलीकृत कागज पर लिखित कुछ हस्त प्रतिलिपियां भी यहां पर विशेषतया संग्रहीत हैं। सम्पूर्ण महाभारत का सुन्दर सचित्र दस्तावेज भी है जो प्राप्त रूप मे दीर्घहस्त निर्मित काश्मीरी कागजपर लिखित अपनी सूक्ष्म लिखावट के कारण आगंतुको के मनोभावों को आकृष्ट करता है। इसी श्रेणी के अन्तर्गत अन्य दूसरे ग्रथ—भगवान शिव-कवच, गीत-गोविन्द तुलसीकृत रामायण भी आते है, जो सुन्दर ढंग से सुनहरी एवं चाँदी के सदृश्य स्याही मे लिखित है।

अस्त्र एवं युद्ध में पहनने की रक्षण-भूषा—

अन्तिम प्रशाला राजस्थान के गौरव एव शासकों के अपार वैभव को प्रदर्शित करती है। यह प्रशाला सुव्यवस्थित और अनुकूलित वातावरण से सुसज्जित है। प्रदर्शित पदार्थों को मुख्यतः दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है। रक्षात्मक एवं आक्रामक कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुएँ भी सुरक्षित है यथा—मुगल सम्राटों व अलवर के शासको की चमचमाती तलवारे, मुहम्मद गौरी का जालीदार कवच और इंदौर के जसवंतराव हुलकर का ठोस फौलाद का कवच। इसके साथ-साथ उस चीनी छतरी का भी

उल्लेख करना नहीं भूला जा सकता, जिसे अलवर के सिपाहियों को अंग्रेजों ने सन् १६०० में चीन के विरुद्ध युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में प्रदान की थी।

यद्यपि इस अणु-युग में ढाल, लोह-टोप, जालीदार कवच तथा कुटरास जैसी रक्षण-भूषा का कोई महत्त्व नहीं है, परन्तु यह कहना असंगत न होगा की जब लोग तलवारों तथा तीर-कमानों से लड़ते थे तो ये कितने आवश्यक रहे होंगे। इन शस्त्रों पर स्वर्ण तथा रजत में की गयी सुन्दर बेल-बूटों की चित्रकारी का कार्य नारी आभूषणों से किसी भाँति कम नहीं है। कुछ तलवारों एवं छुरियों की मूठें कीमती जेड पत्थर से बनी हुई हैं। इन तलवारों एवं छुरियों की म्यानें भी अपने कलात्मक कौशल के कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। एक म्यान में दो तलवार सभी आगन्तुकों के आकर्षण का केन्द्र है।

अलवर संग्रहालय की तलवारों को मोटे रूप में ईरानी व देशी भागों में बांटा जा सकता है। यहाँ की कृपाणों में कटार, खंजर, पेशकबज सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त चाकू, धनुष-बाण, तबर फर्सी जगनत (नाकेदार कुल्हाड़ी) कमन्द (रस्सी की बनी सीढ़ी) जम्बूरा (उष्ट्र बन्दूक) और देशी बन्दूकें तथा तुर्रेदार, पत्थर कला और टोपीदार अपना अद्वितीय स्थान रखती है। सुन्दर सुन्दर भाले जो फौलाद एवं हाथी दांत के नवीन रंगों से सुसज्जित हैं संग्रहालय में संग्रहित है।

उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि अलवर का संग्रहालय एक प्रकार से सामाजिक एवं सैनिक ढंग का है। संग्रहालय अपनी समस्त गतिविधियों सहित शुक्रवार के अतिरिक्त सप्ताह के शेष समस्त दिनों के लिये खुला रहता है। ग्रीष्मकाल में यह १५ अप्रैल से १४ जुलाई तक दो नियमित परिवर्तनों में प्रात ७-३० से १०-३० बजे तक तथा अपराह्न ३-३० से ६-३० बजे तक तथा शरद काल में १५ जुलाई से १४ अप्रैल तक प्रात १० बजे से अपराह्न ५ बजे तक यह संग्रहालय अपने कार्य-समय का पालन करता है। इस प्रकार से अलवर राजकीय संग्रहालय का अपना विशिष्ट स्थान है।

सृजन और सृजन

अलवर—

झर सों लै चरखा रु दादरी लौं दाब्यो राज, ये तो हद्द आज पास साबी बसवेन के,
एक राजगढ सौ सुधाये गढ बावन त्यौं, राउ बने भूप बल बाहु अपनेन के,
'अक्षय' प्रतापसिंह वारे समैं ढारे ढंग, ढाई गाव सौं हजार ढाई बसवेन के,
झुके नहिं, छक्के शत्रु के छुड़ान, जम के से, रुके रूप, न रुके कृपान नरुकेन के।

× × ×

हिन्दुस्तान राजधानी देहली समीप आज, राजस्थान की तो यह देहली सुघर है,
जब्यो बाखी सदी निकुंभ रच्यो किला, नीचे, अक्षय' अनोखो ऐतिहासिक नगर है,
सजल रसाल फल फूल शस्य श्यामल भू, शुद्ध जल वायु बाढ चढ को न डर है,
सारो सुख साज जहाँ 'तेज' नृप वारो राज, प्यारो वही हम कूँ हमारो 'अलवर' है।

—डा० अक्षयसिंह 'रत्नू'

अमर-स्मारक : छतरी मूसी महारानी—

अलवर के स्व० महाराव राजा बख्तावरसिंहजी के साथ उनकी पड़दायत मूँसी महारानी सती हुई थी। राज महलों के पीछे उनका विशाल स्मारक स्थापत्य कला का अनोखा नमूना है, उसी का भावुकता पूर्ण-चित्र कवि ने इस कविता मे अंकित किया है।

अरे राजपूताने के शुभ गौरव, शिल्प कला के प्राण।
ओ, नारी जग के पावनतम, मंगल मय आदर्श महान ॥
महा महिम मूसी रानी के, अमर स्मारक पुण्य प्रकाश।
अडिग अरावलि के अचल में करते कब से समुद विलास ॥
अरे तपस्वी सागर तट के, सह-सह कर हिम आतप वात।
बन पाषाण साधते हो तुम, मूक साधना यह दिन-रात ॥
किसके यह पद-चिह्न हृदय में धारण करके ध्यान निमग्न।
भोग रहे एकान्त भाव से, सुख-समाधि तुम हो संलग्न ॥
अनुपम हिन्दू-संस्कृति की, दो मणियों का तेरा उर-हार।
जिस पर सारा विभव विश्व का, बलि २ जाता शत-शत बार ॥
तेरी प्रति पाहन-पटिया पर, अङ्कित नारी जीवन मन्त्र।
कूक-कूक कल कण्ठी जिसका, देती है सन्देश-स्वतन्त्र ॥
वंसी निर्मित अरुण धरा पर, सँगमर्मर का गुम्वद श्वेत।
मानो शोभित मंगलग्रह पर, कलित कलाधर कान्ति-निकेत ॥
अथवा मानस-विद्रुम-तट पर बैठा मवजु मराल नवीन।
या अनुराग भरी वसुधा-वधु का है कठिन पयोधर पीन ॥
या है कोमल कमल सम्पुटित, रसमय सुख-सुषमा का भौन।
रहते जिसमे दम्पति मधु-व्रत, करते मधुमय गुञ्जन मौन ॥
लटक रहा है अथवा नभ में, मञ्जुल सँगमर्मर का झाड़।
या संकोच भरा उभरा सा, बख्तावर-ललना का लाड़ ॥
सती-तेज से तड़प तड़प कर लेने को प्रस्तुत प्रतिशोध।
धरता उग्र रूप जब अपना कर-कर महा भयङ्कर क्रोध ॥
तब सरस स्नेह मे रस-घन, होते पुलकित प्रेम-अधीर।
उमड़-उमड़ आते पावस में, बरसाते है अविरल नीर ॥
घुमड़-घुमड़ विद्युत् चमकाते, करते रह-रह कर निर्घोष।
जगमे करते : फिरते मानों, हँस-हँस कर तेरा जयघोष ॥
और तुझे सागर से निकला, सुघड़ सुधा का कलश विचार।
तेरे आँगन में घन-शावक, करते भरने सुधा विहार ॥
तेरे पद-प्रक्षालन के हित, झरते रस-निर्झर अविराम।
लहराते नीहार-रजत कण, अमित उमंग भरे अभिराम ॥

झूम-झूम फिर शरद सुन्दरी, आती रस झूले मे भूल।
नभ मे तारो मिस बिखराती, तुझ पर अर्घ्याञ्जलि के फूल॥
नभ-गगा का श्वेत सरोरुह, उडा रहा है पूत पराग।
बरसाता है सुभग सुयस वह, ससृति मे भर-भर अनुराग॥
प्रतिबिम्बित हो सागर जल मे, बढ कर फिर लहरो के सग।
छूने को चरणारविन्द तव, भरता रहता अमित उमग॥
धन्य-धन्य पानिग्रन प्रतिमा, हे मूसी के अमर-सुहाग!
बलिहारी तव पद-पद्मो पर, कोटि-कोटि शत पुण्य-प्रयाग॥

—कविवर नाथूराम भारद्वाज।

विनय विलास—

रात
विनय विलास से एक छाया निकलती
है काले सन्नाटे मे बैठ विशाल दपण
मे अतीत देखती है।

आम और जामुन का गहरा जगल अमरूद
अनार नीबू से लदे कुँज गुलमोहर की जलती
आग सिरस की गन्धलहरियाँ देवदार के
चौडे पत्तो के बीच सफेद फूलो के गुच्छे
डूबता जाता है सब
समय की धूल मे मुरझा गये हैं कु ज आम
और जामुन की चिकनाहट बदसूरत लकीरो
मे खो गई है बाँझ हो गये है अमलतास सिरस
गुलमोहर के झुण्ड
पीछे के लघुवृक्षो म अजगर की विशालदेह
फैली है परिवर्तन-चक्र की अराओ मे टूक
टूक हो गये है उन्मुक्त अट्टहास प्रमोद उत्सव
विलास-रात्रियो के जागरण चटकीले रगो
के चेहरे झुरियो से भर गये हैं सँगमर्मर के
हाथो पर अधकार की मेहदी रचगई है शीशे
दरक गये है।

साँझ होते ही सन्नाटा उतर आता है अधकार
मे सब कुछ डूब जाता है।

विनय विलास से एक छाया निकलती
है विशाल-दर्पण मे झुक भविष्य
देखती ।

वृक्षों के शिखरो पर भरेंगे सात-रंग कुंजों
में कमरो में पगडण्डियों पर जागेगा शोर
जीवन साक्षी है कुंज कक्ष पगडण्डी
नये-नये चेहरे और नये-नये ब्लाक ।

—जुगमन्दिर तायल

खँडहरों का देश : भानगढ़—

खँडहरों का देश !

है पुरातन, दे रहा पर नित नए सन्देश ।

सो रहा है ओढ़ कर कितनी अँधेरी रात,
जग रहा है देख कितने जगमगाते प्रात;
रो रहा है शीश पर घनघोर ले बरसात,
सिहर उठता सहन कर धूप या हिम वात;

दब रहे अरमान युग-युग के अपूर्ण अशेष ।

हँस रहे हैं देख कर उसको वही वन फूल,
कब्र पर जुगनू दिये से चमक जाते भूल;
स्वच्छ मोते मे मिला जाती पवन भी धूल,
जो कभी अनुकूल थे वे सब बने प्रतिकूल;

है भयद जिसको कभी भी था न भय का लेश ।

गा रहे आज ग्वाले ही विभव के गीत,
मूर्ति-खण्डों में छिपा ऐश्वर्य-पूर्ण अतीत;
याद भी उसकी रही है अब दिलों मे बीत,
रह गई इस हार में ही आज उसकी जीत;

शशक प्रहरी द्वार के, करते शृंगाल प्रवेश ।

गूंजती है विजन में यह आज किसकी सांस,
लिख रही पगडंडियां किसका करुण इतिहास;
जा रहा है छोड़ निर्झर ढूँढने को प्यास,
मौन जगती, देखता कौतुक खड़ा आकाश;

प्रकृति का भी हो गया क्यों आज मैला वेश ।

आज कवि मत छोड तू वह अकथ भूला राग,
सुप्त पीडा जो कही इसकी पडी अब जाग,
उगलने लगी कण कण बस इसी क्षण आग,
और दुनिया चल पडी इस ओर जो गृह त्याग,
मग्न होंगे और कितने ही नगर अवशेष।

खँडहरों का देश।

—किंकर

बखत की बात

"अब तो लाला जमानो ई बदल गया। वे पुराना जमाना की बात रई नाय। ऐसे उड गई की कुछ खबी नाय जाय। बखत बखत की बात है, याही समझलो बस। नई तो कोई पहल्या सोचे भी हो कि ऐसा जमानो आयगा। बस तुम तो नया जमाना का हो। तुमने काई कू वा बखत देखो होयगा।" इतना कह कर चाचा रामदीन ने एक ठण्डी सास भरी। फिर उसने नीचे झुककर भट्टी की लकडी को थोडा आग सरकाया और बोला—

"अब तुम खो हो कि भूत जिन्न होवें ई नाय। लाला हमने तो आखो देखा है। अपनी आखो। वा सामने जो चौराया है न और वाके किनारे जो इमली खटी है न वापर एक भून रहैवे हो। हमने अपनी आखो स देखा हो। पहल्या वाकू भून वालो चौरायो खें हा। अब जानो काई नाम रख दियो है सुसरो मालीव (मालवीय) चौरायो करकें। पर पैले हम वाकू भून वालो चौरायो बोलबो करें हा। वा भूत दिन भर सोतो और रात कू बारा बज्या उठतो। रात भर वा पेड पर बैठ्यो रहतो। पर हो वा बडा सरीफ। किसी से कुछ खैता नाय। हा बस कबी-कबार भूख लगयाती तो आवा जावा वालान सें कुछ माग लेतो। पर काइ वाकू नट जातो तो वाकी खैर नाय रहती और जा चुपचाप चौराया पर घर जातो वासे वा कुछ खैतो नाय।"

चाचा रामदीन की दूकान कस्बे की मुख्य बस्ती से जरा अलग है। स्टेशन से जा सडक शहर को जाती है उस सडक के बीच में मालवीय चौराहे के पास बहुत समय से चाचा रामदीन दूध का व्यापार करते आ रहे है। मैली काली धोती। आधा बनियान आधा कुरतानुमा एक मैला वस्त्र। थोडी बढी हुई दाढी मूछें जो हजामत न कराने से बढ गई हैं। सिर पर थोडे बाल जो ज्यादातर सफेद ऐसे रामदीन चाचा अपने कपडो क समान काली दूकान पर बैठ रहते है। दुकान के नाम पर भट्टी पर बडी कडाई मे दूध, कुछ खोए की मिठाइया और जलेबी और लड्डू। दाल मठ और मौठ की दो थालियाँ। रोशनी के लिए हरीकेन लालटेन। दूकान के सामने सडक पर एक बेंच बिना सहारे की और दो तीन पुरानी कुर्सिया जिन पर मैल की परतें जमी हुई थी।

मैं और जगदीश प्रतिदिन जाते हैं दूध पीने। चाचा रामदीन बुजुर्ग आदमी हैं सो बुजुर्गों के समान किस्से सुनाने का उन्हें भी शौक है। पुराने समय के किस्सों का उनके पास अक्षय भण्डार है। आज भूतों पर चर्चा चल पड़ी थी।

चौराहे वाले भूत की बात सुनकर जगदीश ने कहा,

"चाचा। तुमने तो वह भूत देखा होगा"।

चाचा ने सिर हिलाकर स्वीकार किया, "एक बार नाय लाला भौत बार।" कुछ देर रुककर फिर बोले, "अब तो वे दिनई बीत गया। बाल अब सफेद हो गया। हाथ पैरों को दम भी ढीलो हो गयो। पर वा बखत हम जवान हा। भर सरदियाँ में मलमल को कुरतो पहनै घूमै हा, लाला जा पर जरी को काम होतो। बदन में ताकत ही तो कोई सुस्सरा को डर भी नाय लगै हो। रात कूं बारा-बारा बजे चौरायां पै घूमै हा। ऐसे ई एक दिन बारै बजे मैं एकलो आवै हो। हाथ में आध सेर रबड़ी को दोनों हो। अब कोई तुमसै खैवे कि आद सेर रबड़ी खालो तो तुम काहे की खा सको हो। पर हम आध सेर रबड़ी खड़ा-खड़ा खाजावैं हा। ऐसे ई बदन मे जान आवै ही। अब भर जवानी में लोगबागन का गाल मुरझा जावैं हैं और······।

चाचा को बात से हटते देखकर जगदीश ने टोका, हाँ, तो चाचा तुम बारह बजे रबड़ी का दोना लेकर आ रहे थे। फिर क्या हुआ?

"हाँ लाला तो मैं रबड़ी को दोनों लेकर बढचों आवै हो। रात का बारा बज्या को बखत हो। चौराया पर आयो तो अचानक आवाज आयी—ए जावा वाला रुकजा।

मैंने गौर से चारूंमेर निगा दौड़ाई पर कोई दीखो नाय। एक बर तो कंपकंपी आ गयी। समझ गयो कि भूत मिल गयो है। पर जी कड़ो करकै पूछ ही लियो—कौन है?

मैं हूँ—आवाज आयी।

तू कौण है? सामने आ—मैंने खयी।

मौकूं भूख लगी है। रबड़ी को दोनों रख जा। आवाज आयी।

अब तो मैं बिल्कुल समझ गयो कि भूत है। सुन रखो हो कि बड़ो सरीफ है सो घबरायो नांय। पर लाला मैंने मन में सोची कि आज देखूंगो जरूर। बोलो—क्यों धर जाऊं। मैं तो अपना खावा कूं लाया हूँ।

"मौकूं बड़ी जोर से भूख लगी है"—आवाज आयी। "मैं कांई करूं तो। लिया बाजार सैं"—मैंने जबाब दियो। "अब तू लायो तो है—वाने उत्तर दियो।" "तेरी खातर थोड़ी लायो हूँ—मैंने वासैं खयी।" "मैं खरूं हूं धरजा बस। नहीं तो आऊं"—वाने मोसैं खयी।

पर लाला मैने रवडी धरी नाय। अचानक काई देखू हूँ कि इमली की छाव मे एक आदमी खडो है। वही खडो वा आकास की तरफ बढवा लग्यो। बस लाला मैं तो भागो वही रबडी छोड-छाड।

एक बार की और बात बताऊँ लाला। तुम तो जिन कू भी नाय मानता होवोगा। पर मेरी दूकान पर आयो हो जिन पेडा लेबा। रात का बारा बजे हा। एक आदमी आयो कि लाला पान सेर पेडा दो। मैंने दिल मे सोची कि सालो या बखत कौन है पेडा लेबा वालो पर चुपचाप वाकू तोल दियो। गाहक की मरजी। वाने भट चादी का दस रुपिया मेरी तरफ फैंक्या। लाला वा समय कौए चादी का दस रुपिया देवें हो। पेडा सुसरा आठाना सेर हा। अब वा जमानो ही नाय रहो। सुसरी ऐसी तेजी कबी देखीई नाय। ये कागरेसी फैलें चिल्लावें हा कि या तेज है पर अब इनका राज मे ई देखो ना कैसी महगाई बढगी है। या सैं तो राजा को राज हजार गुनो अच्छो हो ।

"चचा वह जिन ।" मैंने टाका।

"हा लाला। तो असल मैं वा जिन हो। नई तो कौए यो चादी का दस रूपिया फैंक देतो। फिर वा बोलो—लाला एक आदमी बताबो। अब वा सुसरू मर गयो नई तो खुद पुछा देतो। गरीब आदमी हो। मीहनत मजूरी सैं पेट पालें हो। मैंने वाकू बता दियो। लौटकर आयो तो लाला मैंने वासे पूछी की खा गयो हो। वाने खयी कि वा मोकू एक महल मे ले गयो हो। सारो महल जगमग जगमग करें हो। भ्तटाइया चढी ही। बडी बडी मिठाइया धरीं ही। बाजा बाज रह्या हा। मैंने भी पडान की ढकोली एक कमरा मे रख दी। वाने मोकू हाथ मे कुछ दियो और खयी कि रास्ते में देखियो मत। लाला मैं लेके चलो आयो पर बाहर आकर दिल नाय मान्यो। खोल के देख्यो तो कोयलो। मेने फैंक दियो। लाला समझ मे आयी नाय कि काई बात ही।"

"मैं सब कुछ समझ गयो। असल मे वा जिन हो। तभी तो वाकी छाया नाय पड रही ही। लाला मैंने तो धियान नाय दियो फैले। अब मोकू धियान आयो। मैंने तो खयी बावला तेरी तो तक्दीर खोटी ही। वाने तो सोना का पासा दिया हा पर तूने वाकी बात नाय मानी। रास्ता मे देख लिया सो कोयलो हो गयो।"

एक ग्राहक आगया दूध लेने। रामदीन दूध बनाने लगा। वह लेकर चला गया। फिर बोला, "लाला बखत की बात है। या जमानो भी देखनो हो। अब हम या खैवें तो कोई माने ई नाय। कैसो जमानो आयो है कि कोई किसी का बिसवास ही नाय करे। भूत जिन्न लाला हमने अपनी आखो देखे हैं पर अब की बात ई अलग है। जाने काई हो गयो है जमाना कू। देर तो नाय हा रही है लाला। हमने तो हजारान भूत देखा हैं। अब वा चौराया की इमली वालो ही भूत हो। एक रोज को किस्सो मैंने सुनायो। फिर तो वासे दोस्ती ही हो गयी। भौत बार मैंने वाकू कभी रबडी और कभी इमरती दी।"

"चाचा उसने भी कभी कुछ दिया तुमको ?" मैंने पूछा।

"लाला दियो तो सब कुछ हो पर तकदीर ई खोटी ही। एक रोज बानै ख्यी कि लाला तुम भी कुछ लो। मैं खुस हो गयो। भूत जिन्न जब देवा कूं खै तो काई ठिकाणों। विनके पास कांई कमी है। मैंने खयी कि म्हैरवानी है आपकी। वा बोलो आज सुबह तड़के ही तेरा मकान से पचास कदम दूर चलकर जो पीपल है वाकी जड़ खोदियो बस। पर लाला मोकूं वा दिन चेत नाय हुयो। दूसरे दिन जाय खोदो तो ठीकरा मिला।"

चाचा रामदीन ने एक सांस भरी। घर आयी दौलत जाने का अफसोस फिर जाग उठता था। जेब से बीड़ी निकालकर उसने सुलगाई गम गलत करने को। बीडी सुलगा कर वह धुआं उगलने लगा। रात बढ रही थी। सड़क पर आना जाना कम होता जा रहा था। दूर मालवीय चौक के पास इमली का पेड़ शान्ति से खड़ा था और उसकी गहरी छाया चांदनी भरी सड़क के एक अंग को काला बनाए थी। मैं मन मे सोच रहा था कि कैसा था वह जमाना ? जब चाचा रामदीन को यहाँ भूत मिला करता था और क्या अब भी वह भूत यहाँ रहता है तो हमे कभी क्यों नही मिलता ? मैंने चाचा से ही पूछना ठीक समझा", चाचा वह इमली वाला भूत अब भी रहता होगा ?

सवाल सुनकर चाचा ने सिर हिलाया, "अब खां का भूत लाला सबकी अबध होवै है। जानै खां गया भूत जिन्न। अब तुम सैयद की बात लो। मुसलमानों के कितने सैयद थे। सहर में। विनने हिन्दू भी माने हा और मुसलमान भी। सुकरवार कूं परसाद बंटै हो और सब लेवे हा। रात कूं बारा, एक बजे सैयद महाराज की सवारी निकलै ही चौरायां पर सैं। भूत जिन्न पेडां पर सैं फूल बिखेरता। पर बखत की बात है। झगड़ा का दिनन में लोग बागन ने सगली कबर खोद गेरी और फैंक दई और कुछ भी नांय हुयो। सबकी अबध होवै है लाला। विनको बखत बीत गयो और वे चला गया। अब देखो सब यों रात-बिरात मीठा-खट्टा खाके घूमे हैं। पैले मजाल ही कि कोई ऐसैं घूम जाय।"

चाचा की बातों का कोष खतम हो रहा था। हम भी दूध पी चुके थे और जाने की सोच रहे थे। जगदीश ने उठकर पैसे दिये। पैसे गिनते हुए चाचा का जोश आखिरी बार उभरा, लाला तुमारा दोस नाय, दोस जमाना को है। बखत ही बदल गयो है न तो कभी हो सकै है ऐसी बात। तुम सच नांय मानों। जाने भूत जिन्न भी खां चला गया। वा जमाना में हर चौरायां पर भूत रहे वैं हा। लोग ऐसा डरैं हा कि झूंठ खैवा पर भी सच मान लूवैं हा। अब एक बार को किस्सो सुणो। एक मकान हो लम्बो-चौड़ो आलीसान। मैं वाकूं खरीदबो चाहवै हो पर मालिक दाम ज्यादा मांगे हो। मैंने कांई कियो कि आठ दस आदमी बुलाया। दो-दो रुपया विनकूं दिया और खयी कि रोज रात कूं बारा बजे वा मकान पर पत्तर फैंकवो करो। बस कांई हो थोड़ा दिनन में मकान भूतहो हो गयो। मैंने वी सबसे ख्यी कि वा मकान में तो भूत जिन्न और परियां को नाच होवे हो। बस थोड़ा सा दिन में लाला दस हजार को मकान पांच हजार मे पट गयो।"

—जुगमन्दिर तायल।

दिन के उजाले में अलवर

भोंओ ऽ ऽ ५ के भोंपू के चिंघाडने से पूर्व ही अलवर की खास सडकें आवारा कुत्तों की तरह दौडने लगती हैं। जगदीशजी के मन्दिर के पंडितजी अपने ईश्वर को जगाना प्रारम्भ करते हैं। त्रिपोलिए के महादेवजी भी घडियालों की टंकार से आँखें मलते हुए जागते हैं और मोहल्लों के धोबी, कुम्हार, अपने गधों को हाँकते हुए शहर से बाहर चल देते हैं। कलसियों, मटकों और बटलोइयों की भीड नल पर एकत्रित होती है और जरा-जरासी बात पर उनमें कभी-कभी सर फुट्टवल की नौबत भी आ जाती है। कई बार नलदेवता अपनी आँखें मूँद लेते हैं और कलसिये, बाल्टियाँ मटके आश्चर्यान्वित होकर आपस में बतियाने लगते हैं तथा जल विभाग को गलियाने लगते हैं। खैर—

सूरज उगने से पूर्व तक चौथाई अलवर खर्राटे भरता रहता है। उन्हें जगाने के लिए ८ का भोंपू फिर चिंघाडता है—भोंओ ऽ ऽ और ८ के भोंपू पर खेतों का, मजदूरी का कार्य आरम्भ हो जाता है। जो मजदूर गिद्ध और कौवों की भाँति ६ बजे से ही त्रिपोलिए के गुम्बद की छाया में एकत्रित होते हैं, उन्हें रोम के गुलामों की भांति ८ घंटे के लिए ?) से लेकर ५) रुपए तक की मजदूरी में खरीद लिया जाता है तथा ८ घंटे में काम के साथ-साथ भैंचो (अलवर की खास गाली, जिसका जिक्र किए बिना अलवर का व्यक्तित्व अधूरा है) की गालियों से समय समय पर उन्हें डाटा जाता है।

रात को चोरबाजारी करने वालों तथा क्लबों में १ बजे तक ताश खेलने वाले अफसरों और *दूकानदारों को खटखटाने के लिए एक और भोंपू ६ बजे चीत्कार उठता है। जादूटोने की भांति* बाजार की दूकानें जाग उठती हैं और वेश्या की भांति दिन दोपहर सजने लगती हैं। व्यापार शुरू होता है मान चांदी का, कपडे-बर्तन का, रेडियो-ट्रान्जिस्टरों और मशीनों का। ६ बजे से ६ बजे तक सब्जी-मण्डी में मछली बाजार की सी कांय कांय होती है वह देखते ही बनती है।

६ बजे बाद से ही एक भीड कचहरी की ओर चल पडती है और शहर के बच्चों का हुजूम स्कूली कठघरों में बन्द होने के लिए सडक पर नाले की भाँति बह निकलता है। ४ बजे सन्ध्या से प्रातः ६ बजे तक ऊँघने वाले विशाल-भवन लडके और लडकियों की चकचकाहट से भर जाते हैं। प्रार्थना होती है। जन-गण-मन के साथ 'जय हिन्द' के नारे लगते हैं। देश-प्रेम के पाठ पढाये जाते हैं, पर वही भीड हडताल के मूड में सारे शहर में अराजकता फैला देती है। आक्रोश फैलता है आग की तरह। पथराव होता है ओलों की तरह और आंसू गैस से लेकर गोलियां तक बरसने की नौबत आ जाती है। दोष कहां पर है, इसे कोई जानने की चिन्ता नहीं करता है ?

बस स्टैण्ड और कटले का स्वर भी दिन के उजाले के साथ तीखा हो उठता है। बसें गुर्राने लगती हैं और ट्रक घुर-घुर करते धुआं पादते सडकों की छाती छीलने पर उतारू हो जाते हैं। कटले के व्यापारी झूँठ और सच का व्यापार शुरू करते हैं। अनाज की बोरियाँ कभी गहरे गोदामों में छिपा दी जाती हैं, तो कभी मँहगाई में ढेरियाँ जमीन पर ऊघती नजर आती हैं।

रिक्शे और ताँगे इधर से उधर भटकते नजर आते है। पान की दूकान पर स्कूटर खड़े होकर शहर की राजनीति से लेकर चटपटी खबरो तक का बखान करने लगते है।

मछलीमारो की भाँति दूकानदार ग्रामीण मेव-मीणो को फँसाने लगते है। गुड़ की भेली से लेकर इमरती और पंजाबी कलाकन्द तक की खरीद-फरोक्त होती रहती है। असली रौनक रहती है होपसर्कस के चारों ओर। कुछ लोग होपसर्कस के चारो ओर की दूकानो के ऊपर कार्यालय खोले बैठे है और बड़े व्यापारी उनके नीचे की दूकानो में आते-जाते ग्राहको को पटीलते है। होपसर्कस की पटरी पर एक और भीड़ है जो कही उस्तरा चला रही है और कही राँपी। सुबह ९ बजे से लेकर संध्या तक उनकी आँखे लोगों की दाढी और जूतो पर ही रहती है। उन्हें पता नहीं होपसर्कस की रौनक क्या होती है ?

लोग दिन के उजाले में पैसा बटोरते है और सड़क नम्बर दो पर या और कही एक बड़ा सा मकान बनवा कर जीवन मे संतोष कर लेते है। यही है उनका जीवन और ऐसी ही है उनकी दिनचर्या।

सूरज ढलने से पूर्व ही कचहरी की भीड़ वापिस लौटने लगती है। नपुंसक कानून को वकील लोग बिलोते है और अफसर लोग जनता की पीठ पर उसे चिपका देते है। कुछ लोग हँसते है और कुछ लोग कानून को तथा फैसला करने के तरीके को गलियाते है। स्कूल और कॉलेज की भीड़ भी वापिस दड़बों मे छिपने के लिए मुर्गी के चूजों की भाँति शहर की गंदी गलियों में लौट पडती है। लगता है जैसे सूरज जो सब देखता है उसने शर्म के मारे सीलीसेड़ के बाँध में छलाँग मारली है लोग-बाग नकली जीवन जीने के आदि है, इसलिए धीरे २ पूरे शहर में नियोनलाइट और लट्टू जल उठते है। अलवर शहर उस उजाले में रंगीन दिखने लगता है, पर उस रंगीनी का चित्रण करना मेरे वशकी बात नहीं है।

रात की बाँहों में अलवर

रात के आठ बजे साइरन की आवाज सागर की छतरी पर बैठे हुए बहुत हलकी-सी सुनाई देती है। अजायबघर की छत से फिसल कर चाँद जैसे सागर में डुबकियाँ लेने को होता ही है। इस समय सागर भी बेचैन हो उठता है और लहरों पर लहरें उठती हुई दूर तक चली जाती है। मन होता है इस शान्त चाँदनी में नौका भ्रमण का। सागर के शरीर को अँगुलियों से सहला लेने का। काश ! यहाँ ऐसा हो सकता। बस, यह तो नाम का ही सागर है। न यहाँ कोई नाव है और न ही कोई मल्लाह। है तो चारो ओर तरतीब से बनी हुई सीढ़ियों की कतारें, धुंधला गई छतरियों की गुम्बजें, जिनके वीरानेपन को देख क्षण भर में मन मायूस हो उठता है। इच्छा हो आती है उठकर ऊपर चले आने की, जहाँ मूसी महारानी की छतरी का लाल सुर्ख रंग आँखों मे एक रंगीन मस्ती घोल देता है। थोड़ा झूमते उतर पड़े कि सचीवालय का सूनापन अपने में घेर लेता है। जहाँ पर दिन भर मेला-सा रहता है वहां कहीं भी कोई चेहरा नजर नही आता, वकीलों व अन्य लोगो की कैंची की तरह चलती जबानों का शोर कई बार तो कानो तक के पर्दे

झनझना देता है। रात के समय तो केवल हवा ही दीवारों से टकरा टकराकर सूं-सूं की आवाज में बातें करती है। दिल उठने बैठने-सा लगता है, जैसे एक कदम आगे ही पीछे से कोई जकड़ लेगा, गला घोंट देगा और मुंह से निकली सिसकियाँ धीरे-धीरे सूं सूं करती हवाओं में ही बंद हो जायेंगी। एक अजीब-सी घबराहट के साथ कदम बढ़ने पर ऊपर आसमान को चूमते हुए महल आंखों के आगे हो आते हैं। सीटी बजाती हवाएँ सर्र से कानों के पास गुजर पड़ती हैं, ऐसा महसूस होता है जैसे इन महलों में सब कुछ जिन्दा दफ्नाया गया है, लेकिन अभी तक कुछ आत्माएँ-रूहे इन्हीं महलों में जी रही हैं—दबी-दबी सिसकियों में चीखती हैं—रात में हर पास से जाने वाले को अपने दुखों का अहसास कराती हैं। मन नहीं होता, इन महलों को देखने का। सचमुच, समय ने क्या अन्याय कर दिया इनके साथ। ओफ ओ! मन जैसे रो पड़ता है। लेकिन मिनट भर में ही राजकीय मुद्रणालय से निकलती हुई खटापट की लम्बी होती आवाजें महलों को भुला देती हैं। सामने मुद्रणालय की मुंडेर पर दो-तीन बीड़ी फूंकते काले चेहरे स्टेट बैंक की ओर धुआ उगलते नजर आते हैं, जिनका अहसास जगन्नाथजी के मंदिर तक नहीं छूटता। मंदिर के कुछ आगे चहल-पहल शुरू हो जाती है। त्रिपोलिया तक अगल-बगल लोग आते-जाते नजर आते हैं।

त्रिपोलिया के अन्दर शिवजी के मंदिर में घरघराते घड़ियालों की आवाज चारों दिशा में बिखरते लोगों को दूर तक छूये रहती है। त्रिपोलिया के दायीं ओर का रास्ता पुलिस लाईन, गर्ल्स एस टी सी स्कूल, यशवन्त हायर सैकिण्डरी स्कूल, प्रताप सैकिण्डरी स्कूल, राजपूत छात्रावास, को जाता है। बायीं ओर का रास्ता मुन्शी बाग को जाता है और सामने वाला रास्ता बजाजा बाजार की चमक दमक देखने को लालायित करता है। बजाजा बाजार ही शहर का मुख्य बाजार है। अभी दूकानें बंद हुई हैं—इसलिए भीड़-भाड़ कम है। लेकिन दिन ढले बाद वहां चुस्त पैंट व टीशर्ट पहिने हीरो लड़के औसतन अधिक नजर आते हैं। भले ही दिन में मैली धोती पहिने देहाती औरतें लाल, नीली या बदरंगी साड़िया पहिने हुए, साथ में तीन-चार बच्चों को लिए हुये जल्दी में यहाँ से वहाँ भागती नजर आयेंगी, पर शाम का इस बाजार में एक अजीब चहल-पहल होती है, हर चेहरा एक अपनी मस्ती में बहता प्रतीत होता है। दूकानों से छूटती हुई ट्यूबों की दूधिया रोशनी उनके चेहरों में चार-चांद लगा देती है। हर नजर में एक बोतल का नशा, हर अदा में दिल घायल कर देने वाली मस्ती होती है। कहकहों के बीच ऐसी मस्ती में चलते हुए लोग-बाग होपसर्कस के चारों ओर—घंटाघर, शिमला बाग, बस स्टैंड की ओर बिखर पड़ते हैं। कुछ होपसर्कस के नीचे ही कोको-कोला की बोतलें खाली करते हुए आंखें सेंकना चाहते हैं। कुछ पानवालों से पान की गुलेरियाँ मुँह में दबा मटकते हुए होपसर्कस के चारों ओर ही घूमते रहेंगे, पर दूकानें बन्द हो जाने के कारण रात में इस समय न कोई पानवाला है और न ऐसे हीरो-टाइप चेहरे। दिन की दुहपरी व शाम की चहल-पहल में आंखों में मस्ती घोल देने वाले होपसर्कस का गेरूआँ रंग रात में मटमैला फीका फीका हो जाता है। इसके ऊपर लगी हुई आसमान को चूमती पीतल की गुम्बदें भूतों की भाँति डरावनी महसूस

होती हैं। सारा होपसर्कस एक उजड़ा हुआ खंडहर-सा प्रतीत होता है। आस-पास चलते हुए रिक्शा, मोटर, ताँगों की टिमटिमाती मन्दी-मन्दी रोशनी जैसे काटने को दौड़ती है।

होपसर्कस के दूसरी ओर जहां अधिक चेहरे दिखाई पड़ते हैं—बस यही सड़क बाग या स्टेशन तक को घूमती हुई जाती है। इसी सड़क पर कई रेस्तराँ हैं। इन रेस्तराओं में इंडियन कॉफ़ी-हाउस, टी-हाउस जैसी रौनक तो नहीं पर करीब रात के ६-१० बजे इन्हीं रेस्तराओं में चहल-पहल देखी जा सकती है—इस चहल-पहल में कभी-कभास यहाँ के लेखकों-पत्रकारों को देखा जा सकता है। अधिकतर नीरज, भागीरथ भार्गव, जुगमन्दिर तायल व निरंजन महावर तो नजर आते ही हैं। नीरज जरा हँसोड़ ज्यादा हैं इसलिए जब वह बैठे होते है तो सुक्खी के बगल के रेस्तराँ मे चाय के प्यालों की खनखनाट सुनाई नहीं देगी, सुनाई देंगे तो सिर्फ नीरज के कह कहे। सुक्खी रेस्तराँ मे आ बैठना बड़ा प्यारा-सा लगता है। पूरी रात यहाँ सिंगल कपों में गुजारी जा सकती है। कई बार मिनिस्टरों की कार सामने आ खड़ी होंगी तो कभी धड़धड़ाते स्कूटर। और ठहर-ठहर कर आती हुई सामने से घोड़ों की हिन-हिनाटे इस खुले रेस्तराँ में बैठे व्यक्ति की नजरों को अपनी ओर उलझा लेती हैं। रात में जब भीड़ की चहल-पहल बिलकुल कम हो जाती है तो दूर से ही गाड़ी के ताँगों की टपटपाहट फिसलती हुई इस ध्वनि में आती है, कि नये कवि के लिए यह स्थान सबसे उत्तम बन जाता है। पास ही एक ओर रिक्शे-तांगे वालों की ताश खेलती हुई जोड़ियाँ आती हैं और उनके मुखों से फूटती हुई अजीब-अजीब गालियाँ और लोकप्रिय फिल्मी गानों की स्वर लहरियाँ, रात के मन में एक सजीव चित्र उभारती हैं। रेस्तराँ के कुछ आगे ही दूकानों पर सोये हुए लोगों की साँसें, पीछे लगते हुए कुत्तो की हुँकारे और कही दूरी पर गश्त लगाते सिपाहियों की सीटी के साथ लाठियों से पीटती सड़कों की कराहटे आँखे झपकने नहीं देती। और आगे बढ़ आये तो रुक-कर निश्चय करना होता है कि जाना कहाँ है? सुक्खी रेस्तराँ से आगे बाँयी ओर स्थिति है—साहित्य-संगम का कार्यालय, पंसारी बाज़ार, घंटाघर, सब्जीमंडी, न्यू तेज टॉकीज, कोतवाली व तहसील आदि। दांयी ओर म्यूनिसिपल कमेटी, चर्च, फोटोग्राफरो की दूकाने, जैन सैकिन्डरी स्कूल, आर्य समाज, मन्नी का बड़ गर्ल्स स्कूल, कम्पनी बाग, सूचना-केन्द्र और कॉलेज आदि को इस सड़क पर से जाना पड़ता है।

स्टेशन के लिए कमेटी के सामने से बांयी ओर मुड़ना पड़ जायेगा, जहाँ पर केडलगंज है। केडलगंज में सड़क के दोनो ओर रात में उजाड़-सी लगती छोटी-छोटी टीन-शेड़ वाली दूकानें, कहीं बोरियों के ढेर, साँड़ों की तरह ऊँघते हुए ट्रक, नजर आयेगे। कुछ आगे श्याम कॉफ़ी हाउस' की लाइट दूर से ही अन्दर बुला लेना चाहती है। यहाँ राजनीति की चर्चा उसी जोर-शोर तथा बेखट से होती है जिस तरह वेश्या के कोठे पर नाच। अलवर में नेताओं की ही नहीं, मिनिस्टरों तक की कमी नहीं है। ख़ैर! 'श्याम कॉफ़ी हाउस' में कॉफ़ी या चाय अवश्य पी लेनी चाहिये, एक कप में ही आनन्द आ जाता है। बाहर आकर आगे हुए तो रामगंज आ जाता है। रामगंज से स्टेशन तक सीधी-सपाट सड़क पर जानवरों का अस्पताल, सुगनाबाई की

धर्मशाला, जनाना-मरदाना अस्पताल, पुराना बिजली घर, ट्रांसपोर्ट कम्पनियाँ, तेल की मिलें व फतहजंग की गुम्बद आदि हैं। सुगनाबाई की धर्मशाला के पास वाली बिल्डिंग में एक और नवयुवक लेखक रहते हैं—अक्सर रात में उनके कमरे की रोशनी सड़क पर बिछी होती है, आज शायद वह हैं नहीं इसलिए कमरा सूना रहा है। सड़क पर वहां एक और प्रौढ़ लेखक वशीवर-जी उखड़े व सूखे दालों में नजर आते हैं जो एक प्रेस के मालिक भी हैं। इस सीधी सड़क पर दोनों ओर बिजली के खम्बों पर टिमटिमाते एक कतार में बल्ब एक क्षण देख लेने को बाध्य कर देते हैं। यहाँ तेल की मिलों के कोल्हुओं की आवाज और अन्य मशीनों की आवाजें (शकर जयकिशन का संगीत) कानों को छूये रहती हैं। एक आध चेहरा भी नशे में झूमता, मुँह से कई कई लोक धुनें निकालता दीख जाता है, पर रात में वे किसी को अकेला देखकर पीटेंगे या छेड़ेंगे नहीं। खुशी से तो उनसे बीड़ी भी पीयी जा सकती है।

स्टेशन के अन्दर जाने से पहले बुकिंग के पास ऊँघते हुए देहाती नजर आयेंगे और फटे-पुराने कपड़ों में झाँकता हुआ यौवन । अन्दर प्लेटफार्म पर चुस्त पैंट व टीशर्ट पहिने लड़के भी नजर आयेंगे, स्कर्ट सलवार भी दिखलाई दे जाती हैं और वेटिंगरूम में १/४ सीने को ढकने वाले ब्लाऊज भी देखे जा सकते हैं, पर उनके मर्दों के पास सैकिण्ड क्लास वेटिंग रूम में थर्ड क्लास का ही टिकट होता है। वे आरामकुर्सी पर ऊँघते इस तरह दिखाई देते हैं जैसे कोई बड़ा अफसर 'रैस्ट' ले रहा हो। प्लेटफार्म के एक ओर रात होने के कारण इधर-उधर खाली ठेली दिखाई देती हैं। एक चाय का रेस्तरां भी है, यहां चाय की चुस्कियाँ खड़े-खड़े ही लेनी पड़ती हैं। कुछ आगे बेंचों पर बैठे आवारा लड़के सिगरेट के धुएँ के छल्ले बनाते दिखाई दे जाते हैं। इन आवारा लड़कों की कतार के आगे स्टेशन के चोर रास्ते से सड़क पर आया जा सकता है, केवल एक छोटी-सी दीवाल फाद कर। फादते ही सड़क पर 'रैस्ट हाउस' है। नाक की सीध में सड़क के इधर उधर बड़ी-बड़ी कोठियां हैं—जिनमें इस समय अंधेरा ही झलक रहा है। इन कोठियों के एक तरफ राजर्षि कॉलिज व फ्रैंड्स कॉलोनी है, जहां जुगमंदिर तायल रहते हैं। सीधे-सादे व्यक्ति होने के कारण इनका खयाल यहां आ-जाना स्वाभाविक है। लगता है इस समय भी वह कच्छे व बनियान में बैठे कुछ लिख-पढ़ रहे होंगे। सड़क पर यहां तायलजी की एक कविता की पंक्ति—'सन्नाटा है और अजगर की सांसों का घुमड़ बढ़ता जाता है ' याद हो आती है। सचमुच सड़क पर दूर तक सन्नाटा है। कानों के पास से सरसराती हवा तेज होकर गुजरती है। एक घबराहट हो आती है। जल्दी जल्दी कदम बढ़ाये कि नगली के चौराहे पर एक क्षण को आँखें ऊपर की ओर उठती हैं। चौराहे के बीचोंबीच अशोक स्तम्भ जैसे ऊपर उठता हुआ चाँद को छू लेना चाहता है, इस चौराहे के एक ओर कवि श्री चेतन पाराशर रहते हैं सड़क पर इस रात में भले ही उनका नाम याद न आये पर उनकी कोठी 'नील कमल' अवश्य अपनी ओर खींचती है। बहुत ही प्यारी कोठी है और कोठी पर लिखा बड़े-बड़े अक्षरों में 'नील कमल' अधिक चमकीला व उभरा हुआ लगता है। कुछ आगे ही सूचना-केन्द्र और शिमला अगल-बगल में नजर आते हैं। शिमला की ओर से आती हुई 'रात की रानी' के फूलों की खुशबू मन में एक 'शरूर' पैदा कर देती है,

इच्छा होती है बीच सड़क कोई गीत की पंक्ति गुनगुनाई जाये, चाहे इस समय कोई भी नहीं सुने, पर अपने लिए ही ऐसा करना बहुत प्रिय लगेगा, बिलकुल वैसा कि समुद्र की लहरों को देखते हुए माँझी की आवाज का सुनाई देना। एक और अनुभूति यहाँ होती है। सूचना-केन्द्र के सामने का कराहता हुआ लॉन, वर्षो से बन्द हुए फुहारे मन में एक कसक-सी उत्पन्न कर देते हैं, इच्छा होती है एक बार यहाँ फिर प्रदर्शनी हो, और फिर फुहारों से ऊपर तक उठती हुई रंग-बिरंगी पानी की बौछारे देखी जायँ, पर ऐसा दृश्य कल्पना में ही अब दिखता नहीं बनता, अब दीखती है केवल लान में बड़ी-बड़ी घास व उनमें फुदकते हुए मेंढ़कों की आँख-मिचौनी। अगर रात ज्यादा नही हुई होती तो इश्क फरमाते हुए लड़के-लड़कियों के एक-आध जोड़े अटखेलियाँ करते भी दिखाई दे जाते।

इसके कुछ आगे बढ जाने पर शहर का सबसे बढ़िया रेस्तरां 'नटराज' के दर्शन होते हैं, जिसके बाहर 'न्योनलाईट' में खड़ी सायकिलें-स्कूटर लोगों के अन्दर बैठे होने का अहसास देते हैं। उस रेस्तरां के अन्दर राजनीति की चर्चा के बजाय हसीन लड़के-लड़कियों पर चर्चा सुनाई पड़ती है। इसकी टेबिलों पर कभी-कभार पसरे हुए वक्ष भी नजर दे जाते हैं, दिन में नहीं रात में ही, क्योंकि पढ़ने वाली कमसिन लड़कियों को घरों से टहलने-घूमने की फुरसत शाम ढ़ले ही मिलती है। कहीं ऐसा कर लिया कि इस रेस्तरां से बाहर होती लड़की के पीछे ही लग गये तो, रात की शान्ति में खलबली मच जायेगी। खलबली में 'वी' आकार की चप्पलों से ऐसी पूजा हो सकती है कि नानी तक याद आ जाये। ······क्या कहा जाय ? यह अलवर के लड़कों का दुर्भाग्य ही है कि यहां की लड़कियाँ फैशन परस्त होती हुई भी अन्य शहरों-सी फारवर्ड नही हैं, जो छोटी-मोटी हरकत को नजर अन्दाज कर जायें। बस इनके बदन से छूटती टेलकम पावडर की भीनी-भीनी खूशबू लेते बस-स्टैंड की ओर आना पड़ता है। बस-स्टैंड के इस रास्ते में ही लड़कियाँ मनुमार्ग या अन्य छोटे-मोटे रास्तों में मुड़ती दिखाई देती है। दिन में इस सड़क पर कारें-बसें घुर्घुराती रहती है, रात में एक-आध ही कारें आंखें चौधियाती हैं। इसी सड़क पर एक ओर गर्ल्स कॉलेज है और बिलकुल सीध में चलते रहे तो अशोका होटल, जयपुर बैंक, बस-स्टैंड आते है। बस-स्टैंड से आगे चलकर अशोका पिक्चर पैलेस, मालाखेड़ा गेट व प्रताप बंध तक जाया जा सकता है। बस-स्टैंड के दाई ओर दिन में हार्नो की पों-पों और रात में कुत्ते-कुत्तियों की पँय-पँय सुनाई देती है। बस-स्टैंड के मुसाफिरखाने में मुसाफिर एक भी नजर नहीं आता है, आती है तो फटे-मैले कपड़ों में पड़ी हुई 'गंगा बावली' जवानी में ही मुरझा गये उसके अंग-अंग। दुःख होता है इन्हें देखकर, अतएव सड़क पर ही चलते रहना ठीक रहता है। बस-स्टैंड से आगे चलने पर खंडेलवाल धर्मशाला, पंजाब नेशनल बैंक जिसकी बगल में ही पुरुषार्थी बाजार है, यहाँ से सामने होपसर्कस की ओर आ जाना पड़ता है, इस बार होपसर्कस से घंटाघर की ओर। सड़क के दोनों ओर छोटी-छोटी दूकानें पंजाबी कलाकंद व फल बेचने वालों की, लेकिन इस समय रात काफी हो जाने की वजह से आँखें कलाकंद व फलों पर लल-चायेंगी नहीं, बार-बार इस समय नजर लोगों के द्वारा थूकी हुई पान की पीप पर, गोबर व

उदास चाट के ठेनों पर पड़ती है। घटाघर पर नजर उठती है कि समय देख लिया जाय, पर यहाँ का घटाघर ही ऐसा है जबसे बना है घड़ी इसमे गायब है, इसलिए घर पहुँचने की जल्दी भी समय न मालूम होने पर नही होती। घटाघर के एक ओर सब्जी मडी है। इस समय सब्जी-भाजी वालियाँ नहीं हैं जिनसे भाजी खरीदने के बहाने आँख लडा ली जाये। आँख तो इस समय सुअरियो पर भले ही फिसलाई जा सकती है—जिनके बारह के बारह थन भरे पेट के कारण स्पष्ट दिखाई पड़ते है। घटाघर के एक ओर न्यू तेज टॉकीज, कोतवाली, तहसील, पटेल नगर, लाजपत-नगर हैं वैसे स्वर्ग-रोड पर भी इसी रास्ते से जाना होता है। इस रास्ते मे कई छोटी-छोटी गलिया फूटी हैं और वट वृक्ष की शाखाओं की तरह फैलती ही गई है। यही एक गली मे अलवर के साहित्यकार, कलाकार, प्राध्यापक, डाक्टर और न जाने क्या-क्या—भागीरथ साहब रहते हैं। साहब इसलिए की वह अजीब अदाओ मे घटाघर के इर्द गिर्द अक्सर आते जाते नजर आते है। इनसे भेट हो जाय तो वह कोकाकोला पिला देंगे, अगर कोकाकोला नही पिलाई तो सडक पर टहलती लडकियों से जानकारी तो अवश्य करा देंगे।

घटाघर के तीसरी ओर पसारी बाजार है। वैसे नाम का ही यह पसारी-बाजार है—दूकाने हैं यहा हलवाइयो व दवा बेचने वालो की। यहाँ रात मे सिफ भिनकती हुई मक्खियो की भहँ-भहँ या फिर भिख मगो के कपडो से छूटती दुगन्ध हाथ लगती है। रात मे दूकान बद होने से पहले निकल गये इधर से तो देशी घी मे बनती हुई पूरियो की खुशबू नाक के नथुनो को फैला देती है। लेकिन अब तो काफी रात बीत गई है, इसलिए बुझे हुए कोयलो के ढेर, ठडी होती राख ठोकर मे आती है। पसारियो की दूकानों की तरफ से मिर्च मिश्रित हवाओ के झोके आँखो से आसू झलका देते हैं। युनाइटेड बैंक के बाद हनुमानजी का मन्दिर है। मन्दिर के बाद चौराहा आ जाता है। इसी चोराहे पर से सुक्खी रेस्तरा पर जाया जा सकता है, सुक्खी के हाथ की चाय पी जा सकती है। चाहे तो इस चौराहे पर कुछ देर सट्टे वालो को भी देखा जा सकता है, किस तरह वे एक बूढे के नखरे-गालिया सहन करते है, सचमुच चौराहे पर पडा हुआ यह बुड्ढा खाने-पीने मे इतने नखरे दिखाता है कि एक नयी बहू भी नही दिखा सकती, लेकिन आजकल नखरे कौन किसके सहता है, वैसे अब नखरे रहे भी किसके हैं ?

और अब अन्त मे—

अलवर शहर मे सब कुछ है। दिन की चमचमाहट है। पश्चिम की ओर अरावली पवत की श्रेणियो मे स्थित रमणीक दर्शनीय बाध हैं, जहाँ रात मे एक अजीब ही सुहावना वातावरण होता है। हर चीज यहाँ उपलब्ध है, पर इस समय यहाँ रात का थोडा-सा ही अनुभव है। चौबीस वर्ष मे जो कुछ देखता महसूस करता आया हूँ, उसे पाँच छ पृष्ठ मे लिखा भी कैसे जा सकता है ? और फिर आखें अब नीद के कारण इस तरह झपकने लगी हैं जैसे पूरे दो-तीन पेग का नशा मुझ पर चढ गया हो—और इस नशे मे सचमुच मुझे ऐसा लग रहा है कि अलवर रात की बाहो मे न सिमट कर, मेरी बाहो मे सिमटता जा रहा है।

चित्रकला

भारतीय चित्रकला की परम्परा गौरवमय रही है। अजन्ता के भित्तिचित्र, पाल शैली, गुजरात शैली, अपभ्रंश शैली, राजस्थानी शैली, मुगल शैली, पहाड़ी शैली आदि में समय-समय पर चित्रकला की अजस्र धारा प्रवाहित होती रही है। इसकी गौरवमय गाथा आज भी भित्ति-चित्रों, पोथीचित्रों, लघुचित्रों, पटचित्रों आदि में सुरक्षित है।

राजस्थानी चित्रकला का जन्म राजस्थान के ही प्रान्त में हुआ है। अन्य भारतीय शैलियों से प्रभावित होती हुई वह स्वतंत्र रूप से राजस्थान के वीर प्रदेश में अनेक शैलियो एवं उपशैलियों के रूप में विकसित हुई। राजस्थानी चित्रकला का उद्‌भव और विकास कई अन्य शैलियों की भाँति न तो एक स्थान मे हुआ और न ही कुछेक कलाकारों द्वारा। राजस्थान के कितने ही प्राचीन नगर, राजधानियाँ तथा धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान है, जहाँ चित्रकला पनपी और विकसित हुई है। अनेक देशी रियासतों में अपनी स्थानीय विशेषताओं के कारण पल्लवित एवं पोषित चित्रकला वहाँ की शैली विशेष बन गयी। इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला ने अनेक शैलियों एवं उपशैलियो का रूप धारण किया, जिसमें मेवाड़, बूँदी, कोटा, किशनगढ़, मारवाड़, बीकानेर, जयपुर, अलवर आदि शैलियाँ चित्रकला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

अलवर शैली का अध्ययन न होने के कारण वह अभी तक प्रकाश में नही आई है। हाँ कभी-कभार कला मर्मज्ञों द्वारा उसका संकेत अवश्य दिया गया है, किन्तु वह नहीं के बराबर है। अलवर की चित्रकला के सम्बन्ध में उपलब्ध भित्तिचित्रों, पोथीग्रंथो, लघुचित्रों, पटचित्रो एवं हाथीदाँत, अभ्रक और लकडी के पट्टों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अलवर की चित्रकला राजस्थानी चित्रकला की अन्य शैलियों से किसी भी प्रकार कम नहीं है। उससे सम्बन्धित सामग्री अनेक संग्रहालयों, महलों, मंदिरों तथा व्यक्तिगत संग्रहों मे आज भी शोध का इन्तजार कर रही है।

अन्य शैलियों की भाँति अलवर शैली का जन्म भी अलवर राज्य की स्थापना के बाद से ही माना जाना चाहिए। रावराजा प्रतापसिंहजी (सन् १७५६-१७९०) ने अपनी वीरता, कुशलता एवं राजनीतिज्ञता के कारण जयपुर और भरतपुर के कुछ भाग पर अधिकार कर अलवर राज्य की स्थापना की। सन् १७७० में राजगढ को नये ढंग पर बसा कर और सुदृढ़ दुर्ग बनवाकर प्रथम उसे राजधानी बनाया तथा सन् १७७५ में अलवर के किले पर भी अधिकार कर लिया। प्रतापसिंहजी का अधिकांश समय युद्धों में एवं नव स्थापित राज्य की नींव सुदृढ़ करने में लगा रहा, किन्तु फिर भी अपनी धर्मपरायणता के कारण कला के प्रति उनकी रुचि थी। उनके राज्यकाल में शिवकुमार एवं डालूराम नामक दो चित्रकार जयपुर से अलवर आये। उन्होंने अपनी कलाकृतियाँ महाराव को भेंट की। कहते हैं शिवकुमार तो वापिस लौट गये, किन्तु डालूराम यहीं पर राज्य कलाकार नियुक्त हो गये। उनके बनाये हुए अनेक चित्र राजकीय संग्रहालय अलवर एवं महाराज के निजी संग्रह में मौजूद हैं। डालूराम भित्तिचित्रण में दक्ष थे। लगता है राजगढ़ के किले के शीशमहल में अंकित सुन्दर कलात्मक भित्तिचित्र उन्हीं के समय में

उनकी देखरेख मे बने हैं। यदि ऐसा मानल तो वे भित्तिचित्र अलवर शैली के प्रारम्भिक सर्वोत्कृष्ट सुन्दर चित्र हैं।

अलवर से २० मील दूर राजगढ के सुदृढ किले के ऊपरी भाग मे एक सुन्दर शीशमहल बना हुआ है, जिसमे विभिन्न रगो के शीशे की जडाई के साथ ही आलियो एव नीचे की दीवारो पर भित्तिचित्रण के सुन्दर उदाहरण विशेष दर्शनीय हैं। यह शीशमहल दो भागो मे विभक्त है। एक बडा कमरा लगभग २५ ×१२ का और उत्तर की ओर उससे लगा बरैण्डा लगभग २५′×१० का है। कमरे की छत विभिन्न रगो के शीशो से जडी हुई है तथा दीवार पर अनेक सफेद शीशे यत्र-तत्र जडे हुए हैं। बीच-बीच मे अनेक चित्र बने हुए हैं तथा आलियो से नीचे की दीवार तो लगभग सारी ही चित्रो एव बेल-बूटो से आवेष्टित है। कमरे और बरैण्डे की छत टीनशेड की भाति ढालू है। और छत तथा शेष दीवारें चित्रो एव बेलबूटा से अकित हैं।

इस महल के भित्तिचित्रो मे अनेक विषयो का अकन है। कृष्ण-चरित्र, राम-चरित्र, नायिकाएँ, दरबार, सगीत आदि विषयो से सबधित चित्रकला की दृष्टि से अलवर शैली के ये प्रारम्भिक चित्र माने जा सकते हैं। रामलीला, गोवधनधारण, गोचारण, हिण्डौला, वेणी-गुथन, दुग्ध-दोहन तथा राम का धनुष-भग, राजतिलक आदि चित्र कृष्ण और रामलीला से सम्बन्धित हैं। इनमे गायो का चित्रण तथा प्रकृति का सतरगा चित्रण विशेष महत्त्व का है। धनुष-भग और राजतिलक का चित्रण बहुत बडा है, जिसमे राजपूत शैली का स्थापत्य, केले के गाछ, हाथी और घोडो की सवारी तथा समूह चित्रो का अकन अजता शैली की याद ताजा करता है।

नायिकाओ मे अगडाई लेती हुई, काटा काढती हुई, शृगार करती हुई नायिकाओ एव दासियो का चित्रण भावपूर्ण एव मनोहारी है। तबला, सितार, सारगी आदि बजाती हुई स्त्रियो का चित्रण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। महाराव प्रतापसिह और महाराव बख्तावरसिह जैसे राजाओ का दरबार भी दीवारो पर अकित है। बेल-बूटे और फूल पत्तियो के विभिन्न डिजाइनो मे रगो की चटकता और अकन की लयकारी कमाल की है। रेखाकन अत्यधिक सुदृढ एव सूक्ष्म है। ऐसा लगता है जैसे सारा कार्य डालचन्द जैसे अनुभवी चितेरे की देखरेख मे हुआ हो। राजगढ के किले के इस शीशमहल मे अजता के गहरे बादामी रग का प्रभाव अधिक है। हल्के नीले, हरे, सुनहरी रगो का जादू इन भित्तिचित्रो को अधिक सुशोभित करता है।

उपर्युक्त शीशमहल का निर्माण काल राव राजा प्रतापसिहजी के पुत्र रावराजा बख्तावरसिहजी का समय (सन् १७६० से १८१४) माना जावे तो कोई भ्राति होने की सभावना न होगी। बख्तावरसिहजी स्वय कवि एव कला-प्रेमी थे इसलिए सभावना है कि ये चित्र अलवर शैली के प्रारम्भिक एव महत्वपूर्ण चित्र होने के नाते कला की दृष्टि से उत्कृष्ट भित्तिचित्र हैं। खेद कि बिना सरक्षण के इनमे से अधिकाश चित्र नष्ट होते जा रहे हैं।

रावराजा प्रतापसिहजी के उपरान्त रावराजा बख्तावरसिहजी (सन् १७६०-१८१४) ने राज्य की बागडोर सम्भाली। वे अत्यधिक वीर, कला प्रेमी एव धार्मिक प्रवृत्ति के थे। "चन्द्रसखी

एवं "बख्तेश" के नाम से वे काव्य रचा करते थे। 'दानलीला' उनका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। राज्य की प्रशंसा एवं महाराव की गुण ग्राहकता को सुनकर दूर देशों से बहुत से कलाकार अलवर नगर में आये और राज्य में उनकी योग्यता का यथोचित सम्मान हुआ। उनके समय मे अलवर शैली विकासमान हुई। बल्देव एवं सालगा या सालिगराम उनके राज्य के प्रमुख चितेरे थे। बख्तावरसिंहजी के समय के सैकड़ों चित्र राजकीय संग्रहालय अलवर में विशेष दर्शनीय है, जिनमें नाथों, जोगियों, फकीरों से जंगल में धर्म-चर्चा करते हुए स्वयं महाराज का चित्रण कला की दृष्टि उल्लेखनीय है। संग्रहालय में जितने चित्र महाराज बख्तावरसिंहजी के प्राप्त हैं उतने अन्य किसी राजा के नही। अलवर के प्राकृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि मे बने ये चित्र अत्यधिक मौलिक एवं अलवर शैली के उत्कृष्ट चित्र है। निश्चय ही कलाप्रेमी बख्तावरसिंहजी का अलवर शैली को सम्मोहक एवं मौलिक स्वरूप देने मे विशेष योगदान रहा है।

रावराजा बख्तावरसिंहजी के उपरान्त अलवर की चित्रकला को नया मोड़ देने का श्रेय उनके उत्तराधिकारी महाराव विनयसिंहजी (सन् १८१४-१८५७) एवं तिजारा के राजा बलवन्तसिंहजी (१८२६-१८४५) को है। इनके समय में अलवर की चित्रकला द्विविध रूप में परिपोषित होकर अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँची। विनयसिंहजी अलवर के राजाओं में सर्वाधिक कला प्रेमी एवं कला पारखी हुए हैं। अलवर की चित्रकला के उत्कर्ष मे उनका वही स्थान है जो मुगल चित्रकला के विकास में अकबर का था। कला पारखी एवं गुणग्राही होने के कारण देश-देश के विद्वान, शिल्पकार, चित्रकार एवं संगीतकार उनके दरबार में आकर महाराज के गुण-ग्राही बने। यह वह समय था जब अकबरशाह द्वितीय (सन् १८०६-१८३७) तथा बहादुरशाह द्वितीय (सन् १८३७-१८५६) के समय में दिल्ली की मुगलिया सल्तनत सिमट कर छोटी और जर्जरित होती जा रही थी। शाहआलमों का राज्य केवल पालम तक होने के कारण मुगलिया खानदान से संबधित कलाकार अपनी कलात्मक धरोहर को बेचने तिजारा एवं अलवर आने लगे। महाराज विनयसिंह एवं महाराज बलवन्तसिंह कला पारखी थे ही, उन्होंने अमूल्य वस्तुओं को उचित मूल्य में खरीद कर राज्य के कला-संग्रह को वैभवशाली बनाया। उन्होंने प्राचीन सचित्र पुस्तकों का संग्रह कराकर एक अपूर्व पुस्तकशाला स्थापित की। रत्न-भंडार एवं शस्त्रालय में बहुमूल्य रत्न एवं अद्वितीय शस्त्र एकत्र कराये तथा कलाकारों को राज्याश्रय देकर चित्रकला की अजस्र धारा को वेगवती बनाया। उनके दरबार में चित्रकारों, संगीतज्ञों, सुलेखों एवं कारीगरों की भरमार थी। बल्देव एवं सालिगराम रावराजा बख्तावरसिंहजी के समय से राज्याश्रित कलाकार थे ही, किन्तु इनको भी अपनी कला को प्रकाशित करने का सुअवसर विनयसिंहजी के समय में और भी अधिक मिला। स्वयं महाराज विनयसिंहजी को चित्रकारी का शौक था। वे बल्देव से चित्रकारी सीखते थे। बल्देव का दरबार में उच्च स्थान था। वे मूलतः अलवर की परम्परित शैली में कार्य करते थे, पर दिल्ली से आये मुगल शैली के चित्रकारों के सम्पर्क में आकर मुगल शैली के प्रभाव से युक्त सुन्दर कार्य करने लगे। यही कारण रहा कि अलवर शैली के तत्कालीन चित्रों में मुगल शैली का प्रभाव अधिक झलकने लगा।

बैशाख मास   अलवर शैली १६वीं शती मध्य।
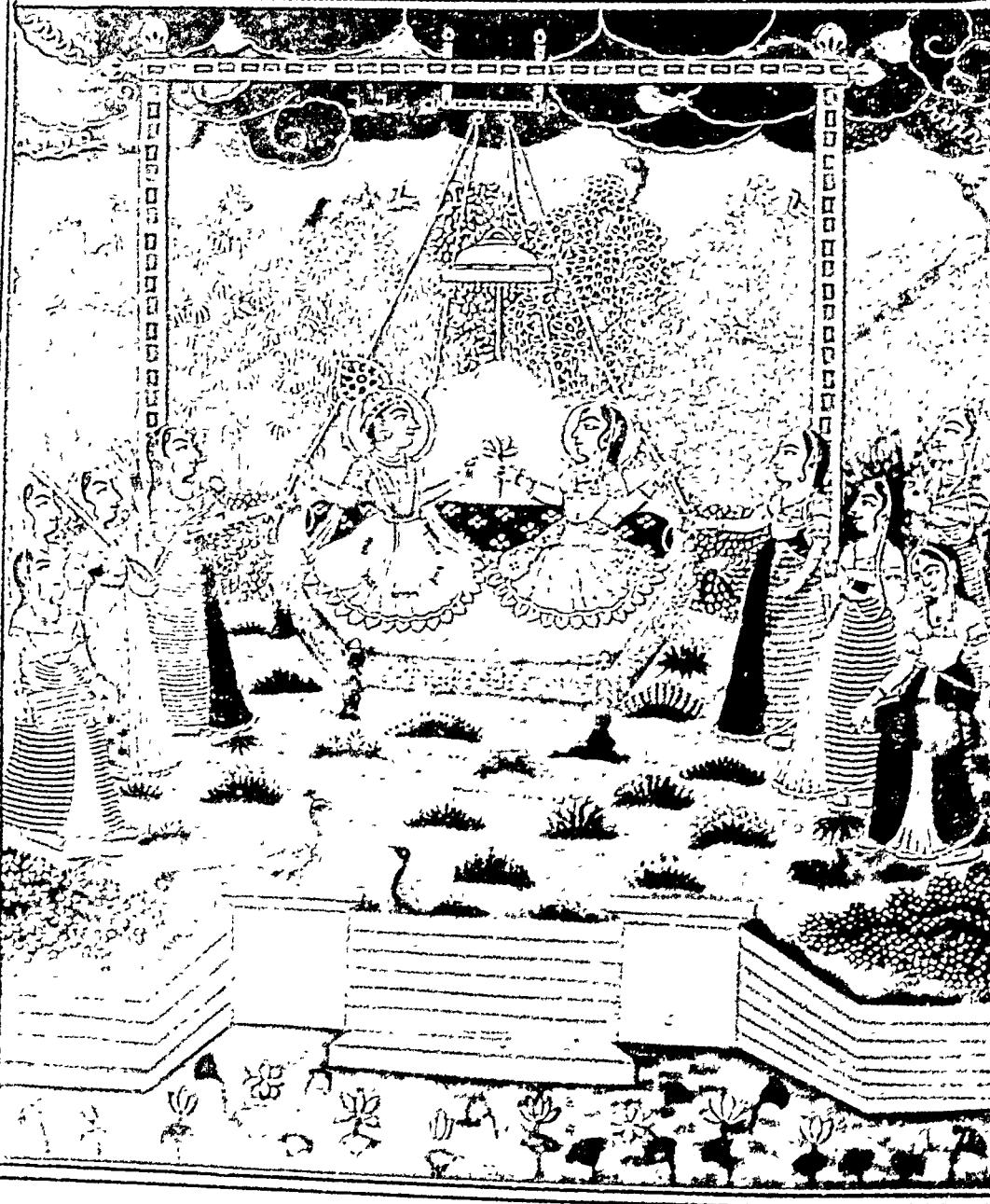
श्रावण मास : अलवर शैली, १६वीं शती मध्य ।

महाराजा विनयसिंहजी को सचित्र पुस्तकों एवं लिपटवा पटचित्रों (स्क्रोल) के निर्माण का अधिक शौक था। यही कारण है कि उन्होंने गुलामअली जैसे सिद्ध कलाकारों, आगा मिर्जा देहलवी जैसे सुलेखकों एवं नत्थाशाह दरवेश जैसे जिल्दसाजों को राजकीय सम्मान देकर दिल्ली से बुलवाया। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवतगीता, गीत गोविन्द, दुर्गा सप्तशती, गुलिस्तां, कुरान आदि ग्रंथों का सुलेखन एवं चित्रांकन विनयसिंहजी की कलाप्रियता का परिचायक है। *गुलिस्तां का सुलेखन एवं चित्रांकन उनके राज्यकाल की एक अनोखी घटना है।* इस ग्रंथ को तैयार करने पर उस समय एक लाख रुपये खर्च हुए थे। ग्रंथ के चित्र बल्देव व गुलामअली ने *बनाये तथा सुलेखन आगा मिर्जा देहलवी ने किया।* कारी नत्थाशाह दरवेश ने इसकी जिल्दसाजी की। इस ग्रंथ का समस्त लेखन सीठे की कलम से हुआ है। किसी भी पृष्ठ में अशुद्धि हो जाने पर वह पृष्ठ फिर से लिखा गया है, इस प्रकार गुलिस्तां की तीन प्रतियां उस समय तैयार हुई हैं। महाभारत का सबसे बड़ा लिपटवा स्क्रोल (९९ गज लम्बा) भी सैकड़ों चित्रों से सुसज्जित है, जो इन्हीं के समय में तैयार हुआ है। अलवर शैली में राग-रागिनी के अनेक सैट प्राप्य हैं जिनमें से अधिकतर का चित्रांकन इनके समय में हुआ है। आनन्दराम कवि के छन्दों पर आधारित बारहमासी का सुन्दर सैट इसी समय का है।

राव बख्तावरसिंहजी की खवासवाल रानी मूसी एक पुत्र और एक पुत्री छोड़कर रावराजा के साथ सती हो गयीं। इनके पुत्र-बलवन्तसिंह ने राज्याधिकार पाने के लिए झगड़ा किया। अन्त में आपसी विरोध मिटाने के लिए राज्य का उत्तरी भाग सन् १८२६ में बलवन्तसिंहजी *को दिला दिया गया।* उन्होंने तिजारा को अपनी राजधानी बनाया पर निःसन्तान देवलोक हो जाने पर सन् १८४५ में तिजारा फिर अलवर राज्य में मिला लिया गया। *अपने २३ वर्ष के राज्य काल में राव बलवन्तसिंहजी ने कला की जितनी सेवा की वह* अलवर के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी। वे कला प्रेमी शासक थे। इनके दरबार में सालिगराम, जमनादास, छोटेलाल, बक्साराम, नन्दराम, आदि कलाकारों ने जमकर पोथी चित्रों, लघु चित्रों एवं स्क्रोलों (लिपटवा पट चित्र) का चित्रांकन किया। बलवन्तसिंहजी ने "दुर्गा सप्तशती' के चित्र बनाने के लिए छोटेलाल चित्रकार को जयपुर से व सालिगराम को अलवर से बुलवाया था। छोटेलाल परदाज (स्टिपलिंग) का कार्य करने में दक्ष थे तथा उनकी रंग-योजना चटकदार थी। जमुनादास के सन् १८४४ तक के चित्र उपलब्ध हैं, जिनमें राजा बलवन्तसिंह एवं स्वयं चितारे का नाम और संवत् भी अंकित है। जमनादास के चित्रों में रेखांकन की सुघड़ता और रंगों की कोमलता देखते ही बनती है। इसी समय के *नामांकित बक्साराम के चित्र भी राजकीय संग्रहालय एवं महाराज के व्यक्तिगत संग्रह में* उपलब्ध हैं।

तिजारा के विलीनीकरण के उपरान्त वहां की सारी कलात्मक धरोहर एवं कलाकार *अलवर आ गए।* *विनयसिंहजी एवं बलवन्तसिंह* ने मुगलों के शाही खजाने एवं पुस्तकालयों की अमूल्य वस्तुएँ खरीदकर अपने संग्रहालय को वैभवशाली बनाया। मुगल बादशाहों की

ऐतिहासिक सचित्र पुस्तकें, शाही एल्बम लघु चित्रावलियां, अस्त्र-शस्त्र, बहुमूल्य रत्नजटित उपकरण आदि का संग्रह अलवर संग्रहालय की अमर धरोहर है, जिसके आधार पर मुगलिया तवारीख को नयी दृष्टि मिल सकती है।

विनयसिंहजी के ही समय में (१८३०) निर्मित दीवानजी का रंगमहल (शीशमहल भित्ति-चित्रण की दृष्टि से विशेष दर्शनीय है। अलवर की भित्तिचित्रण की परम्परा में यह दूसरा महत्त्वपूर्ण चित्रण है। बालमुकुन्दजी के पूर्वज अलवर राजवंश के पूर्वजों के समय-समय पर दीवान रहते आये हैं। बालमुकुन्दजी (सन् १७८३-१८५५) महाराव बख्तावरसिंहजी के दीवान थे तथा महाराव राजा विनयसिंहजी के भी दीवान रहे। ये अत्यधिक वीर, दानी, धर्मपरायण एवं कला प्रेमी थे। हवेली एवं शीशमहल के बारे में उनके पौत्र का लिखा हस्तलिखित लेख इस प्रकार मिलता है। "लगभग सं० १८८७ (सन् १८३०) मे दीवान बालमुकुन्दजी ने मुंशी बाग के कुएं पर हवेली अपने निवास के लिए बनवाई। यह अति विशाल लोहित वर्ण प्रमाण की सुदृढ़ हवेली है। इसका द्वार पश्चिम को है। इस द्वार के समीप होकर ऊपर शीशमहल में जाने का रास्ता है जिसमे सुनहरी काम एव शीशे की जड़ाई का अनेक तरह का रंग-बिरंगी चीताई का काम हो रहा है।" यह शीशमहल भी प्रायः राजगढ़ वाले शीशमहल के ही समान बना हुआ है। एक बड़ा कमरा और उत्तर की ओर का बरैण्डा स्थापत्य की दृष्टि से भी सुन्दर है। कमरा श्वेत शीशों से जड़ा हुआ तथा कुछ चित्रों मे सुसज्जित है। बरैण्टा सुन्दर चित्रावली से अंकित है। बरैण्डे की छत बेल-बूटों से सुसज्जित है तथा छत और दीवार के बीच की कोर पर चौतरफा चौबीस अवतारो, छत्तीस राग-रागिनियों तथा संगीतकाओं के अत्यधिक सुन्दर चित्र बने हुए है। दीवार पर गोवर्धन-धारण, वेणी-गुन्थन, हिण्डोला, राजतिलक तथा महफिल आदि के चित्र अकित है। नायिकाओं, गणिकाओं तथा द्वारपालिकाओं के चित्र भी अत्यधिक मनोहारी है। हावभाव मुद्राओं की दृष्टि से अलवर शैली के भित्ति-चित्र भी बेजोड़ है। सुरक्षित होने के कारण इनकी दशा राजगढ के भित्ति-चित्रों मे अच्छी है, किन्तु कुल मिलाकर इस रंगमहल के रेखांकन एवं रंगों के प्रयोग में वह नफ़ासत नही है जो राजगढ़ के शीशमहल मे है।

विनयसिंहजी के समय (सन् १८१४ से १८५७) में निर्मित यह रंगमहल अलवर की पुरानी हवेलियों के बीच में खड़ा आज भी अपनी अतीतगाथा जर्जरित हालत में सुना रहा है। अनेक मंदिरो का तथा महलों का निर्माण एवं ऊपर का बेल-बूंटों का रंगीन कार्य अलवर की चित्रकला को समझने में विशेष योग देता है।

राजमहल का शीशमहल अधूरी दशा में आज भी पड़ा हुआ है। विनयसिंहजी के अन्तिम दिनो मे निर्मित इस शीशमहल के बीच के बड़े कमरे में राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, गणेश आदि के चित्र अंकित है, किन्तु उनमें न कलम की उतनी बारीकी है और न ही रंगों का जादू। चित्रों मे फोटोग्राफी का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। पास के कमरे में तो कागज के बने लघुचित्रों को दीवार पर चिपका कर ऊपर शीशा लगा दिया है, किन्तु इस प्रकार के भित्तिचित्र भित्तिचित्रण की परम्परा में नहीं आ सकते। हालांकि ऐसे प्रयोग राजस्थान के अनेक महलों में द्रष्टव्य है।

महफिल में नर्तकी   दीवानजी की हवेली।

महफिल दीवानजी की   दीवानजी की हवेली का एक भित्ति चित्र।

राजगढ़ दुर्ग के भित्ति चित्र : अंगड़ाई लेती हुई नायिका।

राजगढ़ दुर्ग के भित्ति चित्र : श्रृंगार करती हुई नायिका।

विनयसिंहजी के उपरान्त सवाई शिवदानसिंहजी (सन् १८५९-१८७४) का समय भी चित्रकला की दृष्टि से कम महत्त्व का नहीं है। हिन्दी और फारसी के वे विद्वान थे। चित्रकला एवं संगीत कला के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि थी। हां विलासी अधिक होने के कारण उनकी कलात्मक अभिरुचि भी विलासी वैभव से परिपूर्ण थी। काम कला के आधार पर निर्मित उनके समय के सैंकड़ो ऐरोटिक चित्रकला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। संगीत के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि होने के कारण उनके दरबार मे रण्डियो एवं अन्य कलावन्तो का जमघट रहता था। इनके समय मे चित्रित रण्डियो के सैंकड़ो व्यक्तिचित्र संग्रहालय मे उपलब्ध है, जिन पर फोटोग्राफी के प्रभाव के कारण कम्पनी शैली का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। इनके समय से ही अलवर शैली के वैभव का ह्रास होने लग गया था। पाश्चात्य प्रभाव के कारण फोटोग्राफी का अधिक प्रचलन हो गया और अलवर शैली का काव्यात्मक सौंदर्य, रंगो की प्रखरता और रेखाओं की सबलता तथा परदाज का अकन धीरे-धीरे लोपोन्मुख हो गया।

महाराज मंगलसिंहजी अपने पूर्वजो के विपरीत ललित कलाओं के प्रति विशेषत चित्रकला के प्रति विशेष अनुराग नहीं रखते थे, किन्तु फिर भी राज्य की कलात्मक परम्परा को नानगराम, बुद्धाराम, उदयराम, मूलचन्द, जगन्नाथ, रामगोपाल, किशनलाल आदि चितेरे निभाते रहे। बुद्धाराम पशु-पक्षियो के चित्रांकन मे सिद्धहस्त थे। वे राजगढ के किले के शीशमहल एवं अलवर संग्रहालय के दारोगा थे। मूलचन्द हाथीदांत पर चित्र बनाने मे प्रवीण थे। हाथीदांत पर अंकित अनेक व्यक्ति चित्र अलवर शैली की अनुपम विशेषता है।

राजस्थान के मंदिरों और छतरियो मे भी भित्तिचित्रण की परम्परा पनपी है। अलवर भी इस परम्परा के वहन मे पीछे नहीं रहा है। थाने म मंगलसिंहजी की माताजी द्वारा निर्मित मंदिर तथा भूरासिद्ध के मंदिर मे अनेक चित्र बने हुए हैं, किन्तु बाद के होने के कारण वे कला की दृष्टि से इतने उत्कृष्ट नहीं हैं। राजमहल के मंदिरो मे भी यत्र तत्र चित्रण मिलता है जो बिना देखरेख के प्राय समाप्त ही हो गया है। लड्डू खवासजी के मंदिर मे कागज पर निर्मित लघुचित्रो को दीवार पर सटाकर ऊपर से शीशा लगा दिया गया है।

थाने की हनुवन्तसिंह की छतरी, राजगढ की खवास के बाग की छतरी एवं माचेडी के बाग की छतरी तथा तालवृक्ष की छतरी मे जो भित्तिचित्र बने हुए हैं वे काल कवलित होते हुए भी अपने वैभव की झांकी आज भी दे रहे हैं। इनमे राम और कृष्ण की लीलाओं एवं राजाओं की सवारी एवं दरबार के चित्र अधिक अंकित हैं। निश्चय ही इन छतरियो की कला मे लोक कला का प्रभाव अधिक है। रेखांकन एवं रंग संयोजन भी लोक कलात्मक ही अधिक है, जिससे अलवर मे लोक कलात्मक चित्रकला के विकास का सहज ही परिचय मिलता है।

उपर्युक्त अलवर के भित्तिचित्रो के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अलवर मे जिस चित्र शैली का विकास हुआ वह द्विधारा मे प्रवाहित हुई एक भित्तिचित्रो के रूप मे और दूसरे पोथी ग्रंथो एवं लघु चित्रो के रूप मे।

अलवर के भूतपूर्व महाराज श्री जयसिंहजी बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। संगीत चित्रकला एवं स्थापत्य कला उनके समय में विशेषत: विकसित हुई। राजपूती कला के सम्पूर्ण वैभव से युक्त उनकी सवारी का एक १० फुट लम्बा और २ फुट चौड़ा चित्र उल्लेखनीय है। इस चित्र को बनाने वाले स्वर्गीय रामसहाय नैपालिया का नाम विशेष स्मरणीय है। श्री रामगोपाल, रामप्रसाद, जगमोहन, ओंकारनाथ आदि चितेरों का योगदान भी कम महत्त्व का नहीं है। कहना न होगा कि योरोपीय प्रभाव, फोटोग्राफी के आविष्कार आदि ने अलवर शैली की महत्त्वपूर्ण परम्परा को भी प्राय: समाप्त कर दिया। आज उसका वैभव, संग्रहालयों, व्यक्तिगत संग्रहों तथा शीशमहलों और मंदिरों में छिपा पड़ा है।

अलवर शैली के विषय—

जैसा कि पहले संकेत दिया जा चुका है कि अलवर शैली मे विषय की दृष्टि से विविधता रही है। बख्तावरसिंहजी के समय तक राजपूती दरबारी वैभव, महफिलें, कृष्णलीला, रामलीला, प्राकृतिक परिवेश में साधु-संतो एवं नाथों से धर्म-चर्चा, राग रागिनी आदि का विशेष चित्रण हुआ। विनयसिंहजी और बलवन्तसिंहजी ने रागरागिनी बारहमासा तथा संस्कृत और हिन्दी की पुस्तकों का चित्रण विशेष करवाया जिसमें महाभारत, गीता, रामायण, शिवकवच, दुर्गा सप्तशती, गीत गोविन्द, काली सहस्त्रनामा, महिमनस्त्रोत आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मुगलिया दरबार के अनेक मुसलमान कलाकारों एवं सामन्तो के सम्पर्क के कारण अलवर की चित्रकला में राजपूती वैभव के स्थान पर मुगल चित्रकला एव मुस्लिम विषयों का प्रभाव अधिक आने लगा, जिसके फलस्वरूप कुरान गुलिस्तां, बदरे मुनीर आदि ग्रंथों को विषय बनाकर विस्तार से चित्रांकन हुआ। पोथी चित्रण के साथ ही लघुचित्रों मे भी मुगल विषयों का आधिक्य विशेष दर्शनीय है। विषय की दृष्टि से तीसरा दौर शिवदानसिंहजी के समय (सन् १८५७) से प्रारम्भ होता है। फोटोग्राफी के प्रभाव के कारण इनके समय में व्यक्तिचित्र अधिक बनने लगे। कामशास्त्र के आधार पर तथा गणिकाओं के सैकड़ों चित्र इनके समय के उपलब्ध होते हैं। योगासन भी अलवर शैली का प्रमुख विषय रहा है। इस प्रकार समूह चित्रों से व्यक्ति चित्रण की ओर अलवर शैली अग्रसर हुई है।

अलवर शैली की विशेषताएँ—

बख़्तावरसिंहजी के समय के प्रारम्भिक चित्रों तक में राजस्थानी शैली का सम्पूर्ण विशेषताएँ अलवर की चित्रकला में दर्शनीयहैं। इसलिए जयपुर शैली से उन्हें अलग कर पाना थोड़ा कठिन है किन्तु फिर भी प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य रहन-सहन एवं शारीरिक प्रभाव इन चित्रों में द्रष्टव्य हैं। भावात्मकता, रागात्मकता और लोक-कलात्मकता से युक्त ये चित्र रेखांकन एवं रंगयोजना की दृष्टि से सुन्दर हैं।

अपने चरम उत्कर्ष के समय में अलवर शैली में ईरानी, मुगल और राजस्थानी (विशेषत: जयपुर शैली) का आश्चर्यजनक संतुलित समन्वय देखते ही बनता है। इस समन्वय के कारण अलवर शैली के स्वरूप को आसानी से पहिचाना जा सकता है। पुरुषों के मुख की आकृति

ग्राम की शक्ल मे अर्थात् ठोडी म थोडा खम देकर बनाई गयी है। स्त्रिया के कद कुछ ठिगने, उठी हुई वेणिया, अत्यधिक परिश्रम से बनाए गये अग प्रत्यग अलवर शैली की निजी विशेषता है। वेशभूषा मे स्थानीय प्रभाव पगडियो के बधेज मे स्पष्ट झलकता है। पुरुषो एव स्त्रियो के पहनावे मे राजपूती एव मुगल वेशभूषा का प्रभाव लक्षित होता है। अलवर का प्राकृतिक परिवेश इस शैली के चित्रो मे वन, उपवन, कु ज, विहार, महल, अटारी आदि के चित्राकन मे देखा जा सकता है।

सुन्दर बेलबूटो वाली वसलियो का निर्माण अलवर शैली की निजी विशेषता है। इन वसलियो का व्यापार सन् ४७ तक होता रहा था। व्यापारी लोग वहाँ की बेलबूटोदार वसलिया लेकर उनपर पुराने चित्र लगा देते थे, जिससे उनकी शोभा द्विगुणित हो जाती थी। इस शैली के चित्र अत्यधिक परिश्रम से बनाए गये सुन्दर मुखाकृति वाले, बेलबूटेदार हाशियो से युक्त और सुवरण के आलेखनो से सजे शोभनीय होते है। मुगल शैली जैसा बारीक काम, परदाजा की धुआ के समान छाया तथा रेखाओ की सुघडता अलवर के चित्रण मे कमाल की है।

रगो का चुनाव भी अलवर शैली का अपना निजी है। चिकने और उज्ज्वल रगो के प्रयोग ने इन चित्रो को आकर्षक बना दिया है। लाल, हरे और सुनहरी रगो का प्रयोग शैली मे विशेष हुआ है। चादी के रग की पतली किनार वाले, नीले तथा लाल हाशिए चित्रो की शोभा बढाते है। सफेद बादल, शुभ्र-आकाश, पशु पक्षिया से युक्त वन-उपवन, नदी, नाले, पवन आदि का अकन अलवर के प्राकृतिक परिवेशानुकूल ही हुआ है।

शताधिक वर्षो मे पनपी एव विकसित हुई अलवर की चित्रकला राजस्थानी चित्रकला की अमर धरोहर है जिसकी उपलब्धि देश विदेशो के अनेक राजकीय एव व्यक्तिगत सग्रहालयो मे विपुलता से प्राप्त होती है। अलवर शैली पर अध्ययन न होने के कारण उसके चित्रो मे मुगल शैली या जयपुर शैली के चित्रो की श्रेणी मे रखा जाता है जो कला के विभाजन की दृष्टि मे भ्रामक है। निश्चय ही विस्तृत अध्ययन से अलवर शैली के अन्य कितने ही नए अध्याय खुलेंगे।

आधुनिक चित्रकला—

पारम्परिक चित्रण के उपरात अलवर मे आधुनिक चित्रकला का जैसा विकास होना चाहिए था वह नही हो सका। स्वतत्रता के उपरान्त कलाकारो को राजकीय सरक्षण तो रहा नही, किंतु फिर भी हैपी स्कूल मे सम्बद्ध कला-भारती नामक सस्था ने चित्रकला को आगे बढाने मे सहयोग दिया। स्वर्गीय श्री रामसहाय नैपालिया ने कला के उत्थान मे इस दृष्टि से विशेष योग रहा है। वे मुगल शैली के विशेष चितेरे थे, किन्तु उन्होने नये कलाकारो को बढावा देने मे किसी प्रकार की कसर न रख छोडी। श्री विष्णु शर्मा का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। वे बगाल शैली के अच्छे चित्रकार रहे है। मीनाकारी, पच्ची-कारी, सिमत्री एव फूल पत्तियो के निर्माण मे यथार्थवादी शैली का सुदर प्रभाव उनके चित्रो मे

द्रष्टव्य है । खेद कि उन्होंने बहुत कम चित्र बनाये हैं और अपनी पुरानी धरोहर पर ही जीवित रहना चाहते हैं । अलवर की आधुनिक चित्रकला में सबसे उत्कृष्ट हस्ताक्षर **श्री वल्लभदास वर्म्मन** है । सही रूप में उन्होंने समय के अनुकूल अनेक नये प्रयोग किये हैं । बादामी और सलेटी रंगों का प्रभाव उनके चित्रों मे देखते ही बनता है । वे क्यूबिस्ट शैली से अधिक प्रभावित हैं । खेद यही है कि वे आलसी बहुत हैं और चित्रकला को केवल अपना शौक समझते हैं । **डॉ० पी० एन० माथुर** ने भी पिकासो एवं अन्य पाश्चात्य कलाकारों की नकल पर कुछेक चित्र बनाये हैं पर वे भौंड़ी नकलमात्र ही हैं उन चित्रों के आधार पर कलाकार का कोई व्यक्तित्व नही बन पाता । कला भारती के अध्यापकों को चाहिए कि वे नवोदित चित्रकारो को नवीन बोध की तथा नवीन तकनीक की विशेष जानकारी दे, जिससे अलवर की आधुनिक चित्रकला को कोई दाय हो सके ।

संगीत परम्परा

अलवर की संगीत परम्परा भी कम महत्त्वपूर्ण नही है । जनमानस में अनवरत रूप से बहने वाली संगीत की धारा ने अलवर की घाटियो, खेतों एवं गली-मुहल्लों को समय-समय पर सजीव बनाए रखा है । अन्य स्थानों की भांति अलवर में भी संगीत की धारा द्विविध रूप में प्रवाहित हुई है—एक लोक संगीत के रूप में और दूसरी सामती परिवेश मे पले शास्त्रीय संगीत के रूप मे । अपने-अपने स्थान पर दोनों ही अखिल-भारतीय स्तर पर अपना नाम रखती हैं ।

लोक-संगीत—

अलवर जिले का लोक-संगीत अनेक रूपो मे प्रवाहित होता आया है जिसको अध्ययन की दृष्टि से निम्नांकित भागों में विभाजित कर सकते हैं ।

(१) अलीबख्शी ख्याल ।
(२) रतवाई ।
(३) तुर्रा कलंगी ।
(४) ढप्पली राग ।
(५) राणे-डूम, मीरासी, नटनी-बेरड़ी, कोली, कालबेलियो, के गीत ।

(१) अलीबख्शी ख्याल—अलवर जिले में ही नही वरन् इसके आसपास के जिलों में भी अलीबख्शी ख्याल का जनसमाज में पिछली शताब्दी से बड़ा प्रचार रहा है ।

अलवर रियासत के मंडावर ग्राम मे अलीबख्शजी का जन्म १०० वर्ष पूर्व हुआ कला और साहित्य में अत्यधिक रुचि होने के कारण उन्होंने नवाबी आनन्द की अपेक्षा कला की सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बनाया । मंडावर के इस पूत के पांव पालने में ही दीखने लग गये थे । बाल्यकाल मे ही इनको स्वांग अथवा प्रदर्शन देखने का अत्यधिक शौक था । जब वे दस वर्ष के थे, तब उन्होंने नौटंकी का प्रदर्शन देखा । अपने को नवाबी कुल से सम्बन्धित समझ वे नौटंकी के रंगमंच पर बैठ गये । कुछ लोगों ने इस बात पर अपना आक्रोश प्रकट किया और कहा कि

यह मच ब्राह्मणो के लिए है तुम्हारे लिए नही है और यदि उन्हे रगमच पर बैठने का शौक है तो वे स्वय अपना दल बनाकर आदर प्राप्त करें। बालक अलीबख्श के हृदय को इस बात से अत्यधिक आघात पहुँचा और वे अपने गुरु गरीबदासजी के पास उचित परामर्शार्थ पहुँचे। अपने गुरु के आशीर्वाद से उन्होने ख्याल लिखना प्रारम्भ किया। इसके साथ ही साथ उन्होने अपने एक स्वतत्र दल का सगठन भी किया। अलीबख्शजी के परिवारवालो तथा अन्य सजातीय लोगो को उनका यह कृत्य बहुत अखरा और वे उनके रास्ते मे रोडे अटकाने लगे। अलीबख्शजी को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये गाँव गाँव भटकना पडा। उनके दृढ निश्चय को देखकर घर वालो ने उन्हे स्वतत्र कर दिया। अन्त मे उन्होंने अपना मनोरथ पूरा कर लिया।

अलीबख्शजी को सगीत तथा नृत्य की विधिवत् शिक्षा प्राप्त नही हुई थी। वे अपनी मडली को स्वय अभ्यास कराते थे तथा अपने कलाकार साथियो के साथ बडा सद्व्यवहार किया करते थे। अलीबख्शजी के ख्याल आडम्बरहीन रगमच पर अभिनीत होते थे। ख्यालो के प्रदशन इतने अच्छे होते थे कि लोग शाम को शुरु होने वाले प्रदर्शनो के स्थानाभाव के भय से दोपहर से ही अपना स्थान ग्रहण कर लेते थे। अलीबख्शी ख्यालो का प्रदर्शन व प्रचलन केवल अलवर क्षेत्र तक ही सीमित नही रहा वरन् दिल्ली, रेवाडी तथा आगरा तक भी इनके प्रदर्शनो की धूम थी। अलीबख्शजी के छिट-पुट गीत, जो उनके ख्यालो मे प्रयुक्त होते हैं, लोकजीवन मे सूर, तुलसी, कबीर के गीतो की तरह भजन-मडलियो मे गाये जाते हैं।

अलीबख्शजी के ख्याल भक्ति से ओत प्रोत और नृत्य सगीत की सुरम्य भाव लहरियो से सराबोर होते थे। अभिनेतागण स्वय भक्तिरस मे सराबोर होकर नाचते थे। अलीबख्शी ख्याल का सगीत और भावपक्ष बहुत ही प्रबल तथा उच्चकोटि का है। पद सचालन पर अधिक जोर नही दिया जाता। वेश विन्यास आदि में भी बडी सरलता बरती जाती है। कहते हैं अलीबख्शजी स्वय रगमच पर नही उतरते थे, परन्तु जब भी कभी प्रेरणावश ऐसा करते तो वे कमाल ही कर दिखलाते थे और जनता को अपनी भाव भगिमाओ से रुला-रुला कर छोडते थे।

ख्याल परिचय तथा कला— राव अलीबख्शजी ने कुल मिलाकर नौ ख्यालो का निर्माण किया जिनके नाम इस प्रकार से हैं—(१) नलका बगदाव ((२) नल का छडाब (३) पद्मावत् (४) निहालदे (५) फिसानाआजाइब (६) गुलबकावली (७) चन्दावत (८) अलवर का सिफत नामा (९) महाराजा शिवदानसिंह का बारहमासा।

अलीबख्शजी ने अपने कलाकारो पर जो नैतिक बन्धन लगाये थे वे इतने कडे थे कि आज उन्हे पालने का किसी मे सामर्थ्य नही हैं और न इन उच्चकोटि के साहित्यिक ख्यालो को प्रदर्शित करने की किसी मे योग्यता ही है। अलीबख्शजी के हस्तलिखित ख्याल आज भी अलवर के राजकीय सग्रहालय मे सुरक्षित हैं। उत्तर प्रदेश की नौटकियो से अलीबख्शी ख्यालो का कुछ साम्य अवश्य है, परन्तु अभिनय तथा भावभगिमाओ की दृष्टि से अलीबख्शी ख्याल उनसे कई गुना अच्छे हैं। अलीबख्शी ख्यालो मे नाटकीय तत्व विशेष हैं और नौटकियो मे सगीत के तत्त्व।

संगीत-विधान—संगीत अलीबख्शी ख्यालों की जीवन-शक्ति है। इसके आधार पर ही उन्होंने अपनी विजय-पताका फहराई है। रात्रि-भर जनता अपने स्थान से हिलती तक नही है। इनका संगीत राग-रागिनियों के आधार पर है। रागिनियों की विशेपताओं को लोक-जीवन में इस प्रकार सुना जाता है—

भैरू सुर वाको कहै कोलहू चलै अघाय।
मालकोप तब जानिये पाहन पीघल जाय।।
चलै हिन्डोला आप से सुनत राग हिन्डोल।
बरसै जल घनघोर अति सुन मेघराग के बोल।।
श्री राग के सुर सुनै तो सूखो वृक्ष हराय।
दीपक दीपक जर उठै जो कोई जानै गाय।।

अलीवख्शजी के संगीत से उपर्युक्त असम्भव कार्य तो सम्भवत: नही हों, किन्तु यह बात अवश्य है कि वे दर्शक को इतना आत्मविभोर कर देता है कि वह अपनी सुध-बुध भूल जाता है। अलीबख्श का 'सोरठ राग' अधिक प्रसिद्ध है। जो सोरठ पड़ जाने पर ही गाया जाता है। कुछ पक्तियां उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है—

कर पकरत चुरियाँ सारी करक गई, मोरी नरम कलइयां देखो दइया वल खाय गई।
कर मैं कर कंधा गह लीन्हो, तन, मन, धन जोबन बस कीन्हो।।
अरी कौन छुडावै मोहे सखी सब छोड़ महेली सरक गई।।
सास के पास गई जब गोरी, पूंछ उठी चुरियाँ तोरी—
कर सोवत करवट माँह दबीचुरियाँ, मुरक, मुरक सारी मुरक गई।।

निष्कर्प यह है कि राव अलीबख्श के ख्यालो में उनके व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। लोक-जीवन को लोक-भाषा के अन्तर्गत ही संजोया गया है। जो स्वभाविकता की पूर्ण रक्षा करता है। संगीत की इस परम्परा का निर्वाह करने वाले पेहल—मुण्डावर में अब भी कुछ संगीतकार है जो उसी तन्मयता के साथ उनके ख्यालों को गाते है और खुले रंगमंच पर उनका प्रदर्शन करते हैं।

(२) रतवाई—अलवर जिले में मेव जाति का अपना अलग सांस्कृतिक महत्व रहा है। इस दृष्टि से उनका संगीत भी अपना निजी महत्त्व रखता है। रतवाई उनका प्रसिद्ध एवं सर्व-प्रिय लोक-संगीतात्मक गीत है। भारतीय लोक-साहित्य और लोक-संगीत में निश्चय ही एक महान् उपलब्धि है। मेवणी का गाना तो वैसे ही प्रसिद्ध है। 'रतवाई' गाने में उनकी परीक्षा भी हो जाती है। रतवाई एक गजल की किस्म का गीत होता है। इसे गाने के लिए बल की आवश्यकता है। मेवात में कहावत भी प्रसिद्ध है कि 'रतवाई' गाने वाली औरत इतनी बलिष्ठ हो जाती है कि उसका कभी गर्भपात नही हो सकता। इस गीत के प्रश्नोत्तर रूप में प्रेम-

शृगार, भक्ति-नीति एव व्यावहारिक बातों का विनय बनाया जाता है। पुरुषो एव औरतों की अलग अलग 'रतवाई' होती है। 'रतवाई' के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

पहले तो वणाऊ मैं अपणो गुरु उस्ताज,
गुरु मेरा न मोकू ज्ञान बताये ये। —टेक ॥
अल्ला का बी दोसत कइय नबी रसूल,
अल्ला न सारी मिसर रचाई है।
× ×
मेरी नणदी का बीरा सच्चो नाव सुभान को।
वही तो लगावै बेडा पार खलक जहान को ॥
मेरी नणदी का बीरा परबत मे मोरा नाच रो।
देखनी चलूँगी याको नाच, तनक डोलो डारियो ॥

(३) तुर्रा किलगी— अलीबख्शी ख्याल की ही भाति यह भी लोक नाट्य की परम्परा का सगीत स्वरूप है जा स्वतत्रता के पूर्व तक अलवर मे अग्रेजो द्वारा विशेषत आयोजित किया जाता था। प्रतापबध के नीचे के बाग मे तुर्रा किलगी सम्ब धी सगीत प्रतियोगिता रात-रात भर चलती थी और दर्शक लोग बडे चाव से उस सगीत का रस लिया करते थे। अब यह परम्परा नाम मात्र का शेष है।

वास्तव मे तो तीन सौ वर्ष पूर्व दिल्ली तथा आगरा के मध्य तुकुनगिरी और शाहअली नामक दो महान् सत और विद्वान हो गये है। उनकी शिष्य परम्पराओं मे आज भी सैकडो व्यक्ति ऐसे हैं जा तुर्रा किलगी के विषय पर काव्य रचना करते है और रात-रात भर काव्य प्रतियोगिता मे लीन रहते हैं। तुर्रा, भगवान शिव का प्रतीक माना जाता है और किलगी, पार्वती का। यह शिष्य परम्परा केवल दिल्ली आगरा तक ही सीमित नही रही बल्कि समस्त उत्तर भारत मे फैल गयी। आज से लगभग १५० वर्ष पूव यही तुर्रा किलगी की काव्य प्रतियोगिता अलवर के आस पास के क्षेत्रों मे भाप के खेलो के रूप मे परिवर्तित हो गयी। प्रारम्भ मे तुर्रा किलगी विषय पर ही खेल रचे गये और खेले गये, परन्तु बाद म हिन्दुओ की अन्य प्रचलित धार्मिक कथायें तुर्रा किलगी के नाम पर नाट्य स्वरूप मे विकसित होने लगी। तुर्रा किलगी के दलो मे जिस तरह कई रातो तक काव्य प्रतियागिता चलती थी, उसी तरह इन दलो के नाट्य-दगल भी होने लगे, जिससे धीरे धीरे तुर्रा किलगी नामक एक विशिष्ट तथा परिपक्व नाट्य-परम्परा राजस्थान को उपलब्ध हुई। तुर्रा विषयक विशिष्ट ख्याल जो प्रचलित हुए, वे इस प्रकार है— *भक्त पूरणमल, राव राजा केवट, राजा रिसालू, चौबिशी, अनूपसिंह, हरिश्चन्द्र,* रुक्मणी मगल, गोपीचद भरथरी। किलगी के विशेष ख्यालो की सूची भी इस प्रकार है— तुर्रा किलगी की शादी, निहालदे सुल्तान, सीता-सलवती, चौबिली मदनपाल, पूरणमल, मदवती, मोरध्वज, रूप बस त, नरसिंह, ध्रुव चरित्र।

तुर्रा किलगी के खेल विशिष्ट रगमच समूह पर प्रस्तुत किये जाते है। पात्र तथा पात्रायें ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं से नीचे उतर कर तुर्रा किलगी की विशेष धुनो पर तथा नृत्य मुद्राओं

में अपना अभिनय करते है। रात को प्रारम्भ हुआ यह खेल प्रातः सूर्योदय तक चलता रहता है और जनता हजारों की संख्या मे उसका आनन्द लेती है। तुर्रा किलंगी के खेल शैली वेशभूषा काव्य रचना तथा नृत्य मुद्राओ की दृष्टि से राजस्थान के अन्य ख्यालों से बिल्कुल भिन्न है। उनमें काव्य तत्त्वों एवं सगीत की प्रधानता है तथा उनमें अभी तक व्यावसायिक तत्त्वों का समावेश नहीं हुआ है। इस शैली की विशेपता उसके गायन, वादन तत्त्वों में विशेष रूप से परिलक्षित होती है। पात्र-पात्राये हाथ में छडियाँ लिए हुए गाते-नाचते हुए जब पारस्परिक संवाद में निरत होते हैं, तब शहनाई और नक्काडा बजाने वाले उनकी संगत नहीं करते, जब वे गा चुकते है तब उन्ही धुनों को अत्यन्त कलात्मक ढंग से शहनाई वाले पकड़ते हैं और नक्काड़ा वाले उनके नाच पर विभिन्न गीतो की सृष्टि करते है। अलवर मे खास तौर से इस संगीत में मंजीरा और ढ़प का प्रयोग होता था। जगदीशजी के मन्दिर के नीचे एक-दो बुड्ढे रंगरेज तुर्रा किलंगी के गीतो को गुनगुनाते रहते हैं और अपने अतीत को याद करते रहते है।

(४) ढ़प्पाली राग—लोक सगीत की दृष्टि से अलवर जिले में ढ़प्पाली राग अत्यधिक प्रचलित है। प्रति वर्ष जिले के किसी न किसी भाग मे ढ़प्पाली राग की प्रतियोगिताएँ हुआ करती हैं। लक्ष्मणगढ, गढ़ी, खेड़ली, कठूमर, बिवाई, अखैगढ़, हरसाना, नगर आदि कस्बे ऐसे है जहां इस राग की प्रतियोगिताएँ हुआ करती हैं। ढ़प्पाली राग को धमाल राग भी कहते हैं। इस राग का विशेपतः अलवर और भरतपुर जिले में काफी पुराने समय से प्रचलन है।

ढ़प्पाली राग के गायक पेशेवर नहीं होते वरन् गांवों के कुछ व्यक्तियों की एक संगीत मंडली विशेष होती है। यह समय-समय पर राग का रियाण करते रहते हैं और संगीत का दगल होने पर अपना कमाल दिखाते है। ढ़प्पाली राग शास्त्रीय संगीत का ही एक ग्रामीण स्वरुप हैं। संगीत की सरलता तथा सरसता इस में विशेप दर्शनीय है। जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक राग रागिनी को उसके अनुसार गाया जाता है। ढ़प्पाली राग की दूसरी विशेपता है संगीत में काव्य का संयोग। सुन्दर और सरस पदो का गायन विशेप रूप से ढप्पाली राग में अपनाया जाता है। जिससे काव्य की उतकृष्टता का जन-समाज को परिचय मिलता है। अलवर के स्वर्गीय भट्टजी प्रतियोगिता हेतु जिस पद को ढ़प्पाली राग में गाया करते थे उसका काव्यात्मक सौंदर्य देखते ही बनता है—

अधर धर रे बेनु बजाई कान
विसर गई सुधि बुधि सब कि
सुनत मधुर कल गान अधर धर रे...... ॥
यमुन उलटि भई अति व्याकुल
पवन थक्यो बलवान
चन्द चकित चलन मे चूक्यो
तारा गगन विमान् अधर धर रे...... ॥

—तारालाल भट्ट।

ढप्पाली राग का गान प्रारम्भ होने पर अनुक्त रूप से चलता रहता है। इसका गान अधिकतर समूह रूप मे ही होता है। सगीतज्ञो की विशेषता यह होती है कि वे दूसरे दल का उत्तर देकर एक राग आगे के लिये गा देते है जिसका उत्तर प्रतिपक्ष को अपनी पारी मे देना पडता है। इसमे गायको के सहारे के लिय एक बहुत बडा नगाडा ही मुख्य वाद्य यन्त्र होता है। ढप्पाली राग के रात-रात भर दगल चलते ह तो देखने ही बनता है। हजारो की सख्या मे भीड एकत्रित हो जाती है किन्तु फिर भी वे लाउडस्पीकर आदि आधुनिक यत्रो का उपयोग नही करते हैं। उन ग्रामीण लठ्ठ धारी रसिको के बीच मे दगल की प्रतियोगिता का निर्णय करना भी बडा कठिन हो जाता है। कभी-कभी दगल बडा उग्र रूप धारण कर लेता है। जब सगीत मे उग्रता आती है तो निश्चय ही आनन्द का विषय होता है, किन्तु यदि नगाडे के सगीत के स्थान पर लाठियो का सगीत बजने लगता है तो बडी कठिनाई का सामना करना पडता है।

ढप्पाली राग का एक विशेष प्रिय गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

पिया क्या नही आये-री
वयो नहीं आये, वयो नही आये
वो तो बलम विदेशन धाये।
पल-पल मोह एक कल्प सम बीतत
नयन रहे जल छाये
दील मुत्ता पतिता सुन वाहन
बाल न जात सहाये।

(५) राणे, डूम, मीरासी, नटनी वेरडी, काली कालबेलियो के गीत—अलवर की लोक-सगीत परम्परा मे कुछ एक जातिया ऐसी हैं जिन्होंने सगीत को अपना व्यवसाय ही बना रखा है। उनमे राणें, डूम, मीरासी, नटनी-वेरडी कालबेलिये आदि का नाम उल्लेखनीय हैं। राजपूती सामन्ती सस्कृति का प्रभाव होने के कारण शादी-विवाह और अन्य अवसरो पर राणियाँ और राणे महफिलो मे सगीत का रस घोलते रहे हैं। ये अधिकतर माड राग गाने मे प्रवीण रहे हैं। खेद कि सामन्ती परम्परा के बिखराव के कारण इनकी जीविका पर भी प्रभाव पडा है और ये लाग अपना पुश्तैनी धधा त्यागते जा रहे हैं। मीरासी खासतौर से मेव जाति के सगीत-कार हैं। ये लोग रतवाई महाभारत आदि गाते हैं और मेवो की विवाह-शादी मे कमाते हैं। कालवेलिए सर्प नचाकर तथा बीन पर धुनें निकालकर जीवकोपार्जन करते हैं। इनके सगीत मे शिवजी और भरतृहरी के गीतो की प्रधानता रहती है। नागिन फिल्म के गाने के उपरान्त से सिनेमायी गीतो से ये बहुत प्रभावित हैं।

नटनी और वेरडियो का धधा ही नाच गाकर तथा पेशा कर अपना पेट भरना है, अलवर के चारो ओर अर्थात् गाजूकी, सीनीमेढ और कलसाडा जैसे स्थानो मे इनका स्थायी पडाव है। इनके गानो मे लोक सगीत का प्रभाव कम और सिनेमा का प्रभाव अधिक आ गया है।

कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो पेशे की दृष्टि से नहीं वरन् संगीत की दृष्टि से ही अलवर के सांस्कृतिक पर्वों पर विशेष गीत गाते हैं जिनमें गूगा-नौमी पर कोलियों का भेड़ी गीत, जागैर्णों के धार्मिक गीत और होली की धम्मारें अधिक प्रचलित हैं। मीरो और मीणियाँ भी सामुहिक गीत ऐसे मौकों पर गाते हैं। अलवर की मालिनें शादी-विवाह तथा पच-पेज पर 'फिरंगी नल मत लगवावैं' जैसे गीतों को गाकर लोक संगीत की धुनों के द्वारा शहर के आधुनिक बोध एवं लाउडस्पीकरी चिघाड़ को भी वश में कर लेता है।

सामन्ती संगीत परम्परा

मुगल दरबारो मे शास्त्रीय संगीत की जो परम्परा पली उसके अनुकूल ही देशी रियासतों में भी वह परम्परा परिपोषित हुई। प्रत्येक राज्य में गुणीजनखाना स्थापित होने लगा और उसमें कवि मुसव्विर और कलावन्त तथा अन्य कलाकार प्रश्रय पाने लगे। अलवर ने भी इस परम्परा को अपनाया। यहाँ के गुणीजनखाने में उच्चकोटि के राजकवि, चितारे तथा संगीतकार रखे जाने लगे। गुणीजनखाने की परम्परा बख्तावरसिंहजी से मिलती है, किन्तु उसका सुव्यस्थित स्वरूप विनयसिंहजी के समय मे ही देखने को मिलता है। यह बात निश्चित है कि विनयसिंहजी को स्थापत्य एवं चित्रकला से विशेष प्रेम था, पर फिर भी उनके दरबार में शास्त्रीय संगीत के गायक एवं वादक विद्यमान थे।

राजाओ के दरबार में दशहरा, दिवाली, होली, गणगौर जैसे त्योहारों पर तथा विवाह, जन्म-दिन और इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर संगीत की महफिलें लगती थी। दरबार के समय पर भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में शास्त्रीय संगीत का आयोजन विशेष रूप से अत्यधिक आकर्षक होता था। महाराज विनयसिंहजी के समय के कलाकारों का विशेष अध्ययन किया जा सकता है।

शिवदानसिंहजी के बारे में इतिहासकारों एवं ज्ञाताओं की यही राय रही है कि वे महत्त्वपूर्ण राजा नहीं थे, किन्तु उन्होंने अपने अय्याशी स्वभाव के कारण संगीत की परम्परा को आगे बढ़ाया। उनके दरबार में संगीत से सम्बन्धित सैंकड़ों ही कलावन्त थे। यह बात दूसरी है कि उन्हें रंडियो मे अधिक प्रेम था। इसलिए ठुमरी, दादरा और गजल जैसी संगीत परम्पराओं को उन्होंने अधिक प्रोत्साहित किया। अपनी अय्याशी एवं संगीत प्रियता के पीछे वे इतने पागल हो गए कि आर्थिक स्थिति के डावांडोल हो जाने पर अंग्रेजी सरकार को हस्त-क्षेप करना पड़ा। केड़ल साहब ने जैसे ही कार्यभार सम्भाला, सबसे पहले उन्होंने गुणीजन-खाने को समाप्त किया, जिससे बहुत सी संगीतज्ञ एवं नर्तकी रंड्डियाँ, तबलची, सारंगिये तथा अन्य कलावन्त अलवर छोड़कर ही भाग गए।

संगीत की शास्त्रीय परम्परा में सबसे उज्ज्वल नाम स्वर्गीय महाराज जयसिंहजी ने किया। वे संगीत, साहित्य एवं स्थापत्य से कितना प्रेम रखते थे यह दूसरी बात है, किन्तु वे अपने दरबार में उच्चकोटि के संगीतकार रखने के पक्ष में रहते थे यही कारण है कि उनके गुणीजनखाने में

भारतवर्ष के श्रेष्ठ कलाव त रहते थे। अनाव देखाँ साहब, आशिकअली जैसे सगीतकारो से यहाँ का दरबार सुशोभित था।

महाराजा जयसिहजी ने नृत्य एव सगीत के लिए महलो के ऊपर बडे-बडे तीन कमरे बनवाये, जिनमे आज राजकीय सग्रहालय अवस्थित हे। अलाबदेखा साहब का डागुर घरान के कारण अलवर मे विशेष नाम था। सगीत की अनेक सभाये राज्य की ओर से आयाजित की जाती थी, जिनमे अनेक राज्यो के बडे बडे कलाकार भाग लेते थे। अलाबदेखाँ साहब के घराने के अतिरिक्त अबदुलवहाबखाँ साहब, इनायतहुसैनखा साहब, आशिकअली, मुस्ताकअली जैसे कलाकार राजदरबार की शोभा थे। महाराज के दरबारी वादको मे जमरूद्दीनखाँ साहब, कालेखा साहब का सितार मे विशेष स्थान था। आदिबअलीखाँ साहब वीणा बजाने मे प्रवीण थे। अलवर के दरबारी गायको मे डागुर घराने के तानसेन पाण्डे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अलाबदेखाँ साहब की परम्परा को अलवर मे उन्होने जितना प्रचारित किया उतना अन्य किसी सगीतकार ने नही। महाराज जयसिहजी के उपरान्त अलवर की सगीत परम्परा मे कोई विशेष योगदान नही हुआ। स्वतत्रता के उपरान्त तो यह सामती परम्परा प्राय छिन्न भिन्न हो गई। कलाकारो की स्थिति दिन प्रतिदिन दयनीय होने लगी और वे अपने जीविकापाजन के लिए अन्यत्र जाने लगे।

कला-भारती

कलाओ की उपयुक्त बिखरी हुई दशा को सगठित करने के लिए समय समय पर कला-भारती ने विशेष कार्य किया है। सस्था की स्थापना 'ललित कला परिषद्' के रूप मे सन् १६४३ मे हुई। महाराजा तेजसिहजी इसके सरक्षक थ तथा प्रधानमत्री के० बी० एल० सेठ सभापति रहे। यह सस्था हैपी स्कूल के भवन मे अपने कार्यक्रम सचालित करने लगी। सगीत शिक्षा की यहाँ व्यवस्था की गई, जिससे नगर के उदीयमान बालक बालिकाएँ सगीत की शिक्षा प्राप्त कर सकें। इस वर्ष से उच्चकोटि के कलाकार अध्यापको को सस्था मे नियुक्त किया गया है, जिससे सगीत की शिक्षा अधिक प्रचार एव प्रसार पा सके। डाक्टर रामप्रसाद शास्त्री कला भारती के निर्देशक नियुक्त किए गए हैं, जो स्वय अखिल भारतीय स्तर के वायलिन वादक हैं। श्री योगेन्द्रमोहन मिश्र सगीत विभाग मे, श्री सोहनलाल गागानी तबला व नृत्य और श्री अहमदखाँ तबला के शिक्षक नियुक्त किए गए है। इसके अतिरिक्त अलवर की सगीत परम्परा मे कुछ कलाकार ऐसे है जिनका नाम उल्लेखनीय है। श्री रघुवीरशरण सितार वादक है वे आकाशवाणी के महत्त्वपूर्ण कलाकारो मे से है। अलवर के कितने ही बालक और बालिकाओ को सितार की शिक्षा दी है। श्री कन्हैयालाल मारवाडी का भी पारम्परिक सितार वादको मे विशेष नाम लिया जाता है। निश्चय ही उनमे अलवर का पुरानापन आज भी झलकता है। रूखे और सूखे से दिखने वाले कलाकार श्री गोपालअधिकारी ध्रुवपद एव धम्मार गाते है तो श्रोताओ को रसमग्न कर देते है। सगीत की दृष्टि से भट्ट भाइयो एव दामोदरजी का नाम अलवर की परम्परा मे उल्लेखनीय है। नवोदित कलाकारो मे श्री टोगडा तथा ज्योत्स्ना विमल का नाम स्मरणीय है।

श्रृति-मण्डल

संगीत प्रेमी प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिन्हा तथा प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र जैमन की लगनशीलता के कारण गत वर्ष जयपुर की भाँति अलवर में भी संगीत के उत्कृष्ट कार्यक्रमों के आयोजन हेतु 'श्रृति मण्डल' की गत वर्ष स्थापना की गई। श्रृति मण्डल का प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण में भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य कला के प्रति रुचि उत्पन्न करना तथा इस कला को पुनरजीवित एव पुनरस्थापित करना है। दो वर्षों में ही श्रृति मण्डल के तत्वाधान मे अखिल भारतीय स्तर के कलाकारों के कार्यक्रम आयोजित किए गए है, जिनमें श्री उस्ताद बिस्मिल्लाखाँ, श्री अब्दुल हलीम जाफर, पंडित जसराज, श्रीमती लक्ष्मीशंकर, श्रीमती निर्मला अरुण जैसे कलाकारों की कला को सुनने का शुभ अवसर अलवर को प्राप्त हुआ है। निश्चय ही श्रृति मण्डल के कार्यक्रमों को सुव्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने के लिए संगठन के सचिव श्री प्रकाशचन्द्र जैमन एवं सचिव श्री जे० एन० शर्मा बधाई के पात्र है।

स्थापत्य एवं तक्षण कला

अन्य ललितकलाओ की भाँति अलवर की स्थापत्य एवं तक्षण कला भी उच्चकोटि की है। अलवर जिले के आसपास में महाभारत और बौद्धकालीन कला का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है। विराट नगर (वैराठ) में खुदाई से अनेक वस्तुएँ इस प्रकार की उपलब्ध हुई है, जिनमे अशोक के लेखों एवं तत्कालीन स्थापत्य का पता चलता है। मध्यकालीन कला का भी अलवर केन्द्र रहा है। आभानेर, राजोरगढ़, सैथली, तालवृक्ष आदि ऐतिहासिक स्थल ऐसे है जहाँ मध्यकालीन कला पनपी एव परिपोषित हुई है। अलवर की भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार की रही है कि मुसलमान शासन के केन्द्र दिल्ली से वह प्रभावित होता रहा है, इसलिए जहाँ मध्यकालीन स्थापत्य को तोड़ा-फोड़ा भी गया है वहाँ उन लोगो ने अपनी कला को भी स्थान-स्थान पर बढावा दिया है। प्राचीन स्थापत्य के अवशेष अब भी प्रचुर मात्रा में यहां उपलब्ध है। चीनी ह्वेनसांग जो लगभग ६३४ ई० में इस प्रदेश मे आया था, ने अपनी यात्रा वर्णनों में लिखा है कि इस प्रदेश के निवासी बड़े वीर साहसी एवं कला प्रेमी थे। महमूद गजनवी ने मूर्तियों व मन्दिरो को तोड़ने की दृष्टि से इस प्रदेश पर कई बार आक्रमण किए। सारांश यह है कि अलवर की स्थापत्य एवं तक्षण कला अन्य कलाओं की भाँति उच्चकोटि की है उसे अध्ययन की दृष्टि से चार भागो में विभाजित कर सकते है—

(१) मध्यकालीन कला।

(२) पठान एवं मुगलकालीन कला।

(३) राजपूत कला।

(४) आधुनिक कला।

(१) मध्यकालीन कला—मध्यकालीन स्थापत्य एवं तक्षण कला की दृष्टि से अलवर जिले के कुछ एक स्थलों का विशेष अध्ययन होने की आवश्यकता है। वे कला की दृष्टि से ही

उत्कृष्ट नहीं हैं, वरन् ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। पारानगर अर्थात राजोरगढ, तालवृक्ष, मैथली, भानगढ आदि स्थानो पर मध्यकालीन कला के नमूने बिखरे पडे हैं।

राजोरगढ अर्थात पारानगर

पूर्व मध्यकालीन स्थापत्य के अध्ययन मे राजोरगढ के वैभवशाली स्थापत्य का अभी तक विशेष अध्ययन नही हुआ है। राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली तथा राजकीय सग्रहालय, अलवर मे प्राप्त कुछेक उत्कृष्ट प्रतिमाओ और दो शिलालेखो के आधार पर विद्वानो ने उसका यत्र-तत्र उल्लेख किया है। मारु के राजस्थानी स्थापत्य-अक मे श्री जयन्तकर ने पारानगर अर्थात राजोरगढ की सामान्य जानकारी देने का प्रयत्न किया है, जिससे ज्ञात होता है कि राजोरगढ के मन्दिरो की स्थापत्यकला एव तक्षण कला विस्तृत खोज एव अध्ययन की अपेक्षा रखती है। खजुराहो की कला का प्रेरक यह स्थल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व का है।

अलवर से दौसा को जाने वाला मार्ग दुर्गम पहाडियो एव गहन जगलो से घिरा हुआ है। *सरिस्का पशु पक्षी विहार से आगे कालीघाटी नामक जगली पहाड की सडक बलखाती ऊपर की* ओर चढती जाती है। धौक, सालर तथा अन्य वृक्षो से घिरी घाटी की सर्वोच्च ऊँचाई से काकवाडी की ओर कच्चा मार्ग जाता है, जो गहन पहाडी जगल मे होने के कारण जगली पशु-पक्षियो से घिरा हुआ है। खजूर के झुरमुट मे आगे निकलने ही काकवाडी का सुदृढ किला *दिखाई देने लगता है। वास्तव मे तो राजोरगढ का वैभव यहीं से प्रारम्भ हो जाता है।* चारो ओर पहाडियो से घिरी यह ५-६ मील लम्बी और लगभग २-३ मील चौडी प्राकृतिक स्थली आज छोटे-छोटे गाव जैसे काकवाडी, राजोर, माटनवास, गट आदि को शरण दिए हुए है, कभी वैभवशाली सस्कृति का केन्द्र रही है। पहाडियो पर पक्की चारदिवारी, किले, बुर्जिया, तथा समतल मे अनेक मन्दिरो का बिकीर्ण वैभव आज भी अपनी गाथा सजोये मिट्टी के गर्त मे सोया पडा है। लगता है जैसे एक हजार साल पुरानी सस्कृति फिर जागरूक होकर अपनी गाथा को उजागर करेगी।

अतीत का वैभव—

राजोरगढ, पारानगर, आदि नामो से विख्यात इस नगर के अतीत का पता या तो कुछेक शिलालेखो से चलता है या किवदन्तियो से। यहा के राजनैतिक वैभव एव कलात्मक धरोहर के प्रति इतिहास आज तक मौन रहा है। यहाँ से सम्बन्धित दो शिलालेख विशेष महत्त्व के हैं। एक राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली मे तथा दूसरा राजकीय सग्रहालय, अलवर मे सुरक्षित है। प्रथम से ज्ञात होता है कि सवत ६७६ ईसवी (सन् ६२२-२३) की वैशाख वदी १३ को गुर्जर प्रतिहार सम्राट महिपालदेव (क्षितियालदेव-कनोज) के शासनकाल मे सिट्पद्र के शिल्पी सर्वदेव द्वारा निर्मित तीर्थंकर शान्तिनाथ के जैन मन्दिर का निर्माण हुआ। सागर नन्दी और लोकदेव इस प्रशस्ति के रचयिता हैं, जिनकी लिपि नागरी भाषा सस्कृत एव समय १०वीं शताब्दी से प्रारम्भ है। दूसरा शिलालेख *वाले पत्थर पर अकित है जिसमे सावट के पुत्र मथनदेव द्वारा स० १०१६* (सन् ६५६) मे मन्दिर के लिए भूमिदान का उल्लेख मिलता है। दोनो ही शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व के है।

इनसे ज्ञात होता है कि १०वी शताब्दी में कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारो का यहां तक राज्य था। हर्ष की मृत्यु के उपरान्त (६४७) लगभग डेढ़ सौ वर्षो तक यहां राजनैतिक उथल-पुथल मची रही। ९वी सदी के प्रारम्भ में प्रतिहारवंश का आधिपत्य होने पर सारे ऊपरी भारत मे सुशासन तथा शान्ति के दिन फिर आ गये। प्रतिहार गुर्जरों की एक शाखा थी जो छठी सदी से गुजरात तथा मालवा मे राज्य करते थे। इसलिए ये गुर्जर प्रतिहार के नाम से इतिहास में विख्यात है। इस वंश के संस्थापक का नाम नागभट्ट था जिसने आठवी सदी के मध्य में राज्य जमाया था। सर्वप्रथम ये लोग मंडौर मे रहते थे पर कालान्तर में उज्जैन तथा कन्नौज को इनके वंशजो ने राजधानी बनाया। १०वी सदी के प्रारम्भ तक इन्होंने बड़ी शान-शौकत मे राज्य किया किन्तु महेन्द्रपाल (सन् ९१० ई०) की मृत्यु के उपरान्त से गुर्जर-प्रतिहारवंश की अवनति होने लगी। महेन्द्र का भ्राता महिपाल (क्षितिपाल) चंदेल सरदारो की सहायता से स्वय राज्य का मालिक बन बैठा। प्रतिहार वंश मे महीपाल के उपरान्त महेन्द्रपाल द्वितीय तथा देवपाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गुर्जर प्रतिहारो का कन्नौजी वैभव नष्ट-भ्रष्ट होने लगा और वहां अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये।

अलवर के मत्स्य (माचैड़ी) व्याघ्रराज (राजगढ़) देवती तथा राज्यपुर (राजोरगढ़) आदि स्थानों तक पहले गुर्जर-प्रतिहारों का राज्य था ही, अतः कन्नौज के वैभव के समाप्त होते ही वे लोग मत्स्यपुरी, व्याघ्रराज, राज्यपुर आदि स्थानों पर छोटे-छोटे राज्य जमाए बैठे रहे। मण्डोर, उज्जैन तथा कन्नौज की प्रभामय संस्कृति राजोरगढ जैसे स्थानो मे अपनी स्थानीय भौतिकता ग्रहण करते हुए पनपती रही। देवती से अपना निकास मानने वाले बड़गूजर राजपूत अकबर के समय तक मत्स्यपुरी, राजगढ एव राजोरगढ़ को अपनी राजधानी बनाये रहे, किन्तु अकबर की दमन-नीति के कारण ये भी दमित हुए और यह सारा प्रदेश जयपुर नरेशों की जागीर मे आ गया पर मिर्जा राजा जयसिंह ने संवत् १६८६ (१६३८) में गढ़ एवं राजोर की चौतरफा पहाड़ियो पर परकोटा खिचवाकर किला बनवाया, जो आज भी पारानगर के वैभव को ताक रहा है।

कलात्मक परिवेश—

पारानगर, राजोरगढ़ आदि नामों से विख्यात यह ऐतिहासिक स्थल पिछले बारह सौ वर्षो का इतिहास अपने में समाए हुए है। ९वी शताब्दी से लेकर १८वी शताब्दी तक यहां राजनैतिक उथल-पुथल होती रही है, किन्तु स्थापत्य एवं तक्षण कला के माध्यम से आज भी यहां के मध्यकालीन वैभव का अन्दाज हम सहज में ही लगा सकते है। ६ मील लम्बे और तीन मील चौड़े चारों ओर पहाड़ियों से घिरे इस स्थल में स्थान-स्थान पर मूर्तियां बिखरी पड़ी है। खण्डहरों से लगता है कि कभी यहां पर सैकड़ों विशाल मन्दिर रहे होगे जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर खजुराहों की कला अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँची होगी। खजुराहो की शैली मे खजुराहो से पूर्व बने ये मन्दिर स्थापत्य एवं तक्षण कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। कितनी ही बावड़ियां और चौकूटे कुएं प्राचीन नगर के वैभव की आज भी झांकी दे रहे है।
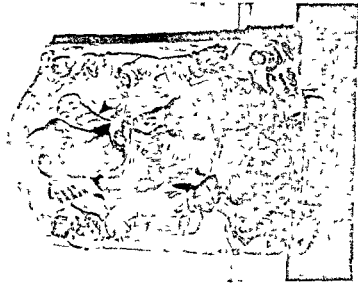
नीलकंठ से प्राप्त नृत्य करते हुए गणेशजी की महत्त्वपूर्ण प्रतिमा ।

एक शीश और चार शरीर बासुरी वादन नीलकंठ से प्राप्त खण्ड ।

नीलकंठ मंदिर की दीवार पर अंगड़ाई
लेती हुई नायिका ।
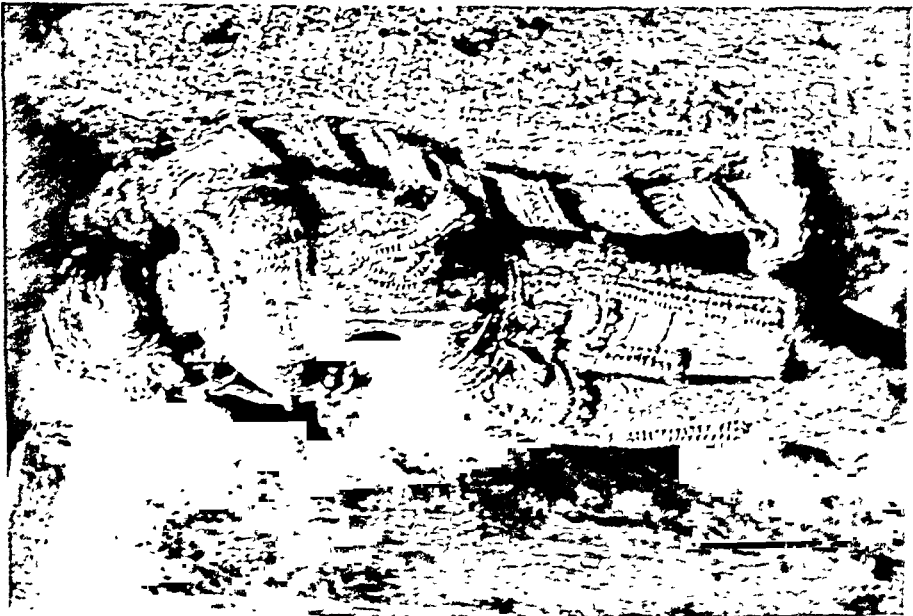
नीलकंठ मंदिर के स्तम्भ पर मांडने
मांड़ती हुई नायिका ।

धार्मिक दृष्टि से यहां के मंदिर जैन धर्म से सम्बन्धित है। आश्चर्य की बात यह है कि यहां के जैन मन्दिर शैवमन्दिरों से पूर्व के ज्ञात होते हैं, जबकि अन्य स्थानों पर जैन मन्दिरों में शैव मंदिरों की नकल की गयी है। पुरातत्व विभाग ने कुछेक मंदिरों के खण्डहरों को टटोलने का प्रयत्न किया है जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख है—

१ नील कंठेश्वर महादेव	शिव मंदिर।
२ नौगजा	जैन मंदिर।
३ बलस की देवरी	जैन मंदिर।
४ कोटान की देवरी	शिव मंदिर।
५ लाछों वालों की देवरी	शिव मन्दिर।
६ टावर की देवरी	शिव मन्दिर।
७ हनुमान की देवरी	शिव मन्दिर।
८ बाग की देवरी	शिव मंदिर।

यहां पर जो एक मात्र सुरक्षित मंदिर है वह नीलकंठेश्वर या नीलकंठ का मंदिर है। इस मंदिर के भी उत्तर दक्षिणी पार्श्व प्रायः समाप्त हो चुके है तथा उनके स्थान पर नयी कोठड़ियां बन गयी हैं, किन्तु फिर भी मंडप एवं गर्भगृह तथा शिखरआदियों के यों सुरक्षित हैं। यहां के अधिकतर मंदिर पश्चिम की ओर अभिमुख हैं। इस मंदिर में विशाल चबूतरे के बाद मंडप प्रारम्भ होता है। लगभग १० फुट ऊंचे चार कोरित स्तम्भों पर मंडप टिका हुआ है। स्तम्भ सुन्दर मूर्तियों एवं बेलबूटों से मंडित हैं। कुछेक मूर्तियां तो कला की उत्कृष्ट उदाहरण है। शालभंजिकाओं की नक्काशी सुघड़ और सुव्यवस्थित है। ६ फुट लम्बे चौड़े गर्भगृह के बीच में काले पत्थर का शिवलिंग प्रतिष्ठित है, जिसमें आज तक अखण्डज्योति जलती आ रही है। यही अकेला मंदिर है जिसकी पूजा आज तक चली आ रही है। मंदिर का शिखर उत्तर भारतीय आर्य शैली का है जिसके अधोभाग में चारों ओर लगभग ५०-६० मूर्तियां जड़ित है, जिनमें देवी देवताओं, अप्सराओं, नायिकाओं और भैरों की मूर्तियां है। शिव, ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु, गणेश आदि देवताओं की मूर्तियां पौराणिक कथाओं को अभिव्यक्त करने के साथ ही कलात्मक अभिव्यक्ति को भी प्रकट करती हैं। उद्दाम यौवन में अंगड़ाई लेती हुई नायिका की प्रतिमा उत्कृष्ट है तथा कुछेक ऐसी प्रतिमाएं भी है जो तत्कालीन तांत्रिक एवं शृंगारी प्रभाव की द्योतक हैं।

मंदिर के आसपास पुरातत्व विभाग ने एक अस्थायी स्थानीय संग्रहालय भी बना रखा है, जिसमें अनेक मंदिरों से प्राप्त मूर्तियां एवं स्थापत्य के अन्यतम प्रस्तरखण्डों को सुरक्षित रख छोड़ा है। इनमें गणेश की अनेक मूर्तियां कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। काले, हल्के सलेटी रंग के स्थानीय पत्थरों से बनी मूर्तियां एवं अन्य स्थापत्य के प्रस्तरखण्ड पारानगर के वैभव की झांकी देते हैं। छत के लिए निर्मित कुछेक कोरित शिलाखण्ड दृष्टिक्रम के लिहाज से अत्यधिक

महत्व के है। एक शीश में ४ बांसुरी वादिकाओं का इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रस्तर खण्ड है। गणेश की अनेक प्रतिमाओं में से दो प्रतिमाएं कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। दोनों ही काले पत्थर पर कोरी गयी हैं। अलवर संग्रहालय की प्रतिमा लगभग २ फुट ऊँची है, जिसके अधो-भाग में सं० १०१६ का लेख अंकित है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि गणेश का उदर अधिक भारी नहीं है तथा उनकी नृत्य-भंगिमा का अंकन मनोहारी है। प्रतिमा का लालित्य, अलंकरण एवं सुघड़ता बेजोड़ है। दूसरा गणेश स्थानीय अस्थायी संग्रहालय में है। अष्टभुजा गणेश की यह प्रतिमा अलंकरण से युक्त नृत्य-गणेश की ही है जिसके अत्यधिक सूक्ष्मता से कोरा गया है। सफाई, नफ़ासत और सजीवता इतनी है कि अलंकरण के बीच टिमटिमाती दो छोटी-छोटी आंखें सजीव लगती हैं।

नीलकंठेश्वर मन्दिर से लगभग सौ गज की दूरी पर टूटे हुए गर्भगृह में एक १६ फुट ऊंची और ६ फुट चौड़ी दिगम्बर जैन तीर्थांकार की विशाल मूर्ति खड़ी हुई है जिसके चारों ओर विशाल चबूतरे के ऊपर मन्दिर के खण्डहरों का अम्बार लगा हुआ है। लगता है यह कभी विशाल मन्दिर रहा होगा। ग्रामीण विशाल मूर्ति के कारण इसे नौगजा कहते हैं तथा बड़गूजर राजा के राज्यकाल में भाईशाह महाजन द्वारा निर्मित बताते हैं। लाल पत्थर की यह विशाल मूर्ति अपने आप में अनोखी एवं कलापूर्ण है। मन्दिर के खण्डहरों में हाथियों, संगीतकारों, नृत्यकारों, अप्सराओं, देवी-देवताओं आदि की पंक्तिबद्ध मूर्तियां विशेष दर्शनीय हैं। व्यवस्थित खुदाई होने पर इस खंडित अम्बार में से अनेक कलात्मक सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

कोटान की देवरी में हल्के गुलाबी रंग का शिवलिंग स्थापित है तथा गर्भगृह के सामने के खम्बे कलात्मक मूर्तियों से कोरित हैं मन्दिर की विशालता एवं कलात्मकता दर्शकों को आज भी लुभाती है।

यहां-वहां झाड़ियों एवं पलाशवन में प्रतिमाएं और कोरित प्रस्तरखण्ड आज भी दर्शकों की बाट जोह रहे हैं। गढ़ से लेकर राजोर तक के भूखण्ड में फैला राजोरगढ़ का वैभव खजुराहों की कला का अग्रगामी माना जाना चाहिए। भानगढ़ के उजड़ होने पर पारानगरी की तलहटी में मीणा जाति आकर बस गयी है। उनके कच्चे मकानों की दीवारों तथा चबूतरों में न जाने कितने देवी-देवता, अप्सराएं, नायिकाएं एवं कोरित प्रस्तर-खण्ड दबे पड़े हैं।

पहाड़ियों से घिरा यह स्थान किसी समय अत्यधिक सुरक्षित समझा जाता था, और आज आवागमन के उचित साधन न होने के कारण दुर्गम है। टहला से दबकन होते हुए सीधी पहाड़ी चढ़कर ४-५ मील का रास्ता तय करने पर नीलकंठेश्वर के दर्शन हो सकते हैं या कालीघाटी से कांकवाड़ी होते हुए जीप से चक्कर काटकर वहां पहुँचा जा सकता है। बरसात में यहां का सौंदर्य द्विगुणित हो उठता है। चौक की हरियाली और झरनों की कलकल में शिव और पार्वती ग्वालों से अलगोजे सुनते रहते हैं। गणेश नृत्य कर उठते हैं, अप्सराएं झूम उठती हैं और कामभावना से युक्त मूर्तियां एक दूसरे से गाढ़ आलिंगन पाश में बंध जाती हैं।
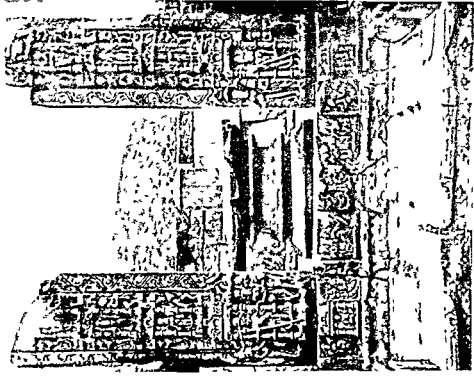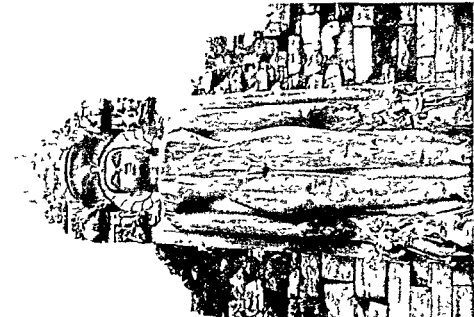
नौगजा १६ फुट ऊँची जैन तीर्थंकर की विशाल प्रतिमा।

लाछो की देवरी नीलकंठ का कलात्मक द्वार।
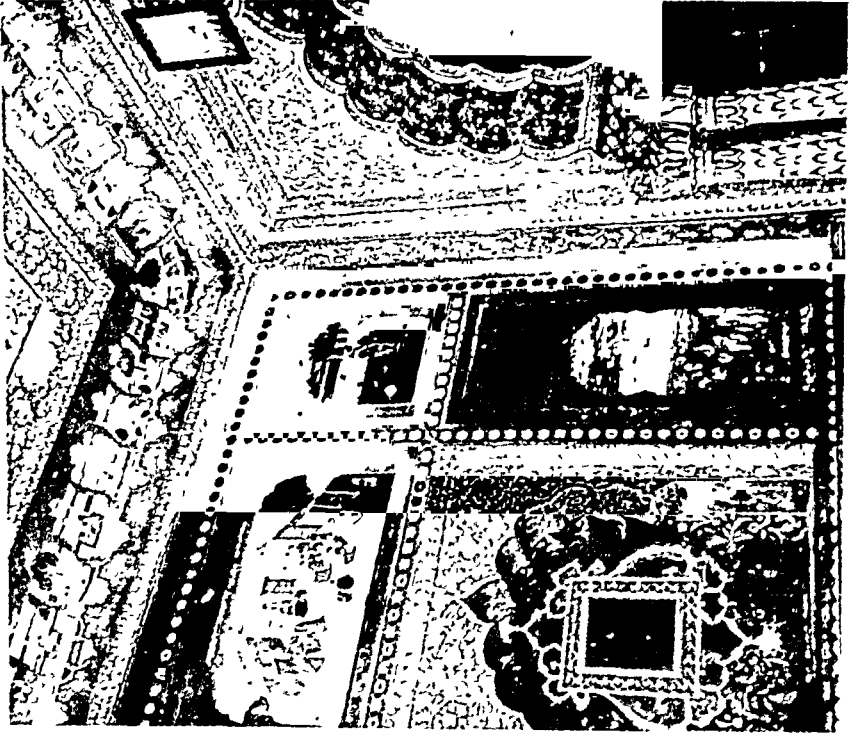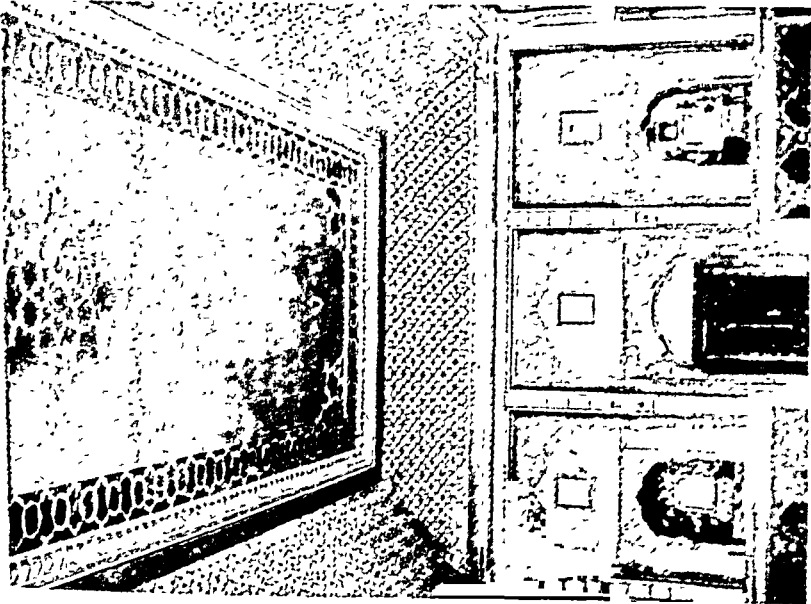
राजगढ़ दुर्ग का शीशमहल।

दीवानजी की हवेली का शीशमहल।

तालवृक्ष--

तालवृक्ष के प्राकृतिक परिवेश मे मण्डावरा ग्राम के समीप एक मन्दिर था, जो लगभग राजोरगढ के मन्दिर की ही शैली मे बना हुआ है। मन्दिर छोटा अवश्य है पर स्थापत्य की दृष्टि से उल्लेखनीय है। काले पत्थर द्वारा निर्मित इस मन्दिर को ग्रामवासी महारूपी के नाम से पुकारते थे। गत वर्ष सम्पूर्ण मन्दिर को एक मील दूर से सम्पूर्ण उखडवाकर पुन तालवृक्ष मे शिवजी के विशाल लिंग पर खडा कर दिया गया है। उस मन्दिर के समीप ही वराह भगवान की सुन्दर एव कलात्मक मूर्ति खेत से प्राप्त हुई है जो दूसरे मन्दिर मे प्रतिष्ठित कर दी गयी है। तालवृक्ष मे भी मध्यकालीन कोई विशाल मन्दिर रहा होगा किन्तु उसके स्तम्भ, भरने तथा शालभजिकाए आदि राजपूतकालीन छतरियो मे लगादी गयी हैं।

सैंथली—

गोविन्दगढ के पास सैंथलीग्राम कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा होगा, कि तु अब केवल वहाँ के मन्दिर के खण्डहर मे कुछेक मूर्तिया ही प्राप्त हो पायी है, जो राजकीय सग्रहालय मे प्रदर्शित है। ये मूर्तियाँ गुलाबी पत्थर से बनी कला की अपार धरोहर हैं। ग्राम मे मन्दिर का नवीनीकरण कर दिया गया है जिससे प्राचीन कला का पता नही चलता।

भानगढ —

पारानगर से करीब बारह मील दक्षिण मे यह स्थान है। भानगढ के खडहरा मे दो मदिर आज भी कुछ अच्छी दशा मे हैं। इनमे मे एक विष्णु को समर्पित है, व दूसरा शिव को। ये मन्दिर सभवतया नीलकठेश्वर मन्दिर के कुछ समय पश्चात बने थे। शिव मन्दिर स्थापत्य योजना की दृष्टि से नीलकठेश्वर के समान ही है, परन्तु इसम अलकरण न के बराबर है। इन सब मन्दिरो को देखन पर एक तथ्य दर्शक को स्पष्ट हो जाता है कि ये मन्दिर स्थापत्य की उस परम्परा की ही देन है, जो कि उत्तर भारत मे गुप्त सम्राटो ने प्रारम्भ की थी। ये मन्दिर मूलत उडीसा, मध्यभारत व अन्य स्थाना पर पाये जाने वाले अन्य मन्दिरो के समान ही है। हिन्दू व जैन मदिर स्थाप य के सिद्धान्तो का इनमे भी उसी भाति पालन हुआ है।

पठान एव मुगलकालीन कला

दिल्ली के अत्यधिक समीप होने के कारण मुसलमानो का प्रभाव अलवर जिले की सस्कृति एव कला पर भी पडा है। पठान एव मुगल आदि शासको ने समय समय पर अलवर और तिजारे पर आधिपत्य जमाये रक्खा था, इसलिए अपनी रुचि एव आदत के अनुसार उन्होने अलवर एव तिजारा तथा अन्य स्थानो पर अनेक ऐसे गुम्मद एव कलात्मक इमारतें बनवायी है जो स्थापत्य की दृष्टि मे विशेष महत्त्व की है। त्रिपोलिया का गुम्मद, फतहजग का गुम्मद, खानखाना का गुम्मद (जो जर्जरित हालत मे होने के कारण बीस वर्ष पूर्व गिर गया), तिजारा का गुम्मद एव अनेक छोटी मोटी इमारते खानजादा, पठानो और मुगलो की कलात्मक धरोहर है।

पठान काल की कई सुन्दर इमारतें अलवर में आज भी मौजूद हैं। बारहवीं शताब्दी के अन्त में स्थापित इस्लामी सत्ता ने उत्तर भारत में भवन निर्माण कला को एक नया मोड़ दिया। भारत में इस्लामी कला का जन्म, वास्तव में, दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों के समन्वय से हुआ। एक ओर तो जहाँ इसकी प्रेरणा के स्रोत सीरिया, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका और सासानियन फारस थे, वहाँ दूसरी ओर इसने स्थानीय परम्पराओं व आदर्शों का पूरा सहारा लिया है। तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक के चारसों वर्ष के काल में दिल्ली व अन्य मुस्लिम प्रान्तीय राजधानियों में पठान शासकों ने जिन इमारतों का निर्माण कराया उनमें उपरोक्त तथ्य भली भाँति परिलक्षित है। इसी युग की एक इमारत अलवर में रेलवे स्टेशन के पास स्थित है। यह है फतहजंग का मकबरा। इस इमारत का निर्माण सन् १५४७ में हुआ था। इस मकबरे को देखते ही सहसा सहसराम में स्थित शेरशाह सूरी के मकबरे व बीडर स्थित अहमदवली शाह के मकबरे का स्मरण हो आता है। फतहजंग एक महत्त्वपूर्ण खानजादा सरदार था जिसके मरणोपरान्त यह मकबरा बनवाया गया। इस मकबरे में एक शिलालेख है जो नागरी-लिपि में है। हम एक ऊँचे व भव्य द्वार से इस मक़बरे के प्रांगण के प्रवेश करते हैं। इमारत पाँच मंजिला है व एक चौकोर आधार पर स्थित है। ऊपर का गुम्बद पत्थर की कारीगरी से अलकृत है। गुम्बद के ऊपर एक छोटी सी चार खम्भों की छतरी है। वास्तुविदों का कहना है कि पठान स्थापत्य में इस प्रकार की छतरी बनाने की प्रेरणा बौद्ध स्तूपों के ऊपर स्थित छतरियों से ली गई है। कुल मिलाकर यह छतरी सारे मकबरे को अनुपात की दृष्टि से सौंदर्य प्रदान करती है। मकबरे के चारों कोनों को मीनारों की शक्ल दी गई है। ये मीनारें मुख्य इमारत से अलग नहीं हैं, बल्कि चिपकी हुई हैं। लगभग इसी काल का एक दूसरा मकबरा तिजारा कस्बे के पास स्थित है। यद्यपि यह इमारत फ़तहजंग के मकबरे के समान ऊँची नहीं है, परन्तु सुन्दरता में उससे किसी भी प्रकार कम नहीं है। मकबरा दुमंजिला व अठकोना है। ऊँचे-ऊँचे दरवाजों के नुकीले महराब, सुन्दर गढ़े हुए टोडों पर आधारित छज्जे, विशाल गुम्बद, गुम्बद के ऊपर व चारों ओर बनी हुई छोटी-छोटी छतरियाँ इमारत की सौंदर्य श्री में चार चाँद लगाती हैं।

राजपूत स्थापत्य कला

सन् १७७० से पूर्व तक अलवर पर अनेक जातियों की प्रभुसत्ता रही। सन् १७७० में महाराव प्रतापसिंहजी ने राजगढ़ के दुर्ग का निर्माण करवाकर राजपूत स्थापत्य का श्री गणेश किया। दुर्ग के बारह-दरियाँ छतरियाँ, गवाक्ष आदि को देखने से ज्ञात होता है कि वे राजपूत कला की प्रतीक हैं। महाराव प्रतापसिंहजी तथा बख्तावरसिंहजी का समय युद्धों में अधिक बीता, इसलिए वे स्थापत्य कला के निर्माण में अधिक समय नहीं दे सके। महाराज विनयसिंहजी का अलवर के राजपूती स्थापत्य के निर्माण में योगदान रहा है वह अविस्मरणीय है। मूसी महारानी के सती हो जाने पर उन्होंने सागर पर दो छतरी बनवायी है वह राजपूती कला का उत्कृष्ट नमूना है। सन् १९३८ में उन्होंने सागर के ऊपर अगल-बगल अनेक छतरियाँ बनवायी,
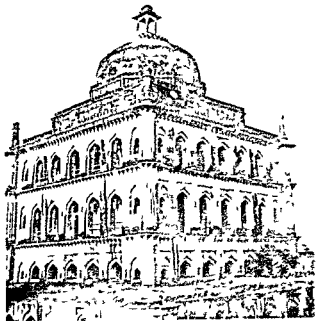
अटल विश्वास फतहजग का गुम्वद ।

महाराजा स्टेशन अलवर ।
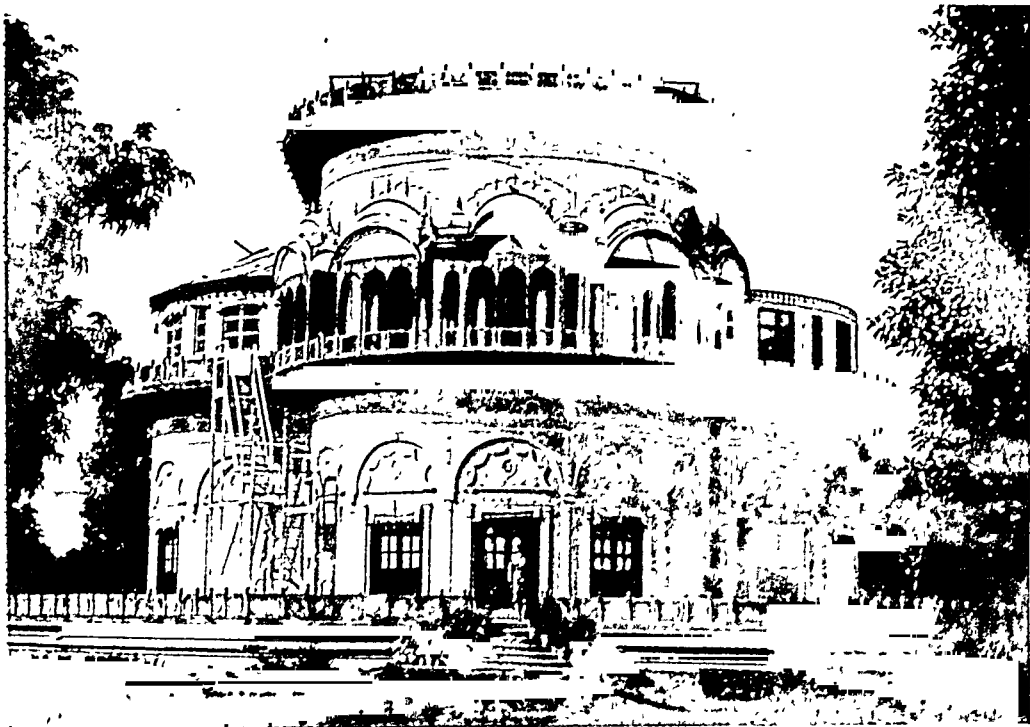
महाराजा मंगलसिंहजी की निजी गोल कोठी : कॉलेज पुस्तकालय ।

अतीत की याद : बारा का लक्ष्मण झूला, जो बाढ़ में बह गया ।

इसी समय राजमहल विनय विलास राजमंदिर आदि का निर्माण करवाकर उन्होंने राजपूती स्थापत्य कला में विशेष योगदान दिया। राजमहल की छतरियां राजपूत कला की सुन्दर उदाहरण है। इस दृष्टि से विनय-विलास का स्थापत्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विशाल चबूतरे पर बना हुआ यह भवन विनयसिंहजी ने अपने रहने के लिए बनवाया। स्थापत्य की दृष्टि से विनय विलास की बारह-दरिया, अनेक छोटी मोटी छतरियां, संगमरमर के स्तम्भ तथा संगमरमर की ही सुन्दर डिजाइनों में कटी हुई जालियां राजपूती कला की बेजोड़ निशानी है। सीलीसेड का महल भी उन्होंने बनवाया, जिसमें पारम्परिक राजपूत शैली का ही अधिक निर्वाह हुआ है।

आधुनिक स्थापत्य

पाश्चात्य प्रभाव के कारण अलवर का आधुनिक स्थापत्य अत्यधिक प्रभावित हुआ है। अंग्रेजों के सम्पर्क के कारण यहाँ के राजा पश्चिमी संस्कृति एवं रहन सहन से प्रभावित हुए, और उन्होंने अपने रहने के लिए पैलेस तथा कोठियों का विशेष निर्माण करवाया। वैसे तो अलवर के स्थापत्य में शिवदानसिंहजी एवं मंगलसिंहजी के समय में ही पाश्चात्य प्रभाव आने लगा था, किन्तु उसका पूर्ण विकास स्वर्गीय महाराजा जयसिंहजी के समय में हुआ। जिस प्रकार महाराजा विनयसिंहजी को राजपूती स्थापत्य का अधिक प्रेम था उसी प्रकार महाराजा जयसिंहजी का पश्चिमी प्रभाव से युक्त स्थापत्य का अधिक शौक रहा। अलवर में जितने पैलेस एवं कोठियां महाराजा जयसिंहजी ने बनवायी उतनी अन्य किसी राजा ने नहीं। अपने रहने के लिए उन्होंने विजयसागर पर "विजयमंदिर" नामक महल बनवाया, जो आधुनिक सुविधाओं में युक्त अपने समय का सुन्दर उदाहरण है। सरिस्का के जंगल में सरिस्का पैलेस बनवाया जो पश्चिमी स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है। अनेक गोल खम्भे तथा गोल कमरे आधुनिक सुविधाओं से युक्त हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण कोठी उन्होंने इटाराणा में बनवायी, जो अत्यधिक विशाल एवं सुन्दर है। इस कोठी की विशेषता यह है यह पश्चिमी एवं भारतीय स्थापत्य कला का सुन्दर उदाहरण है। शहर की अनेक सरकारी कोठियां जैसे स्वागत भवन, सज्जन विश्राम, सर्किटहाउस आदि उन्हीं के समय की बनवायी हुई कोठियाँ हैं।

अन्य शहरों की भांति अलवर शहर भी फैल रहा है। शहर की हवेलियों को छोड़-छोड़ कर लोग शहर के बाहर बड़ी-बड़ी कोठियाँ बनवा रहे हैं, जिनका स्थापत्य एक प्रकार से चूं चूं का मुरब्बा ही कहा जा सकता है। परम्परा एवं रूढ़ियों से चिपके हुए कुछ लोग स्थापत्य की भारतीय परम्परित शैली भी अपनाना चाहते हैं और आधुनिक प्रभाव में प्रभावित होकर मकानों में नवीनता भी लाना चाहते हैं। छोटे से प्लाट में दो तीन छोटे-छोटे कमरों की बनी हुई कोठी में वे आधुनिक स्थापत्य की सभी शैलियां चाहते हैं। उपनगरों एवं कोलोनियों का शहर अलवर निश्चय ही स्थापत्य की दृष्टि से दसवीं शताब्दी से लेकर अब तक जी रहा है। हजार वर्ष का यह कलात्मक इतिहास अपनी रुचि भेद एवं वैविध्य के कारण एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

संस्कृति

भारतीय संस्कृति अपने प्राचीन वैभव के कारण अत्यधिक महत्त्वशाली रही है। उपर्युक्त विभिन्न कलाओं के माध्यम से अलवर के सांस्कृतिक परिवेश का चित्र उपस्थित होता है। अपने रीति-रिवाज रहन-सहन तथा वेशभूषा के कारण अलवर में अनेक ऐसी जातियाँ हैं जो अपना अलग ही व्यक्तित्व रखती है। राजपूत, मीणा, अहीर, मेव पंजाब मे आने वाली जातियों के सांस्कृतिक परिवेश का विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है। इस दृष्टि से मेव जाति सबमे अधिक आकर्षक एवं अध्ययन का आधार बन सकती हैं। इन सब जातियों के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए अलवर अंक का स्वरूप अत्यधिक सीमित है। इसलिए यहाँ पर केवल सन् १९४६ के उपरान्त पंजाब से आई जातियों का अलवर में जो सम्मिश्रण हुआ है तथा यहाँ के सांस्कृतिक परिवेश पर जो प्रभाव पड़ा है, उसका संक्षिप्त विवेचन ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

अलवर के पुरुषार्थी तथा उनका सांस्कृतिक प्रभाव—

कहते है इतिहास जब करवट लेता है तो भूकम्प आते है। ऐसा ही एक भूकम्प सन् १९४७ में भारत-भू पर आया। उस समय भारत मे अंग्रेजी साम्राज्य की सांझ हो चुकी थी। स्वतंत्रता अंगड़ाई ही ले रही थी कि भारत के उत्तर-पश्चिम में धर्म के पवित्र आह्वान के लिये एक अपवित्र तूफान उठा, जिसने देखते ही देखते विकराल रूप धारण कर लिया। फल-स्वरूप सीमा-प्रान्त, पश्चिमी पंजाब, बुलोचिस्तान, बहावलपुर तथा सिंध के हिन्दु-सिक्खों का अपना ही भूमि पर स्थापित रहना भारी हो गया। पाकिस्तान पाक-साफ के लिये था और ये थे नापाक, नामाफ, कम से कम वहाँ के पाक-साफ मुसलमान इनको ऐसा ही समझते थे।

हिन्दु-सिक्ख भाई काफिलों के रूप में अपनी ही हसरतों की धूल उड़ाते भारत की ओर आने लगे। इस धूल में रह-रहकर वे फूल उनके सामने आ जाते थे, जिनको उनके सामने ही कुचला गया था। यद्यपि निजी तथा पैतृक सम्पत्ति को पीछे छोड़ने का भी उन्हें दारुण-दुःख था तथापि स्वधर्म को इस तूफान से सुरक्षित रख अपने साथ लाने में जो उन्हें सफलता मिली थी, इसके लिये उनके मन में निगूढ एक मुस्कान थी। स्वधर्म रक्षा-हेतु उन्होंने अपने ही हाथों अपनी यौवन-सम्पन्न कन्याओ को गोलियों का निशाना बनाया था, उनकी वीरार्द्धांङ्गिनियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये कुओं में कूद कर मौत का आलिंगन किया था। मध्यकालीन राजस्थान की सुप्त गौरव-गाथा उत्तर, पश्चिम में जाग चुकी थी।

इधर अलवर तथा भरतपुर के मेवो ने "मेवस्तान" का बवंडर मचा दिया। ये मेव कील-कांटे से लैस साबी नदी के तीरों पर अलवर तथा भरतपुर की प्रभुसत्ता को हड़पने के लिये गिद्धों की भाँति मंडराने लगे। इस विस्फोटक परिस्थिति को शान्त करने के लिये अलवर तथा भरतपुर के राज्यों के ग़ैर मुस्लिमों को भी उनसे लोहा लेना पड़ा। परिणाम-स्वरूप ७० प्रतिशत मेव भाग कर गुड़गांवा चले गये तथा शेप पाकिस्तान।

पुरुषार्थियों का आगमन तथा उनके लिये सहायता-कार्य—

उत्तर-पश्चिम से विस्थापित लोगों को अलवर में बसाने के लिये यहां के तत्कालीन महाराज श्री तेजसिहजी ने जो भागीरथ कार्य किया, उसे काल अपने गाल में नहीं ले सकता। वहां के अल्पसंख्यकों पर किये गये अत्याचारों की करुण-कहानी कहती रेलगाडी जब खैरपुर से दिल्ली पहुँची तो महाराज द्रवित हो उठे। उन्होंने विस्थापितों के ६,००० परिवार अलवर की १५०,००० बीघा भूमि पर बसाने के लिये अपने राज्य की सेवाओं को प्रस्तुत किया। महाराज के कर्मचारी सीमा-प्रान्त तक पहुँचे और वहां के अल्पसंख्यकों को अलवर में बस जाने के लिये उत्साहित किया। अप्रेल १९४७ से पुरुषार्थियों का अलवर में आगमन प्रारम्भ हुआ, १५ अगस्त १९४७ तक विशिष्ट अलवर में पुरुषार्थियों के ३००० कुटुम्ब आ चुके थे। इनकी सहायता के लिये चार शिविर—१ प्रताप उच्च विद्यालय, २ यशवंत उच्च विद्यालय (जो आजकल बहूद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित है), ३ रेलवे स्टेशन तथा ४ रेलवे स्टेशन के गुम्बद में सयोजित किये गये। इन शिविरों में पुरुषार्थियों के खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था थी। अक्टूबर १९४७ में अलवर राज्य अरक्षित सम्पत्ति अधिनियम प्रचलित किया, जिसके तहत उन मुसलमानों की सम्पत्ति, जो अलवर छोड़कर चले गये थे, राज्य को सर्पित हो गयी। ऐसी सम्पत्ति में जो सामग्री पडी थी उसकी सूची निर्माण की गई। सम्पूर्ण सामग्री को राज्य ने अपने अधिकार में ले लिया। ऐसे निवास स्थानों को पुरुषार्थियों को आबंट किया जाने लगा।

यह तो रही अलवर नगर में स्थापित होने वाले विस्थापितों की बात। अलवर के विभिन्न ग्रामों में, जो आज हम पुरुषार्थी बंधुओं की चहल पहल देखते हैं, ये पाकिस्तान से आकर पहले कांगडा, कुरुक्षेत्र तथा दिल्ली के सहायता शिविरों में बसे थे। १९४८-४९ में भी पुरुषार्थियों की एक लहर अलवर में आई थी। यह लहर काश्मीर से आई थी। अक्टूबर ४७ में पाकिस्तान ने सम्पूर्ण काश्मीर को निगलने की ठानी थी। यद्यपि भारतीय जवानों ने उसके इस दुःसाहस की धज्जियां उडा दी यद्यपि काश्मीर के जो प्रदेश उसके रक्त-पिपासे दांतों के तले आ गये, अथवा उसकी चिनौनी परछाई से कुलबुला उठे, वहां के हिन्दु-सिक्खों को भारत की ओर मुडना पडा। इनमें १०० परिवार अलवर जिले में बस गये।

तत्कालीन अलवर नरेन्द्र ने पुरुषार्थियों के पुनर्वास के लिये देहातों में भी सहायता शिविर चलाये जाने की व्यवस्था की। इनमें मुख्य शिविर रामगढ, किशनगढ, खैरथल, तिजारा, मुंडावर तथा देहाती शिविर अलवर थे। १९४८ में जब अलवर राज्य मत्स्य संघ में लीन हो गया तो इन शिविरों में सहायता की गति और अधिक तीव्र हो गयी। केन्द्रीय सरकार दिल्ली ने यहाँ पुनर्वास विभाग का श्री गणेश भी किया, इसके प्रबन्ध का कार्यभार आंशिक रूप से मत्स्य सरकार, अलवर को सौंपा गया। १९४८ में निष्क्रान्त सम्पत्ति मत्स्य अधिनियम के अन्तर्गत उन मेवों तथा अन्य मुसलमानों की सम्पत्ति को जो इसे व्यक्त कर भारत के किसी अन्य प्रदेश तथा पाकिस्तान को चले गये थे सम्पूर्ण रूप से मत्स्य संघ को सर्पित किया गया। ऐसी सम्पत्ति की देख भाल के लिये निष्क्रान्त सम्पत्ति संरक्षक विभाग के आकार का भी विस्तार होने लगा।

सन् १९४८ में कौटुम्बिक सदस्यों की संख्या को आधार मानकर इन पुरुषार्थियों को ग्रामों में भूमि आवट की गयी—चार सदस्यों तक वाले कुटुम्ब को १६ बीघा, चार से सात सदस्यों तक जमीन प्रदान की गयी। क्योंकि यह विभाजन पुनर्वास विधेयक के अन्तर्गत किया गया, अतः भूमि-विभाजन में इस बात को सर्वथा ध्यान मे नही रखा गया कि भू-प्राप्तकर्ता पुरुषार्थियों की पाकिस्तान में निजी भूमि थी भी अथवा नही। इन्हें निवास के लिये मकान भी आवट किये गये। केवल इतना ही नहीं—सहायता की शृंखला में एक और भी कड़ी जोड़ी गयी। प्रत्येक पुरुषार्थी परिवार को सदस्य-संख्या के अनुपात मे ८०० से १,००० रुपये की धनराशि ऋण के रूप में भी प्रस्तुत की गयी। इस ऋण का उद्देश्य विस्थापितों को विभक्त मकानों के जीर्णोद्धार तथा कृषि सम्बन्धी साज-सामान खरीदने मे समर्थ करना था। यह ऋण ३½ प्रतिशत व्याज सहित अब उगाया जा रहा है।

मुसलमान भाइयों की अलवर तथा भरतपुर मे निष्कान्त भूमि, जो भूमि स्वत्व का दावा न करने योग्य पुरुषार्थियो के पास है वह १९६१ मे तथा १९६३ की सज्ञप्ति के अनुसार भारत सरकार ने राजस्थान सरकार को एक करोड़ रुपये में हस्तान्तरित कर दी थी। यह एक करोड रुपया भारत सरकार का राजस्थान सरकार पर ऋण है, जिसे भारत सरकार व्याज सहित वसूल कर रही है। भारत सरकार के इस कदम से गैर दावेदार पुरुषार्थी यथेष्ठ रूप से लाभान्वित हुए हैं क्योंकि यह भूमि मिट्टी के मोल—केवल १५० प्रति प्रमाणिक एकड़ की दर मे राजस्थान सरकार द्वारा इन्हे हस्तान्तरित की गयी है।

स्वत्व के दावे की व्यवस्था के आधीन, जो दावे पुरुषार्थी-समुदाय की ओर से पंजीबद्ध कराये गये, उनका भुगतान विस्थापित जन क्षतिपूर्ति एवं पुनर्वास कानून १९५४ तथा उपनियम १९५५ के अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया और आजकल (दिसम्बर १९६७) भी चालू है। स्वत्व के दावों के भुगतान के लिए भारत सरकार ने प्रत्येक राज्य मे निर्धारण-आयुक्त नियुक्त किये हैं।

१९६१ मे अलवर नगर सुधारन्यासवारी समिति ने सड़क नम्बर २ की बाँई भुजा की ओर पड़ी हुई विशाल भूमि पर नवीनाकार के निवास-स्थानों के निर्माण के लिये योजना संख्या "एक" तथा "दो" को जन्म दिया। योजना संख्या "दो" में पुरुषार्थियों को भू-भाग देने में प्राथमिकता प्रदान की गयी—ऐसे भू-क्षेत्रो की सख्या लगभग ५०० है। ये भू-भाग उन्हें पुरुषार्थी गृह निर्माण सरकारी समिति के माध्यम से दिये गये।

पुनर्वास के मार्ग में अवरोध—

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि संसार सम्भवतः अधिक अच्छा होता यदि इसमें अच्छे लोग न होते क्योंकि ये अच्छे लोग ऐसे काम कर देते हैं जो दूसरों के लिये बहुत बुरे होते हैं। ऐसा ही एक अच्छा काम विख्यात समाज-सुधारक रामेश्वरी नेहरू तथा सप्तवाई ने किया जो पुरुषार्थियों के पुनःस्थापन के हित में बहुत ही बुरा प्रमाणित हुआ। इन अच्छे लोगों ने एक आन्दोलन का श्री गणेश किया। इसका लक्ष्य उन मेवों को उनकी अपनी जमीन-जायदाद

वापस बहाल कराना था, जो मत्स्य छोड़कर भारत के किसी अन्य प्रदेश अथवा पाकिस्तान चले गये थे, परन्तु संवत् २००३ (सन् १९४६-४७) तक उस सम्पत्ति के अधिपति थे। उक्त लक्ष्य-प्राप्ति के लिये १९४८-४९ में गुड़गांव में ऐसे मेवों की गणना की गयी जो अलवर तथा भरतपुर व्यक्त कर यहां बस गये थे। इस गणना को सप्तमबई जनगणना के नाम से पुकारा है। इस गणना की सूचियां मत्स्य सरकार को प्रस्तुत की गयीं। जब मत्स्य संघ वृहत राजस्थान का अंग बन गया तो ये तालिकायें राजस्थान को भी अर्पित की गयीं। केन्द्रीय सरकार दिल्ली को भी ये सूचियां प्रेषित की गयीं। आज भी अलवर तथा भरतपुर के पुनर्वास क्षेत्राधिकारियों के कार्यालयों में ये सूचियां निबद्ध हैं।

(१) ऊपर कथित आन्दोलन से पुरुषार्थियों को ऐसे मेवों की जमीन-जायदाद का विभाजन निरुद्ध हो गया, जिनके नाम उक्त सूचियों में अंकित थे। इससे अखिल राजस्थान के ग्राम्य प्रदेश में, जिसमें अलवर के ग्राम भी परिवेष्टित हैं, पुरुषार्थियों के पुनर्वास पर वक्र दृष्टि प्रपात हुआ। सन् ५० में भारत सरकार ने निष्क्रान्त सम्पत्ति प्रबन्ध कानून आदिष्ट किया। इसकी धारा ५२ के आधीन ७ जून, १९५६ को एक अधिसूचना प्रकाशित की गयी। १९५८ में इसके संशोधन का प्रादुर्भाव हुआ। इनके तहत यह निर्णीत किया गया कि जो भी मेव अलवर तथा भरतपुर के अपने ग्राम को बहिष्कृत कर भारत के किसी अन्य खंड में अथवा पाकिस्तान चले गये थे, परन्तु १५ अक्टूबर १९४९ तक पाकिस्तान से लौटकर पुनः अपनी सम्पत्ति के अधिपति बन बैठे हैं, इनकी यह सम्पत्ति निष्क्रान्त जायदाद के बही खातों से हटा दी जाये, तथा ऐसी सम्पत्ति को उक्त मेवों को बहाल कर दिया जाये। इससे उन पुरुषार्थियों में असंतोष उत्पन्न हो गया, जिनकी पाकिस्तान में अपनी भूमि थी और इसी के आधार पर वे भूमि स्वत्व का दावा करने लगे, किन्तु ऊपर कथित व्यवस्था के कारण सरकार के पास उन्हें प्रदान करने के लिये अन्न भूमि न थी। ऐसे पुरुषार्थी-बन्धुओं को पाकिस्तान में छोड़ी गयी भूमि के लिये क्षतिपूर्ति दी गयी—क्षतिपूर्ति देने का क्रम अब भी चल रहा है।

(२) पुनर्वास के कार्य पर एक और प्रहार भी हुआ। भारत सरकार ने उन स्थानीय गैर मुस्लिमों को भी, जो १-७-५७ से पूर्व मुसलमानों द्वारा पीछे छोड़ी भूमि के अधिपति बन बैठे थे, पुरुषार्थियों की तुल्यता में रखा। कहने का अभिप्राय यह कि सरकार ने ऐसी जमीन से स्थानीय जनता को बेदखल नहीं किया। भारत सरकार ने ऐसी भूमि को राजस्थान सरकार को बेच दिया है। केवल अलवर तथा भरतपुर के जिलों में ऐसी जमीन का मूल्य पौने दो करोड़ रुपया आंका गया है। राजस्थान सरकार यह भूमि स्थानीय अधिपतियों को ४५० रुपया प्रति प्रामाणिक एकड़ की दर से हस्तान्तरित कर रही है। इस विक्रय से प्राप्त धनराशि राजस्थान सरकार द्वारा केन्द्रीय सामान्य निधि में विक्षिप्त की जाती है।

अलवर के मानचित्र पर पुरुषार्थी

वर्तमान समय में अलवर जिले में, जिसकी आबादी लगभग दस लाख है, एक लाख के करीब पुरुषार्थी बसे हुये हैं। दूसरे शब्दों में पुरुषार्थी अलवर की सम्पूर्ण जनसंख्या का

दसवां भाग है। अब एक क्षण के लिये यह देख लिया जाये कि ये पाकिस्तान के किस प्रदेश से विस्थापित होकर अलवर के किस भाग में वस गये हैं। अधो-अंकित विवरण में इनकी संख्या की अधिकता को आधार मानकर पाकिस्तान के उन खंडों को क्रमश: प्रस्तुत किया गया है, जहां से ये विस्थापित हुये हैं—

अलवर जिले के विभिन्न क्षेत्र जहां पुरुपार्थी बसे हैं।	पाकिस्तान के वे प्रदेश जहां से ये विस्थापित हुये हैं।
(१) अलवर नगर	सीमा प्रान्त, विशेपत: डेरा इस्माइलखान, वहावलपुर, सिंध तथा पश्चिमी पंजाव।
अलवर तहसील	सीमा प्रान्त, विशेपत: वन्नू, सिंध, काश्मीर।
(२) तिजारा खास	सीमा प्रान्त, विशेपत: टांक (डेराइस्माइलखान)।
तिजारा के ग्राम	सिंध, सीमा प्रान्त, पश्चिमी पंजाव।
(३) मुंडावर खास	सिंध।
मुंडावर के देहात	सिंध, सीमा प्रान्त।
(४) किशनगढ़ खास	सिंध।
किशनगढ़ के देहात	सिंध, सीमा प्रान्त, पश्चिमी पंजाव।
(५) लक्ष्मणगढ़ खास	पश्चिमी पंजाव।
लक्ष्मणगढ़ के देहात	पश्चिमी पंजाव।
(६) रामगढ़ खास	पश्चिमी पंजाव, विशेपत: जिला मियांवाली तथा गुजरांवाला।
रामगढ़ के देहात	पश्चिमी पंजाव।
(७) गोविंदगढ़ खास	पश्चिमी पंजाव।
गोविंदगढ़ के देहात	पश्चिमी पंजाव।
(८) सव तहसील कठूमर	काश्मीर।
(९) खैरथल देहात	सिंध।

(उपरोक्त व्योरे में राय सिक्खों को, जो पाकिस्तान में पश्चिमी पंजाव, सिंध तथा रियासत वहावलपुर की सीमाओं पर वसे हुये थे, पश्चिमी पंजाव के निवासी मानकर प्रस्तुत किया गया है।)

वहरोड़, वानसूर, थानागाजी तथा राजगढ़ की तहसीलों में वहुत ही न्यून संख्या में पुरुपार्थी वसे हैं। इसका मुख्य कारण इन तहसीलों में निष्क्रांत सम्पत्ति की कमी है।

आज की बात

पुरुषार्थियों की संस्कृति का स्थानीय जनता पर प्रभाव—

कल के बिन्दु मिलकर आज की सरिता प्रवाहित कर रहे हैं, यही आज की सरितायें कल का सिंधु निर्मित करेंगी। इसी प्रकार काल गतिमान है। हम कल की बात तो कर ही चुके हैं, आज की बात भी तनिक कर ली जाये कि किस प्रकार पुरुषार्थियो की संस्कृति ने धीरे-धीरे अलवर की स्थानीय जनता पर अपना रंग चढ़ाया है।

(क) समारोहों पर—

पाकिस्तान के विश्व मानचित्र पर उभरने से पूर्व जब भारत एक था तो ये पुरुषार्थी लोग वहा ऐसे प्रदेशों मे निवास करते थे, जहा ये अन्य सम्पर्क थे। अत ये अपने व्यक्तित्व के पार्थक्य को प्रदर्शित करने के लिये अपने पर्वों को अत्यधिक उत्साह से मनाते थे। इस उत्साह का सचार इन्होंने स्थानीय जनता मे भी कर दिया। परिणामस्वरूप विजयदशमी पर्व के उपलक्ष्य मे आज अलवर नगर मे तीन विभिन्न स्थानो पर रामलीला सम्पन्न की जाती है। पुरुषार्थियो के अलवर मे सुचारु रूप से बस जाने से पूर्व यह पव मगलानसर मे मनाया जाता था, फिर पुरुषार्थियों ने पृथक रूप में दशहरा राज्याभिषेक भू-तल पर मनाना प्रारम्भ कर दिया। आज स्थानीय तथा पुरुषार्थी दोनो इसे सयुक्त रूप से नेहरू भू-तल पर मनाते हैं। इस शुभावसर पर पुरुषार्थी रामायण पात्रों के स्वाग भी रचते हैं। अश्वारोही, प्रध्वसधारी हृष्टपुष्ट पुरुषार्थी इस समारोह को चार चाँद लगाते हैं। श्री गुरूनानक एव गोविन्दसिंह जयन्ती के उपलक्ष्य मे निकाली गयी "पालकियाँ" भी देखने से सम्बन्ध रखती हैं। स्थानीय लोगो के विवाहो पर जो युवक मडली "भगडा नृत्य" करती लक्षित होती है तथा अन्या वार्षिक उत्सवो पर जो सलोना उत्साह देखने को मिलता है, उसकी पृष्ट भूमि मे पुरुषार्थियो की सस्कृति खडी मुस्करा रही है।

(ख) *वेश भूषा तथा खान-पान पर—*

आज स्थानीय जनता के युवक एव युवतियाँ बनाव सिंगार के मतवाले प्रतीत होते हैं इसमे भी उक्त सस्कृति का हाथ है क्योकि पुरुषार्थी बन्धु ऐसे प्रदेशो से आये हैं जो स्वतन्त्रता से पूर्व भी अपनी साज सज्जा के लिये प्रसिद्ध थे। पुरुषार्थी दरजियो की हस्तकला, रूपवर्धक सामग्री विक्रेताओ का प्रदर्शन तथा वस्त्र व्यापारियो की मधुरवाणी ने सादगी के विरुद्ध मानो षड्यन्त्र रच डाला है। पुरुषार्थियो ने स्थानीय रगमच पर पर्दा उठाया है तभी तो यहा के युवक सपत्नीक बनठनकर घूमते फिरते मार्गो को आलोकित करते दिखायी पडते हैं। यहाँ के नारी-वर्ग पर चुस्त सलवार कमीज की छाप इसी दिशा मे प्रभाव की परिचायक है।

पुरुषार्थियो ने स्थानीय जनता की खान पान की आदतो पर भी अपना सिक्का जमाया है। भुने हुये मावे के मिष्ठान को, जिसे पजाबी कलाकन्द के नाम से ख्याति प्राप्त है, स्थानीय जनता भुला नहीं सकती। पजाबी सोहन हलवा, पिराक टिक्की तथा अनार से किस अलवरी

को प्यार नही ? तंदूर की रोटी, मटर पनीर का साग, पुलाव, दही की लस्सी तथा कावुली छोले स्थानीय जनता के मन पसंद पदार्थ वन गये हैं। स्थानीय जनता की चाय की चाह बढ़ाने में भी पुरुपार्थियों का हाथ है, इन्हीं के कारण स्थानीय लोगों में मांस खाने की प्रवृत्ति भी अग्रसर हुई है।

(ग) व्यापार तथा कृषि पर—

पुरुपार्थी अपनी व्यावहारिक सूझ-वूझ के कारण ऊपर कथित विपत्ति के पर्वत को झेलने में सफल हुये है। उन्हें अनजान प्रदेशों में राह वनाना आता है, वे जीवन की परिवर्तित परि-स्थितियों से सामन्जस्य स्थापित करने की क्षमता के लिये जनश्रुत है। इसी व्यावहारिक कुशलता के कारण उन्होंने अलवर के व्यापार पर स्वस्थ प्रभाव डाला है। अलवर में इन पुरुपार्थियों के पुरुपार्थी के कारण खजूर, चीकू, रसभरी, गलास तथा मीठा आदि फल, जो पहले अलवर की फल मंडी में प्राप्य नहीं थे, आज प्रचुर मात्रा में मिलते है। सत्य तो यह है कि इनके कारण अलवर की सव्जी तथा फल मडी में एक नई जान आ गयी है। सव्जी मंडी को (कमल ककड़ी), सुआंजना, कचनाल तथा चुंगां इन्ही की देन हैं। आज अलवर की प्रायः समस्त तहसीलें तथा ग्राम एक दूसरे से वसों के माध्यम से हाथ मिलाकर व्यापारिक प्रगति में योगदान दे रहे हैं—इस महान कार्य में पुरुपार्थियों की सेवायें भी महान हैं। इन्होंने पशु-पालन, मिश्रित पदार्थ तथा औपध निर्माण उद्योगों को भी स्फुर्ति प्रदान की है। गेहूँ, कावली चनों तथा मक्का की खेती को वढ़ावा देने में भी इन्होने सराहनीय कार्य किया है।

इसी प्रकार पुरुपार्थी भी स्थानीय प्रभाव से प्रभावित हुए है उनकी वेश-भूपा, खान-पान, रीतिरिवाज पर अलवरी प्रभाव विशेपतया द्रष्टव्य है। इमरती, वालूशाही, दाल-वाटी-चूर्मा, गजक रेवड़ी वे वड़े चाव से खाने लगे हैं।

कल की वात

आज से दो दशाव्दी पूर्व जव भारत की संस्कृति के दो अंग पुरुपार्थी तथा स्थानीय पारस्परिक रूप से मिले, तो जैसाकि प्राकृतिक था, कुछ अग्निकण भी उठे, किन्तु वे शीघ्र अलवर की गुनगुनाती गलियों में कही खो गये और उनके स्थान पर नभ पर स्नेह-ज्योत्स्ना मुस्करा उठी। परिणामस्वरूप पुरुपार्थी तथा स्थानीय इतने घुल-मिल गये हैं कि उनकी सांस्कृतिक रेखायें पार्थक्य को पारस्परिक आलिंगन से मिटा रही हैं। उनमे कुछ वैवाहिक सम्वन्ध भी हुये हैं। निकट भविष्य में यह कहना कठिन होगा कि स्थानीय कौन, पुरुपार्थी कौन ? आज ने कल का यह संकेत देना अभी से प्रारम्भ कर दिया है। स्थानीय पंजावी तथा सिंधी वोली के वाक्यांश तथा पुरुपार्थी स्थानीय वोली वोलते प्रायः लक्षित होते हैं। नई पीढ़ी के पुरुपार्थी भूल से गये हैं कि उनके माता-पिता पाकिस्तान के किस प्रदेश से आये थे—वे अलवर के हो गये हैं, अलवर उनका हो गया है।

राजनैतिक, आर्थिक प्रतिवेदन

हर शहर और हर कस्बा और हर गाव भी अपनी किसी न किसी विशेषता को लेकर अभिमान करता है। नई और पुरानी तीन राजधानियो के बीच मे बसा अलवर यदि अपनी कुछ विशेषताओ को लेकर अभिमान करता हो तो यह अस्वाभाविक नही है। मुगल बादशाहो की पुरानी राजधानी और अपने सौंदर्य स्मारक (ताजमहल) के लिए विश्व-विख्यात आगरा, बार बार उजडी लूटी गई और बार-बार बसी सदा सुहागन दिल्ली, भारत का पेरिस कहलाने वाला जयपुर और इनके बीच मे बसा शहर, या आधुनिक महानगरो की तुलना मे एक छोटा सा कस्बा अलवर। अलवर निवासी अपने शहर पर अभिमान करते हैं कि यह राजस्थान का सिंह द्वार है, दिल्ली से जयपुर के लिए रवाना होने पर मिलने वाला राजस्थान का पहला शहर कि इस शहर मे एक बडे पहाड को भी छटकी (वजन की एक पुरानी इकाई) कहा जाता है कि इस शहर के किले की तारीफ मुगल बादशाह बाबर ने अपनी आत्मकथा मे की है, बडा महान् किला है अलवर का, आज तक कोई इस किले को नही तोड सका, कितने ही राजा, बादशाह, अपनी सेनायें लेकर आये और चले गये पर कोई अपने बल से एक बार बन्द हुए इसके दरवाजो को नही खुलवा सका। अलवर राज्य के सस्थापक प्रतापसिंह भी इसे नीति के द्वारा ही प्राप्त कर सके थे और सबसे बढकर अभिमान का विषय अलवर का राजा जयसिंह—यूरोप तक मे मशहूर, पोलो का विख्यात खिलाडी, भारतीय नरेन्द्र मडल का अध्यक्ष, १९०८ ई० मे जिसने हिन्दी को राज्य-भाषा बनाया, बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक मे जिसने बाल-विवाह पर रोक लगायी, विधवा विवाह के लिये कानून बनाया, पचायत बनाई गाव-गांव मे, बनारस जाकर काग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता की, बनारस विश्वविद्यालय को लाखो का दान दिया, लन्दन की गोल मेज कान्फ्रेंस मे भारतीय नरेशो का प्रतिनिधित्व किया और ।

पर छोडो भी इन बातो को, पुरानी बातें हैं ये सब और पुरानी कहानी अब तक आप बहुत सुन चुके हैं। अब अलवर शहर राजस्थान राज्य के अन्तर्गत एक जिला केन्द्र है और अलवर राज्य राजस्थान राज्य का एक जिला। आजादी के बाद अलवर को मत्स्य-सघ की राजधानी बनने का सौभाग्य मिला था, पर वह सौभाग्य कोई समय का ही रहा। अब अलवर राजस्थान राज्य का एक जिला मात्र है, एक साधारण जिला और एक उपेक्षित जिला।

आँकड़ों के दर्पण में

प्रशासन की दृष्टि से अलवर जिला चार उप-जिला खण्डों में विभाजित है अलवर उप-जिला खण्ड, राजगढ़ उप-जिला खण्ड, वहरोड़ उप-जिला खण्ड और किशनगढ उप-जिला खण्ड। राजगढ के उप-जिलाधीश का कार्यालय अलवर में ही है, वहरोड़ और किशनगढ़ में अलग उप-जिलाधीश काम करते है।

सारा जिला ६ तहसीलों मे विभाजित है। अलवर सबसे बड़ी तहसील है और जिला के केन्द्र मे है। अन्य आठ तहसील हैं—दक्षिण की तरफ थानागाजी राजगढ़; पूर्व की ओर लक्ष्मणगढ़; उत्तर की ओर किशनगढ़, तिजारा; उत्तर-पश्चिम की ओर वहरोड़, मुंडावर और पश्चिम में वानसूर। अलवर तहसील के अन्दर दो उप-तहसील है—मालाखेड़ा और रामगढ। लक्ष्मणगढ़ तहसील मे भी दो उप-तहसील है गोविन्दगढ और कठूमर। किशनगढ़, तिजारा और वहरोड़ तहसीलों में एक-एक उप-तहसील है क्रमशः कोटकासिम, टपूकड़ा और नीमराणा। नौ तहसीलों के अतिरिक्त ७ उप-तहसील।

स्थानीय शासन की दृष्टि से अलवर १४ पंचायत समितियों में विभाजित है। इनके अन्तर्गत ४४० ग्राम-पंचायत है, प्रत्येक पंचायत में कम से कम दस पंच और एक सरपंच, महिला पंच और अनुसूचित जातियो के पचो के लिये अलग से दो-दो सुरक्षित स्थान। न्याय पंचायतों की संख्या ८३। ४४० प्रचायतो के अन्तर्गत १६४२ गांव है (जिनमें ८६ अनिर्वासित है) और १०,०२१३४ व्यक्ति इन पंचायतों के क्षेत्र में निवास करते है। इसके अतिरिक्त तीन नगर-पालिकाएँ है—अलवर, राजगढ़ और खेड़ली। पहले तिजारा में नगरपालिका वनी थी, वाद में वह समाप्त कर दी गई। १४ पंचायत समितियो के नाम हैं—थानागाजी, राजगढ, कठूमर, रामगढ़, उमरैण, किशनगढ़, तिजारा, कोटकासिम, वहरोड़, मुंडावर, नीमराणा और वानसूर।

अलवर जिले में १० विधान-सभा क्षेत्र है—अलवर, रामगढ, राजगढ, थानागाजी, कठूमर, खैरथल, तिजारा, वहरोड़, वानसूर, और मुंडावर। इनमें से तीन सुरक्षित क्षेत्र हैं—राजगढ़ आदिम जनजातियों के लिये, खैरथल तथा कठूमर अनुसूचित जातियो के लिए। १९६७ के आम चुनावों में शासक दल और विरोधी दलों की चुनाव-कुश्ती इन क्षेत्रों में वरावर छूटी थी, दोनों को पाँच-पाँच, मगर चुनाव के वाद शासक दल का पलड़ा भारी हो गया है। अलवर जिला दो लोकसभा क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है, अलवर लोकसभा क्षेत्र और भरतपुर लोकसभा क्षेत्र। अलवर जिले के दो विधानसभा क्षेत्र लोकसभा के लिए भरतपुर लोकसभा क्षेत्र के साथ मतदान करते हैं। यहाँ भी चुनाव, कुश्ती वरावर रही थी, अलवर लोकसभा क्षेत्र में शासक दल को विजय मिली थी और भरतपुर लोकसभा क्षेत्र में विरोधी दलो को।

अलवर जिले में दो रेलवे लाइने हैं। दिल्ली से अहमदावाद जाने वाली रेलवे लाइन जिले के वीच में से गुजरती है। यह पश्चिमी रेलवे के अन्तर्गत है। अलवर जिले में कोई रेलवे जंक्शन नहीं है पर जिले के दोनो उत्तरी और दक्षिणी छोर पर दो वड़े जंक्शन है—उत्तर में रेवाड़ी और दक्षिण मे वांदीकुई। दो वड़े जंक्शनों के वीच फँसा अलवर कितने ही, दिनो

से जवरान बनने की इन्तजार कर रहा है पर इतजार अभी इन्तजार ही है। बार-बार चर्चायें उठती हैं और फिर खामोशी में खो जाती हैं। उत्तर मे रिवाडी और अलवर के बीच मे ७ रेलवे स्टेशन हैं और दक्षिण मे बाँदीकुई तथा अलवर के बीच मे चार। जिले के दक्षिणी पूर्वी हिस्से मे बाँदीकुई से आगरा जाने वाली रेल लाईन गुजरती है। इस पर अलवर जिले मे तीन स्टेशन हैं, कुल मिलाकर अलवर जिले म सरकार की रेल १५ जगह ठहरती है पर अलवर तथा राजगढ के अलावा सभी तहसील केन्द्र रेल दर्शन से वंचित हैं।

अलवर जिले के ६६ कस्बे-गाव अब बिजली की रोशनी मे जगमगाने लगे हैं। राजस्थान बनने से पहले कुल ४ जगह बिजली का प्रकाश होता था।

अलवर जिले मे अनेक दर्शनीय स्थान हैं—ऐतिहासिक और प्राकृतिक सौंदर्य से सम्पन्न। इतिहास के साथ आप उनकी सैर कर चुके हैं। अलवर की भाषा हिन्दी है और इसके साथ अनेक बोलियाँ यहाँ बोली जाती है—मेवाती, राठी, नेडी आदि। आप उनका अध्ययन कर चुके है। अलवर जिला वन और पहाडो का जिला है। राजस्थान के सम्पूर्ण वनों का ६ प्रतिशत हिस्सा अलवर अपने अधिकार मे रखता है। विख्यात साबी नदी अलवर जिले से बहती है। किं-वदन्तिया कहती हैं कि कभी अकबर ने इस नदी को बाधने की कोशिश की थी और असफल रहा था। दो वर्ष पहले यह नदी भारत की राजधानी के लिए खतरा बन गई थी और तब चौथी योजना मे इसे बाँधने का निश्चय किया गया था। चौथी योजना स्थगित हुई तो यह निश्चय भी स्थगित हो गया है।

२७ ५ और २८ १५ अक्षांसो तथा ७६ १० और ७७ १५ देशान्तरो के बीच फैले अलवर जिले का क्षेत्रफल ३३०६ वर्गमील है और इस क्षेत्र मे निवास करते हैं १०,६०,०२६ व्यक्ति। १८७२ मे प्रथम जनगणना हुई थी तब अलवर राज्य की आबादी ६८२६२६ थी।

तहसीलो के अनुसार मौजूदा जनसख्या और क्षेत्र निम्न प्रकार मे विभाजित है—

तहसील	क्षेत्र वर्ग मीलो मे	जनसख्या
१ अलवर	७०५	२२८११७
२ लक्ष्मणगढ	४५०	१८४१४५
३ बहरोड	२८२	१३३६५२
४ राजगढ	३८४	१२७४५८
५ किशनगढ	२८८	१०२५७५
६ मुंडावर	२३३	८६८११
७ तिजारा	२६४	७८६७१
८ बानसूर	२५६	७७६६०
६ थानागाजी	३४७	७०८३०

जन सख्या की दृष्टि मे राजस्थान मे अलवर का स्थान चौथा है। जयपुर (जनसख्या १६०१७५६), उदयपुर (जनसख्या १४०४२७६) और भरतपुर (जन सख्या ११४६८८३) के बाद अलवर का स्थान है। शेष २२ जिलो की जनसख्या अलवर जिला मे कम है।

अलवर के १०९००२६ व्यक्तियों में पुरुषों की संख्या ५७६२३४ है और स्त्रियों की संख्या ५१३७९२ है। पुरुष प्रधान संसार में अलवर जिला भी पुरुष प्रधान ही है, पर यह प्रधानता बहुत कम है।

अलवर जिला मुख्यत: देहाती क्षेत्र है। कुल जनसंख्या का ९१·९४ प्रतिशत देहाती क्षेत्र का निवासी है। शहरी क्षेत्र में कुल ८·०६ प्रतिशत व्यक्ति निवास करते हैं। देहाती क्षेत्रों की कुल जनसख्या १००२१३४ है जिनमे ५२८९११ पुरुष हैं और ४७३२२३ स्त्री हैं। शहरी इलाकों की कुल आबादी ८७८९२ है जिनमें ४७३२३ पुरुष हैं और ४०५६९ स्त्री है। १९५१ से १९६१ ई० तक के दशक में अलवर जिले की आबादी २६·४५ प्रतिशत बढ़ी। राजस्थान में आबादी की प्रतिशत बढ़ोतरी १६·७ थी।

अलवर शहर की आबादी के विषय में कुछ तथ्य रोचक हैं। १८७२ ई० की पहली जनगणना में अलवर शहर की आबादी ५२३७५ थी। शताब्दी के आरम्भ में अर्थात् १९०१ ई० मे शहर की आबादी बढ़कर ५६७११ हो गई किन्तु १९११ ई० में शहर की आबादी १५४६६ घट कर ४१३०५ हो गई। १९४१ ई० तक भी शहर की आबादी १९०१ ई० की आबादी से कम रही। १९४१ ई० मे शहर की आबादी ५४१४३ थी। १९५१ ई० में पहलीवार शहर की आबादी १९०१ ई० के स्तर से आगे बढ़ी। १९५१ ई० में शहर की आबादी ५७८६८ थी अर्थात् कुल मिलाकर पचास वर्षो मे शहर की आबादी सिर्फ १०९७ बढ़ी। इसके पीछे शायद अनेक कारण हैं—२०वीं शताब्दी के आरम्भ में अकाल और महामारी का बार-बार प्रकोप। १९४७ ई० में भारी संख्या में मुसलमान नागरिकों का निष्क्रमण। १९५० में अलवर के राजस्थान में विलय के बाद सरकारी कर्मचारियों का जयपुर तथा अन्य स्थानों पर स्थानान्तरण आदि। १९५१ ई० मे अलवर शहर की आबादी ५७८६८ थी। १९५१-६१ ई० तक के दशक में अलवर शहर की आबादी २५·६ प्रतिशत बढ़ी। अलवर शहर में १९६१ की जनगणना के अनुसार ३९१०२ पुरुष और ३३६०५ स्त्री है। शहर में पुरुषों की आबादी स्त्रियो की अपेक्षा अधिक बढ़ी है। १९५१ ई० में पुरुषों की संख्या ३०८३३ थी अर्थात् १९५१-६१ के दशक मे पुरुषों की संख्या में ८२६९ की वृद्धि हुई। इसकी तुलना में १९५१ मे स्त्रियों की संख्या २७०३५ थी अर्थात् स्त्रियों की संख्या में ६५७० की वृद्धि हुई। १९५१-६१ ई० के बीच मे स्त्रियों की आबादी में २४·३० प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई जबकि पुरुषों का वृद्धि प्रतिशत २६·८२ रहा।

अलवर के अतिरिक्त राजगढ और खेड़ली की आबादी का विवरण १९६१ ई० की जनगणना के अनुसार निम्न है—

राजगढ़—कुल आबादी—१२०४८।
पुरुष—६४११ स्त्री—५६३७।

खेड़ली—कुल आबादी—३१३६।
पुरुष—१८१० स्त्री १३२७।

अलवर जिले की आबादी का चौथाई हिस्सा आदिम जन जाति और अनुसूचित जातियो का है। जिले की सम्पूर्ण आबादी में १७ ८० प्रतिशत व्यक्ति अनुसूचित जातियो के हैं और ८ ११ प्रतिशत जन-जातियो के। दोनो का प्रतिशत मिलाकर २५ ६१ प्रतिशत है। यह प्रतिशत सम्पूर्ण राजस्थान के प्रतिशत से कम है। सम्पूर्ण राजस्थान का प्रतिशत २८ २ प्रतिशत है। अलवर जिले मे अनुसूचित जातियो के व्यक्तियो की कुल सख्या १६४०२८ है इनमे १००३५० पुरुष और ६३६७८ स्त्री है। अनुसूचित जातियो में प्रति १००० पुरुष के पीछे ८६२ स्त्रियाँ है। अनुसूचित जातियो मे चमारो की प्रधानता है। व अलवर जिले की कुल जन सख्या का ८ ०२ प्रतिशत है। कुल १६४०२८ मे से अकेले चमारो की सख्या ११६४३२ है। अलवर जिले मे लक्ष्मणगढ तहसील मे अनुसूचित जातियो की प्रधानता है, तहसील की कुल जनसख्या का २१ प्रतिशत।

जनजातियो की प्रधानता राजगढ तहसील मे है। दोनो तहसील एक दूसरे से मिली हुई है। राजगढ तहसील की जनसख्या में जनजातियो का प्रतिशत २६ ३८ प्रतिशत है। इनमे प्रमुखता मीना जाति की है। जिले की सम्पूर्ण जनसख्या मे आदिम जातियो का प्रतिशत ८ ११ प्रतिशत है जिसमे अकेले मीना ७ ४ प्रतिशत है और ० ७ मे अन्य हैं। सम्पूर्ण जिले मे आदिम जनजाति के व्यक्तियो की सख्या ८८८५४ है।

अलवर जिले मे जन-सख्या का घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर १४३ है।

धर्म की दृष्टि से अलवर हिन्दू धर्म प्रधान जिला है। जिले मे हिन्दुओ की कुल सख्या ६७८४२६ है। इसका विवरण निम्न है—

देहाती क्षेत्र—८६८३५४

पुरुष—४७१६४६ स्त्री—४२२७०५

शहरी क्षेत्र—८४०७२

पुरुष—४५२५२ स्त्री—३८८२०

मुसलमानो की कुल जनसख्या ८२८०३ है। १८७२ ई० की प्रथम जनगणना मे यह सख्या १५१७२७ थी।

देहाती क्षेत्र—८२३२७

पुरुष—४३८३५ स्त्री ३८५५२

शहरी क्षेत्र—४१६

पुरुष—२६५ स्त्री १५१

मुसलमानो मे अधिकतर मेव हैं जो देहाती क्षेत्रा मे रहते हैं और कृषि का काम करते है। शहरी क्षेत्र में मुसलमानो की सख्या नगण्य है। कुल मुस्लिम जनसख्या का केवल ० ५ प्रतिशत।

जिले में तीसरा स्थान सिक्खों का है। इनमें से अधिकतर विभाजन के बाद अलवर जिले में आये हैं। सिक्खों की कुल संख्या २३०२८ है। इसका विवरण निम्न है—

देहाती क्षेत्र—२२०७१

पुरुष—११६९५ स्त्री १०३७६

शहरी क्षेत्र—९५७

पुरुष—५२२ स्त्री—४३५

मुसलमानों की तरह सिक्ख भी मुख्यतः देहाती क्षेत्र मे निवास करते है। कुल सिक्ख संख्या का ४·१६ प्रतिशत ही शहरी क्षेत्र में निवास करता है। देहाती क्षेत्र के सिक्ख खेती का काम करते है और शहरी क्षेत्र के सिक्ख व्यापार का।

जिले की जनसंख्या में ईसाइयों की संख्या बहुत नगण्य है—कुल १५९। शहरी क्षेत्र में ईसाइयों मे स्त्रियो की संख्या पुरुषों से अधिक है—शहरी क्षेत्र में पुरुषों की संख्या २९ है जबकि स्त्रियों की संख्या ६० है। देहाती क्षेत्रों में ६८ पुरुष और २ स्त्री है। ईसाई देहाती और शहरी क्षेत्रों में लगभग बराबर है। देहाती क्षेत्रों ७० और शहरी क्षेत्र में ८९। मुसलमानों और सिक्खों के विपरीत ईसाइयों की संख्या शहरी क्षेत्र में ज्यादा है।

१९६१ की जनगणना में सारे अलवर जिले में केवल ३ स्त्रियाँ बौद्ध-धर्मावलम्बी पाई गई।

जिले में जैनियों की संख्या पर्याप्त है। सम्भवतया हिन्दू और मुसलमानों के बाद तीसरा स्थान जैनियों का ही आता है, पर जैन हिन्दुओं में सम्मिलित है। १९६१ जन संख्या मे केवल ५,६०८ व्यक्तियों ने अपने को हिन्दुओं से अलग जैन मतावलम्बी बताया।

प्रेत की छाया

रोज-रोज एक छोटे तालाब की सैर—वही-वही एक सी सीढ़ियां, वही-वही किनारे और वही-वही कोने-घुमाव, वही-वही फूल, किनारे पर वही-वही वृक्ष और लहरों पर फैली वही-वही एक छाया। कभी-कभी लहरों में कोई छोटे-बड़े पत्थर फैंक देता है तो लहरों में हलचल होती है, एक किनारे से दूसरे किनारे तक लहरों की यात्रा, जल का कांपना पर फिर शान्ति, वही-वही बस सुबह होती है और शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।

एक कस्बे का सार्वजनिक जीवन बस ऐसा ही होता है। कभी-कभी किसी आन्दोलन के नाम पर एक-दो दिन की हलचल और फिर सब कुछ पहला जैसा। सुबह पांच बजे जगह-जगह मन्दिरों में आरती की आवाज और कस्बे का जागना, फिर सड़कों पर उड़ती धूल, सब्जी मंडी में स्थित हलवाइयों की भट्टियों में धुँआ, चाय-घर की मेजों पर नये प्याले, गलियों में नलों पर झगड़ा, औरतों-बच्चों का शोर, बरतनों का लुढ़कना, सब्जी-मंडी में खरीद-फरोख्त।

दस बजते-बजते साइकिलों की दौड़ स्कूलों-दफ्तरों की ओर। दबाव के अन्तर्गत प्रभु-प्रार्थना—हे प्रभु आनन्द दाता ज्ञान हमको दीजिये या कहीं-कहीं राष्ट्रीय-गान—जन-मन गण

अधिनायक जय हे। दोपहर होते-होते सन्नाटा, ऊँघते दुकानदार, गरम तारकोल की सडक पर कभी कभी गुजरते ठेले, हा, फसल के दिनो मे केडलगज म दोपहर भर हलचल, ट्रको की लम्बी लाईन, बीच-बीच मे फँसे रिक्शे और ठेले, जगह निकाल-निकालकर गुजरते साईकिल सवार, बीच-बीच मे ट्रक वालो से झगडते, अपनी फीस वसूल करते लाल पगडी और सफेद वर्दी वाले सिपाही।

साँझ होती है तो थोडी देर के लिए फिर हलचल जागती है। लालटेन के दिन बहुत पहले बीत चुके है, शहर बिजली से चमक उठता है, पर बीच बीच मे पुराने आदिम-दिनो, जब मनुष्य आग की रोशनी के अलावा दूसरे प्रकाश से परिचित नही था, की याद दिलाता ब्लेक आउट, सिनेमाओ से उठता शोर और आदिम अँधेरे के बीच फिर सभ्यता का लौट आना। बिजली का यह खेल कई बार होता है और अब शहर इसका अभ्यस्त हो गया है। नौ बजे का सायरन बजते ही फिर खामोशी का दौर, आधा शहर अन्धकार मे ऊँघने लगता है और होप सर्कस मे आवारा गाय इकट्ठी होने लगती हैं। दिन मे होप-सर्कस कुछ भी हो, रात को सिर्फ उनका आराम गाह है। शहर मे आधुनिकता बढ रही है, वेश-भूषा के नये से नये फैशन, नई-नई कॉलोनियों मे नये नये डिजाइन के मकान, पहाडी ढलान पर से शहर बहुत तेजी से नीचे उतर रहा है। शहर का केन्द्र, कभी का "बीच का मोहल्ला" अब शहर की पश्चिमी सीमा हो गया है और पूर्व सीमा होप सर्कस शहर का केन्द्र बन गया है। शहर के बीच अपने ऊँचे आसन पर बैठे महादेव नये-नये फैशनो की परेड, नये-नये नारो की गूँज, नये-नये झण्डो के रग अधखुली आँखो से देखते रहते है। साईकिल-युग से आगे बढकर स्कूटर-युग का आगमन हो रहा है। मोटर-कार पहले सरकार की सम्पन्नता का ही दिग्दर्शन कराती थी, अब नागरिको की सम्पन्नता का भी दिग्दर्शन कराने लगी है।

पुराने दिन बीत गये हैं, सामन्ती अवशेष तेजी से गिर रहे हैं, अखैपुरा मे कभी रहीम का मकबरा था, अब उसका नाम निशान नहीं है। पुराने पाँच दरवाजो मे से केवल दिल्ली दरवाजा बचा है। बीच के मोहल्ले की विशाल हवेलियो से रात दिन चूना झडता रहता है। पाच बजे बाद दफ्तर बन्द हो जाते हैं तो जगन्नाथजी के मन्दिर के ऊपर-ऊपर सन्नाटा छा जाता है। बजाजा बाजार और सराफा बाजार मे जुलूस के घोडे अब नही दौडते हैं। महलो मे दरबार अब नही होते है। मेले ठेलो मे जाने की फुर्सत भी आधुनिक लोगो को नही है। चैत मे गणगोर का मेला पहले तीन-दिन होता था, एक दिन गणगोर की सवारी अखाडा जाती थी, दूसरे दिन सारे शहर को पारकर कम्पनी बाग आती थी और तीसरे दिन सागर पर जाती थी, अब केवल सागर पर जाती है, एक पुरानी याद का औपचारिक निर्वाह। दशहरे का जुलूस अब नहीं निकलता है और मँगलासर के रास्ते सूने पडे रहते हैं। अब वहाँ साधारण व्यक्ति जा भी नही सकता है, वह सैनिक क्षेत्र हो गया है। हाँ, रावण दाह का काम पजाबी भाइयो ने उत्साह से जरूर सँभाला है। श्रावण की तीज का मेला भी अब फीका हो गया है और भादो मे परिक्रमा का मेला तो सिर्फ एक पुरानी याद भर रह गया है। आषाढ मे जगन्नाथजी

का मेला होता है पर शहर-वालों को उसमें ज्यादा दिलचस्पी नहीं है, बाहर के लोग ज्यादा आते हैं। शहर के लोग ज्यादा से ज्यादा ग्यारस की शाम को स्कूटर, ताँगों, साईकिलों पर घन्टे दो घन्टे को घूम आते हैं। पाण्डुपोल, भरथरी, नारायणीजी और सीलीसेढ के मेले भी कुछ ऐसे ही हैं। दीवाली के दीपकों की लौ दस बजे बाद ही बुझने लगती है और होली का रंग बारह बजे से पहले उड़ जाता है। होली के स्वाँग आधुनिक सभ्य लोगों को पसन्द नहीं है, वे बिल्कुल बन्द हो गये हैं। पहले पन्द्रह अगस्त को झाँकियाँ निकलती थी वे अब बन्द कर दी गई है। २६ जनवरी, २ अक्टूबर सरकारी छुट्टी मात्र है।

आधुनिकता की छाप शहर के जीवन पर तेजी से बढ़ती जा रही है। पता नहीं यह छाप है कि किसी अनजाने प्रेत की छाया है। इस छाया के नीचे सारी मस्ती, सारा जोश दबा जा रहा है, शहर का सार्वजनिक जीवन खोखला होता जा रहा है। शहर में कोई सांस्कृतिक संस्था नहीं है, कला भारती और श्रुति मण्डल उच्च-वर्गो के लिए है। ऊँची कला सामान्य लोगों के लिए होती ही कब है? कवि-सम्मेलन शहर में क्या सारे जिले में ही नही होते है केवल लक्ष्मणगढ़ इसका अपवाद है जहाँ प्रति वर्ष कवि-सम्मेलन होता है। सार्वजनिक नुमाइश शक्ति का व्यर्थ अपव्यय समझा जाता है, राजर्षि कॉलेज में दो वर्ष चित्रकला प्रदर्शनी हुई है कुछ चुने हुए लोगों के लिए, विशिष्ट नागरिकों के लिए। राजर्षि कॉलेज में प्रतिवर्ष तीन दिन का सांस्कृतिक समारोह होता है पर वह सिर्फ कॉलेज का समारोह है। सारे शहर का मनोरंजन केवल दो सिनेमाघर करते है। शहर में कोई सामाजिक संस्था नही है, केवल जातीय संस्थायें है, जहाँ जाति-सुधार के प्रस्ताव पास होते हैं और कागजों में दबा दिये जाते है। अन्तर्जातीय विवाह आज भी साहस और बड़ी चर्चा का काम है। छात्रों का कोई प्रभावशाली संगठन नहीं है, और यही बात युवक और महिलाओं के संगठन के लिए सही है। हाँ केडलगंज व्यापार-समिति का शानदार भवन जरूर केडलगंज मे बन गया है। एक अनजाने प्रेत की छाया सब कुछ निगल जा रही है और उगल रही है, शराब के बढ़ते दौर, अधखुले वस्त्रों की दौड़, स्कूटरों का शोर, पीली-पत्रकारिता का जोर, अपराधों की बढ़ती संख्या, जातिवाद और अर्थाजन की संयम-हीन तृष्णा।

समाचार-पत्र और पत्र-पत्रिकायें—

सरकारी गजट के अलावा अलवर मे पहला प्रकाशित पत्र राजर्षि कॉलेज की पत्रिका 'विनय' है। इसका पहला अंक १६३५ ई० में प्रकाशित हुआ। पहले यह वर्ष में दो बार प्रकाशित होती थी अब यह वार्षिक-पत्रिका है। तीस वर्ष से भी अधिक समय से यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है पर इसका प्रभाव और स्वरूप एक कॉलेज-पत्रिका के रूप तक ही सीमित रहा है। साहित्यिक-सामाजिक पत्रों के प्रकाशन के अनेक प्रयत्न समय-समय पर अलवर में होते रहे है। सबसे दीर्घकाल तक चलने वाला प्रयत्न हिन्दी परिषद् का था। हिन्दी परिषद् ने अगस्त १६४४ ई० में 'अरावली' मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया। इसके पहले सम्पादक श्री लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी थे, बाद में श्री योगेशचन्द्र पराग और वंशीधर मिश्र इसके

सम्पादक रहे। इस पत्र के तीन विशेषांक प्रकाशित हुए, राजपूत अंक, अलवर अंक (अगस्त, सितम्बर, अक्टूबर १६४५) और कहानी अंक। यह पत्रिका केवल अलवर साहित्य की पत्रिका नहीं थी, हिन्दी के कितने ही प्रतिष्ठित लेखक और कवियों की रचनायें इसमें प्रकाशित हुई थी। और यह पत्रिका साहित्यिक पत्रिका ही नहीं थी, अपने समय की राजनैतिक घटनाओं का भी इसमें विवेचन होता था। लक्ष्मण त्रिपाठी लेखक होने के साथ-साथ प्रजामंडल के सक्रिय नेता भी थे। अरावली का प्रकाशन लगभग तीन वर्ष तक होता रहा। अप्रैल १६४७ ई० में श्री जैमिनी कौशिक बरुआ ने 'राजस्थान-क्षितिज' नामक मासिक का आरम्भ किया। राजस्थान प्रगतिशील लेखक-संघ ने इसे अपना मुख-पत्र बनाया था। बरुआ अकेले ही इस पत्र का प्रकाशन लगभग दो वर्ष तक करते रहे। १६४८ ई० में वंशीधर मिश्र ने 'रजनी' नाम से एक कहानी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जिसके दो अंक ही प्रकाशित हो सके। १६५१ ई० में कृष्णचन्द खण्डेलवाल ने मासिक 'महिला जागृति का प्रकाशन आरम्भ किया और लगभग दो वर्ष तक उसका प्रकाशन किया। १६५७ ई० में श्री कमलेश जोशी ने 'निशान्त' नाम से एक साहित्यिक पत्रिका का आरम्भ किया पर इसके तीन अंक ही प्रकाशित हुए। १६५६ ई० में भागीरथ भार्गव ने आलोचनात्मक 'त्रैमासिक' समीक्षा का आरम्भ किया पर इसके भी चार अंक ही प्रकाशित हो सके। १६६१ ई० से भागीरथ भार्गव 'कविता' वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं। इस पत्र ने समस्त भारतवर्ष के नव साहित्यिक क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की है। १६६४-६५ में जुगमन्दिर तायल ने ओम प्रभाकर के सहयोग से 'शब्द' नामक अनियतकालीन काव्य-पत्रिका का आरम्भ किया। इसके पांच अंक ही प्रकाशित हो सके किन्तु अपने पांच अंकों से आधुनिक हिन्दी-साहित्य में इसने विशिष्ट स्थान बनाया और इसके अनुकरण में बाद में कितने ही पत्र प्रकाशित हुए। राजर्षि कॉलेज के हिन्दी विभाग ने १६६२ ई० में 'साहित्यिकी' वार्षिक पत्रिका का आरम्भ किया अब तक इसके दो अंक प्रकाशित हुए हैं।

राजनैतिक पत्रों का इतिहास साहित्यिक पत्रों के इतिहास से भिन्न नहीं है। १६३७ ई० में प्रकाशित 'तेजप्रताप' अलवर का पहला समाचार पत्र था। इसके सम्पादक श्री अवतारचन्द जोशी थे और यह ७-८ वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। इस पत्र को शासन का सहयोग प्राप्त था और अधिकृत रूप से सरकारी प्रकाशन न होने पर भी यह सरकार समर्थित प्रकाशन था। मोदी कुंजविहारीलाल गुप्त ने १६४३ ई० में 'अलवर पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ किया। अलवर प्रजामंडल के इतिहास में अलवर पत्रिका का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। आजादी से पूर्व 'अलवर पत्रिका' ही एक मात्र समाचार पत्र था जो अलवर की जनता की आशा-आकांक्षाओं को और स्वतंत्रता प्राप्ति के उसके प्रयत्नों को निर्भीक भाव में प्रकट करता था। बड़ी अजीब बात है कि आजादी के बाद उसे अपनी राष्ट्रीय सरकार, मत्स्य सरकार का भी कोप सहना पड़ा और 'अलवर-पत्रिका' के अस्तित्व की रक्षा के लिए मोदी कुंजविहारीलाल गुप्त को अनशन करना पड़ा। अलवर-पत्रिका का सम्पादन मोदी कुंजविहारीलाल गुप्त के बाद उनके बड़े सुपुत्र श्री कैलाश मोदी ने और फिर उनके छोटे सुपुत्र सुभाष मोदी ने जयपुर से काफी समय

तक किया। पच्चीस वर्ष से भी अधिक समय तक प्रकाशित होते रहने के वाद अव 'अलवर-पत्रिका' का अस्तित्व समाप्त हो गया है।

जनवरी १६४७ ई० में अलवर कॉंग्रेस के द्वारा 'स्वतन्त्र-भारत' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। श्री भोलानाथ इसके प्रथम सम्पादक थे, वाद मे श्री रामानन्द अग्रवाल इसके सम्पादक वने। श्री अग्रवाल के कॉंग्रेस छोड़ देने के वाद श्री शान्तिस्वरूप डाटा सम्पादक वने। 'स्वतंत्र-भारत' ७-८ वर्ष तक प्रकाशित हुआ। १६५१ ई० मे श्री ऐशीलाल विद्यार्थी और हरिनारायण सैनी ने 'किसान-साथी' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह किसान-सभा का प्रमुख पत्र था और रुक-रुक कर १६५७ ई० तक प्रकाशित होता रहा। पहले आम चुनाव के अवसर पर समाजवादी दल ने 'नौजवान' साप्ताहिक का आरम्भ किया। इसके केवल ५-६ अक प्रकाशित हुए। कुछ समय वाद प्रकाशित 'अपना देश' साप्ताहिक की भी यही नियति रही। पहले आम चुनाव के अवसर पर मोदी रंगविहारी गुप्त ने 'आगे वढ़ो' नामक साप्ताहिक का प्रकाशन किया। श्री हरिनारायण सैनी ने १६५६ ई० में किसान सभा और साम्यवादी दल से अपना सम्वन्ध विच्छेद करने के वाद १६५६ ई० में स्वतन्त्र रूप से 'राजदूत' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। साम्यवादी दल ने श्री हारुमल तोलानी के सम्पादन में 'जनवाद' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह पत्र अव जयपुर से प्रकाशित होता है। श्री ओमप्रकाश भाटिया के सम्पादन मे 'वौछार' नामक साप्ताहिक भी कई वर्ष तक प्रकाशित होता रहा। तीसरे आम चुनाव के अवसर पर श्री कैलाश मोदी और श्री हरिनारायण सैनी ने 'हीरा-मोती' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया। इस अवसर पर ही अलवर से एक दैनिक 'राजस्थान-टाइम्स' का प्रकाशन भी आरम्भ हुआ। 'पहचान' साप्ताहिक का प्रकाशन भी तीसरे आमचुनाव के समय आरम्भ हुआ था। चुनावों के समय और भी अनेक पत्र आरम्भ होते रहे है और समाप्त होते रहे है। वर्तमान में अलवर में एक दैनिक और अनेक साप्ताहिक प्रकाशित होते है किन्तु अलवर के सार्वजनिक जीवन पर इनका कोई प्रभाव नही है।

सार्वजनिक संस्थायें

अलवर की पहली सार्वजनिक संस्था १८६२ ई० में स्थापित आर्य-समाज है। फिर इसकी देखा-देख १८६५ ई० में सनातन-धर्म सभा की स्थापना हुई। इसे सरकारी समर्थन प्राप्त था और ३०० रु० वार्षिक सहायता मिलती थी। राज-भवन में सभा के जलसे होते थे। दूसरी ओर आर्यसमाज को सरकार सन्देह की नजर से देखती थी। १६२६ ई० में आर्यसमाज के मंत्री को जेल जाना पड़ा। १६२० ई० के लगभग एक हिन्दी-साहित्य-समिति का निर्माण हुआ था जिसके विषय में अव कुछ भी ज्ञात नही होता है। सोमवंशीय क्षत्रिय सभा की स्थापना १६२२ ई० में हुई जिसने १६२५-२६ ई० की प्लेग के समय अच्छा सेवा-कार्य किया। १६२५-२६ ई० मे हरि-कीर्तन समाज की स्थापना हुई। आरम्भ मे इस संस्था ने पुस्तकालय और अनाथालय का संचालन किया और नाटक तथा रासलीलाओं के द्वारा कला तथा साहित्य का प्रचार भी किया। यह संस्था 'राजर्षि अभय-समाज' के नाम से आज भी जीवित है मगर अव इसकी

गतिविधि प्रति वर्ष रामलीला आयोजित करने तक सीमित रह गई है और बाद में व्यापारिक स्तर पर कुछ नाटकों का प्रदर्शन भी किया जाता है।

अलवर की सार्वजनिक संस्थाओं में जातीय संस्थाओं की प्रधानता है। जातीय संस्थाओं में सबसे पुरानी संस्था १९२० ई० में स्थापित जैन औषधालय है। यह अलवर में स्थापित पहला औषधालय है और आज भी कार्य कर रहा है। जैन समाज की ओर भी अनेक संस्थायें हैं जैसे जैन मित्र-मंडल आदि। जैन समाज का नवीनतम प्रशंसनीय कार्य है बी० एड० की शिक्षा के लिए कॉलेज की स्थापना। जाट-क्षत्रिय सेवा संघ की स्थापना १९३२ ई० में हुई और खण्डेलवाल युवक संघ की १९३४ ई० में। १९३५ ई० में ब्राह्मण सभा की स्थापना हुई। १९३७ ई० में मेव पंचायत और महावर-वैश्य सभा की स्थापना हुई। जातीय संस्थाओं में इनके अतिरिक्त अग्रवाल सभा, चारण सभा, सैनी युवक संघ, मीना क्षत्रिय सभा, राजपूत सभा, कायस्थ सभा आदि अनेक संस्थायें कार्य कर रही हैं। शहर में लगभग सभी जातियों के छात्रावास हैं—चारण छात्रावास, ब्राह्मण छात्रावास, राजपूत छात्रावास, मीना छात्रावास, यादव छात्रावास, अग्रवाल छात्रावास, खण्डेलवाल छात्रावास, महावर छात्रावास, चित्रगुप्त छात्रावास, मेव बोर्डिंग आदि। इन छात्रावासों में जाति से सम्बन्धित छात्रों को ही प्रवेश मिलता है।

१९३९ ई० में शिडिशियस् मिटिंगस् एक्ट रद्द होने के बाद संस्था-निर्माण में तेजी आई। १९३९-४० ई० में अनेक पुरानी संस्थायें नये कानून के अन्तर्गत रजिस्टर्ड हुई। साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी परिषद् का रजिस्ट्रेशन जनवरी १९४० ई० में हुआ। इस संस्था ने अनेक वर्षों तक महत्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दी भाषा की परीक्षाओं का संचालन, कवि सम्मेलन, साहित्य-सम्मेलन, गोष्ठी, साहित्य-प्रकाशन आदि के साथ परिषद् ने तीन वर्ष तक 'अरावली' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। १९५४ ई० में कुछ युवकों ने 'साहित्य-परिषद्' की स्थापना की। इस संस्था ने एक वर्ष तक कार्य किया। हिन्दी के एक सौ से अधिक से अधिक समाचार पत्रों की प्रदर्शनी इसका एक उल्लेखनीय कार्य है। १९६७ ई० में एक और साहित्यिक संस्था 'साहित्य-संगम' का जन्म हुआ है। 'साहित्य-संगम' विगत वर्ष से शहर के बीच में 'रवीन्द्र-पुस्तकालय' का संचालन कर रहा है। शहर से बाहर की साहित्यिक संस्थाओं में लक्ष्मणगढ का सरस्वती पुस्तकालय उल्लेखनीय है। सरस्वती-पुस्तकालय की ओर से हिन्दी परीक्षाओं का संचालन और कवि-सम्मेलन का आयोजन होता है। कलाओं के क्षेत्र में, ललित कला परिषद की स्थापना १९४३ ई० में हुई थी। यह संस्था अब 'कला-भारती' के नाम से कार्य कर रही है। इस संस्था का संचालन बालहित शिक्षा समिति करती है और इस संस्था के द्वारा नृत्य-संगीत, तथा चित्रकला की शिक्षा दी जाती है। यह संस्था अब प्रमुख रूप से शैक्षणिक संस्था बन गयी है। 'श्रुति-मंडल' की स्थापना १९६७ ई० में हुई है। अल्पकाल में ही इस संस्था ने अनेक आयोजन सफलतापूर्वक किए हैं और देश के अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञ इस संस्था के निमंत्रण पर अलवर पधारे हैं। इस संस्था के आयोजकों की रुचि संगीत की ओर अधिक है यद्यपि नृत्य के दो आयोजन भी इस संस्था की ओर से हो चुके हैं।

अन्य सामाजिक संस्थाओं में हरिजन-सेवक-संघ की स्थापना १६३२ ई० में हुई। १६४४ ई० में इसे फिर से पुनर्जीवित किया गया मगर अब यह संस्था मृत प्राय: है। महिलाओं की पहली संस्था 'नारी जागृति' के नाम से १६४५ ई० में स्थापित हुई थी। अब महिलाओं की एक मात्र कार्यकारी संस्था 'महिला उद्योग शाला' है जो अनेक वर्षों से महिलाओं को सिलाई कढ़ाई का काम सिखा रही है। खेल-कूद सम्बन्धी संस्थाओं में अलवर जिला फुटवाल एसोसियेशन का नाम उल्लेखनीय है। इस संस्था के तत्वावधान में अलवर के खिलाड़ी दूर-दूर तक अपने चातुर्य का प्रदर्शन कर चुके हैं।

आरोह-अवरोह के सोपान

राजनीति का अर्थ क्या होता है ? राजा की नीति अथवा राज्य की नीति निर्धारण में प्रजा द्वारा भाग लेने का प्रयत्न। यदि राजनीति का दूसरा अर्थ ठीक है तो अलवर में राजनीति का आरम्भ १६३७ ई० में महाराजा जयसिंह की मृत्यु के बाद होता है। महाराजा जयसिंह की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकार के विषय में विवाद उत्पन्न हुआ। प्रजा का एक वर्ग बीजवाड़ के ठाकुर कल्याणसिंह को अलवर-नरेश के रूप में देखना चाहता था। मई १६३७ ई० में इस वर्ग के लोगों ने कम्पनी बाग में एक बड़ी सभा की। पर इस वर्ग को अपने प्रयत्नों में सफलता नहीं मिली और अलवर के राजा बने थाना के श्री तेजसिंह, बाद में श्री कल्याणसिंह का समर्थन करने के कारण कुछ लोगों को गिरफ्तार किया गया जिनमें मुख्य थे मुस्लिम लीग के डा० मोहम्मदअली और जमाली और हिन्दू सभा तथा कांग्रेस के नेता कुंजबिहारीलाल मोदी, लच्छीराम सौदागर, सालिगराम नाजिम, पं० हरिनारायण शर्मा आदि। ये अलवर के पहले राजनीतिक बन्दी थे। श्री टीका-राम पालीवाल इनकी ओर से वकील बनकर अलवर आये थे पर उनको वकालत की इजाजत नही दी गई। इन्हीं दिनों इन्द्रसिंह आजाद पर सरकारी स्कूल मे तोड़-फोड़ करने के अप-राध पर अलग से मुकदमा चलाया गया।

आरोह-आरोह-आरोह—

गिरफ्तारियों से पहले ही सितम्बर १६३७ ई० में मन्नी के बड़ पर स्थित एक महादेवजी के मन्दिर में कांग्रेस की स्थापना कुछ लोग कर चुके थे। कांग्रेस की स्थापना के अवसर पर दिल्ली कांग्रेस के नेता लाला शंकर लाल अलवर आये। अलवर में कांग्रेस के पहले अध्यक्ष स्व० पं० सालिगराम नाजिम बने और इन्द्रसिंह आजाद को पहला मंत्री चुना गया। उपर्युक्त गिरफ्तारियों के बाद कांग्रेस की तरफ से एक सभा की गई जिसमे बाहर से भी नेता आये। इस सभा में स्वामी श्रद्धानन्दजी की सुपुत्री सत्यवतीजी का बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ।

१६३८ ई० में श्री लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी कांग्रेस के अध्यक्ष बने। उसी समय अलवर में छात्रो पर पहली बार चार आना मासिक फीस लगाई गई। इससे पहले अलवर में सारी शिक्षा नि:शुल्क थी। कांग्रेस ने इसके विरोध का निश्चय किया और प्रत्येक वार्ड में इस सम्बन्ध में मीटिंग की गई। होली ऊपर की पहली मीटिंग में ही गिरफ्तारियां शुरू हो गई और बहुत से लोग गिरफ्तार किये गये। बाद में कुछ लोग माफी मांग कर चले आये मगर

पाँच व्यक्तियों को दो-दो साल की सख्त सजा मिली— प० हरिनारायण शर्मा, नत्थूराम मोदी, लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी, इन्द्रसिंह आजाद और राधाचरणजी। कुंजबिहारीलाल मोदी पहले ही जेल में थे। जेल में भी इन लोगों ने आन्दोलन, अनशन आदि किये जिसके कारण जेल प्रशासन में परिवर्तन किया गया और वन्दियों को भी सुविधाएं प्राप्त हुई। बाद में अपील करने पर बंदियों की सजा घटाकर आठ महिने कर दी गई।

फीस विरोधी आन्दोलन में मास्टर भोलानाथ का भी योगदान था, यद्यपि वे उस समय सरकारी अध्यापक थे। आन्दोलन में सहायता देने के कारण अलवर से उनका तबादला किया गया पर उन्होंने नौकरी से स्तीफा दे दिया और खुलकर आन्दोलन में भाग लेने लगे। १९३८ ई० में सभी नेताओं के जेल जाने पर बजाजा बाजार स्थित कांग्रेस कार्यालय पर कुछ व्यक्तियों ने कब्जा कर लिया था। मास्टर भोलानाथ और कुंजबिहारीलाल मोदी ने ताला तोड़कर कार्यालय पर फिर से अधिकार किया। इस सम्बन्ध में उनपर मुकदमा भी चलाया गया।

१९३९ ई० में मोदी नत्थूराम के घर पर प्रजामंडल की स्थापना हुई। मुंशीबाग में उसका कार्यालय खोला गया। प० हरिनारायण शर्मा प्रजामंडल के पहले मंत्री बने। कुछ समय तक कांग्रेस और प्रजामंडल नाम से दो अलग-अलग संस्थायें बनी रहीं किन्तु बाद में भारतीय कांग्रेस के उच्च नेताओं के परामर्श पर अगस्त १९४० ई० में कांग्रेस को प्रजामंडल में विलीन कर दिया गया। १९४० ई० में बड़े वाद विवाद के बाद अलवर शासन के अन्तर्गत प्रजा के प्रगतिशील सहयोग को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रजामंडल को संस्था पंजीकृत कानून के अन्तर्गत पंजीकृत किया गया। १९४० ई० में ही अलवर में नत्थूराम मोदी ने खादी भण्डार की स्थापना की और अलवर में खादी भण्डार के उद्घाटन के लिए श्री महादेव देसाई पधारे। १९४१ ई० में खैरथल में खादी प्रदर्शनी की गई।

१९४१ ई० में ही राजगढ़ में जागीर माफी कान्फ्रेंस आयोजित की गई। इस कान्फ्रेंस के अध्यक्ष गुरु बृजनारायण और मंत्री श्री कुन्जबिहारीलाल मोदी थे। कहा जाता है कि अलवर जिले में सबसे पहले इसी सभा में लाउडस्पीकर का प्रयोग किया गया था। सत्यदेव विद्यालंकार ने इस कान्फ्रेंस का उद्घाटन किया था। इस कान्फ्रेंस में किसानों की समस्याओं पर विचार किया गया। यह कान्फ्रेंस इस बात की प्रतीक थी कि अलवर के राजनैतिक नेताओं का ध्यान किसानों की ओर उन्मुख होने लगा था।

१९४२ ई० की क्रांति के दिनों में अलवर में भी कुछ नवयुवकों ने सरकारी डाकखाने जलाने की योजना बनाई। तहसीलों के कुछ डाकखानों को नुकसान भी पहुँचाया गया मगर शहर का डाकखाना सुरक्षित रहा। इस सम्बन्ध में तीन विद्यार्थियों—श्री हीरालाल भारतीय, श्री महावीर प्रसाद जैन और श्री चिरंजीलाल वर्मा को गिरफ्तार किया गया।

१९४३ ई० में अलवर के राजनीतिक आन्दोलन को एक नया जीवन मिला। श्री शोभाराम ने इसी वर्ष से कार्य शुरू किया। उन्होंने गाँधीजी की सहानुभूति में १३ दिन का अनशन किया। श्री रामजीलाल अग्रवाल और श्री फूलचन्द गोठड़िया ने भी इसी वर्ष से राजनीति में

सक्रिय भाग लेना शुरु किया। इन तीनों के प्रयत्नों से कांग्रेस का कार्य शहर से आगे बढ़कर गाँवों में भी फैलने लगा। मुँडावर, बहरोड़ की तरफ कांग्रेस का प्रचार विशेष रूप से बढ़ा। १९४३ ई० में कस्तूर बा का निधन होने पर राजर्षि कॉलेज के छात्रों ने हड़ताल की और इस सम्बन्ध में कॉलेज से कुछ छात्रों को निकाला भी गया।

१९४४ ई० मे अलवर के गिरधर आश्रम में समस्त राजस्थान के प्रजामंडल कार्यकर्ताओं का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में श्री जयनारायण व्यास, श्री गोकुल भाई भट्ट और सुश्री मृदुलाबेन साराभाई भी आई थी। इस सम्मेलन मे देशी राज्यों में काम करने वाले प्रजामंडलों की संगठनात्मक समस्याओं पर विशेष रूप से विचार किया गया। अगले वर्ष उदयपुर में अखिल भारतीय देशी रियासत-प्रजा परिषद् का सम्मेलन हुआ। पं० जवाहरलाल नेहरु इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे। इस सम्मेलन मे भाग लेने के लिए अलवर प्रजामंडल की ओर से आठ प्रतिनिधि भेजे गये—सर्वश्री शोभाराम, भोलानाथ, पं० हरिनारायण शर्मा, पं० भवानीसहाय, घासीराम गुप्ता, काशीराम गुप्ता, फूलचन्द गोठड़िया और रामजीलाल अग्रवाल।

१९४६ ई० का वर्ष अलवर प्रजामडल के इतिहास में बहुत महत्त्व का वर्ष है। इस वर्ष प्रजामडल ने दो बार आन्दोलन किया। प्रजामंडल ने वर्ष के आरम्भ में घोषणा की कि राजगढ़ तहसील के खेड़ा मंगलसिंह गाँव में २ फरवरी को किसान सम्मेलन किया जाएगा। खेड़ा मंगलसिंह अलवर के तत्कालीन राजस्वमंत्री श्री बहादुरसिंह का गांव था। उन्होंने अपने गाँव में किसान-सम्मेलन के आयोजन को अपना अपमान समझा। परिणाम यह हुआ कि सम्मेलन से पहले की रात को ही खेड़ा मंगलसिंह में मौजूद नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इनमें सर्वश्री शोभाराम, काशीराम, रामजीलाल अग्रवाल शामिल थे। श्री भोलानाथ को आन्दोलन के प्रचार के लिए दिल्ली भेज दिया गया था। अलवर शासन ने खेड़ा मंगलसिंह में की गई गिरफ्तारियों से सन्तोष नही किया, वह प्रजामंडल के आन्दोलन को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहती थी, अतः राजगढ़ में श्री भवानीसहाय को गिरफ्तार किया गया, तिजारा में श्री कृपादयाल माथुर और घासीराम गुप्ता को गिरफ्तार किया गया तथा अलवर में श्री कुंजविहारीलाल मोदी, श्री इन्द्रसिंह आजाद, श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता, श्री रामावतार वकील को गिरफ्तार किया गया। सारे नेताओं की अनुपस्थिति में श्री शांति स्वरुप डाटा ने आन्दोलन का नेतृत्व सँभाला। उनके प्रयत्नों से सारे शहर में एक दिन की हड़ताल हुई। बाद में श्री हीरालाल शास्त्री अलवर आये और उनके प्रयत्नों से प्रजामंडल के नेता छोड़ दिये गये। मुक्त नेताओं का जनता ने शानदार स्वागत किया और इस अवसर पर लगभग १००००) मूल्य का नकद और सामान प्रजामंडल को भेंट किया गया।

मई १९४६ ई० में आजाद हिन्द सेना के प्रसिद्ध नेता शाहनवाज अलवर आये। उन दिनों शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन आजाद हिन्द सेना के नेताओं के रूप में सारे भारत में प्रसिद्ध हो रहे थे। आरम्भ में तीनों ही नेताओं के अलवर आने का कार्यक्रम था पर बाद में केवल शाहनवाज ही अलवर आ सके। अलवर निवासियों ने उनका भव्य स्वागत किया।

उनका शानदार जलूस निकाला गया और कम्पनीबाग के सामने के कोरोनेशन ग्राउण्ड में एक विशाल सभा मे उनका भाषण हुआ। १६४६ ई० में श्री नारायणदत्त पजाब से अपनी पढाई समाप्त कर अलवर आये। उन्होने विशेष रूप से हरिजनो में कार्य किया और हरिजन सेवक सघ को, जिसकी स्थापना पहली बार १६३२ ई० मे और दूसरी बार १६४४ ई० में हुई थी, सक्रिय और प्रभावशाली बनाया। हरिजन सेवक-सघ द्वारा काग्रेस का सन्देश हरिजनो तक भी पहुँच गया। श्री नारायणदत्त के साथ श्री हरिनारायण सैनी और श्री दयाराम भी राजनीति में सक्रिय हुये।

अगस्त १६४६ ई० में प्रजामडल ने एक बडा आन्दोलन आयोजित किया। इस आन्दोलन का मुख्य नारा था—'गैर जिम्मेदार मिनिस्टरो कुर्सी छोडो'। प्रजामडल की ओर से आन्दोलन के आरम्भ की तिथि २६ अगस्त निश्चित की गई थी। २२ अगस्त को भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता राजा महेन्द्रप्रताप अलवर आये और पुराने कटले मे एक बडी सभा में उनका भाषण हुआ। २४ अगस्त सारे जिले मे आन्दोलन की तैयारी का दिन था। राजगढ में इस दिन प० भवानीसहाय ने खुले आम सरकारी झण्डा फाडा। अलवर में एक बडा जलूस निकाला गया और कुछ गिरफ्तारियाँ भी हुई। रामगढ में पुलिस ने शान्त प्रदर्शन पर लाठी प्रहार किया जिसमें फूलचन्द गोठडिया घायल हुये। २६ अगस्त से अलवर में सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ आठ दिन तक चला। आठो दिन शहर मे पूरी हडताल रही। शहर में बडा भारी जोश था। महिलाओ ने भी सत्याग्रह में भाग लिया और लगभग ४०० व्यक्ति जेल गये। अन्त में हीरालाल शास्त्री पुन अलवर आये और उन्होंने राजा तथा प्रजामडल में समझौता कराया। प्रजामडल के सारे नेता छोड दिये गय, परन्तु जब प्रजामडल के नेताओ का जुलूस निकल रहा था तब सरकारी कमचारी जुलूस के पीछे पीछे एक सरकारी गजट-सूचना बाँटने लगे जिसके अनुसार प्रजामडल के नेताओ को राजकुमार के जन्म दिन की खुशी में छोडा गया था। राजा का यह प्रयत्न प्रजा में हँसी की बात बनकर रह गया।

१६४७ ई० के आरम्भ होने तक सारे देश की हवा बदल चुकी थी। केन्द्र में प० नेहरू के नेतृत्व मे अन्तरिम सरकार की स्थापना सितम्बर १६४६ ई० में ही हो गई थी। राजस्थान के अनेक देशी राज्यो में भी लोकप्रिय मत्रीमडल बनने लगे थे। १६४७ ई० के आरम्भ में अलवर मे भी महाराज की ओर से लोकप्रिय मत्रीमडल बनाने की घोषणा की गई। हिन्दू महासभा की ओर से प० रामचन्द्र व्यास महाराज के मत्रीमडल में शामिल हुये। प्रजामडल को भी मत्रीमडल में शामिल होने का निमन्त्रण दिया गया था। महाराज प्रजामडल को मत्रीमडल में हिन्दू महासभा के समकक्ष रखना चाहते थे जबकि प्रजामडल अपने लिए दो स्थान चाहता था। इस विषय पर महाराजा और प्रजामडल में समझौता नही हो सका और प्रजामडल ने महाराजा का निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। प० रामचन्द्र व्यास सप्लाई विभाग के मत्री बनाये गये थे। उन दिनो अन्न, तेल, कपडा आदि के लिए जनता बहुत परेशान थी। प० रामचन्द्र व्यास ने इन आवश्यक वस्तुओ के समुचित वितरण के लिए काफी प्रयत्न किया और जनता में लोकप्रियता प्राप्त की।

साम्प्रदायिक दगों के वाद अलवर प्रजामंडल ने फरवरी ४८ में एक विशाल आन्दोलन चलाने की योजना बनाई थी, किन्तु ३० जनवरी १९४८ ई० को महात्मा गांधी की जघन्य हत्या के कारण उसे क्रियान्वित नही किया जा सका। महात्मा गांधी की हत्या में अलवर राज्य का कितना हाथ था या बिल्कुल नही था यह आज भी विवाद का विषय बना हुआ है, किन्तु महात्मा गांधी की हत्या के कुछ दिन पूर्व अलवर नगर मे गांधीजी के विरुद्ध एक पर्चा अवश्य बाँटा गया था जिसमें गांधीजी को अनेक तरह की निकृष्ट गालियाँ दी गई थी और आह्वान किया गया था कि क्या कोई ऐसा है जो हिन्दू धर्म के इस दुश्मन को समाप्त कर सके। गांधीजी की हत्या के बाद अलवर राज्य मे राजनैतिक घटना-चक्र बहुत तेजी से चलने लगा। महाराज की ओर से ४ फरवरी को कम्पनीबाग में शोक-सभा का आयोजन करने की घोषणा की गई। प्रजामंडल के नेताओं ने उस सभा मे ही राजशाही के विरोध का निश्चय किया। प्रजामंडल की योजना सभा पर कब्जा करने की थी। ३ फरवरी को प्रजामंडल की ओर से 'गांधीजी का हत्यारा कौन ?' शीर्षक पर्चा बाँटा गया। ४ फरवरी को सभा में शोक-प्रस्ताव पढने के तुरन्त बाद निश्चित कार्यक्रम के अनुसार प्रजामंडल के नेता चारों ओर से नारे लगाते हुए मंच की ओर बढने लगे। महाराज सभा छोडकर चले गये और प्रजामंडल के नेता मंच पर अधिकार करके सभा चलाने लगे। तत्कालीन प्रधान मंत्री डा० खरे सभा में नही आये थे। जनता में उनके प्रति बहुत रोष था। सभा के बाद जनता का समूह डा० खरे की कोठी की ओर चला। प्रजामण्डल के नेताओ ने बड़ी मुश्किल से भीड़ को कोठी मे भीतर घुसने से रोका। एक प्रतिनिधिमंडल डा० खरे से मिलने गया और उसने माँग की कि डा० खरे तुरन्त अलवर छोड़कर चले जायें। डा० खरे उसी रात अलवर छोड़कर चले गये। रात को ही श्री भोलानाथ केन्द्रीय नेताओ को सारे समाचार बताने के लिये दिल्ली गये। दूसरे दिन ५ फरवरी को भारत के गृहमंत्री सरदार पटेल ने आवश्यक परामर्श के लिए अलवर के महाराजा को दिल्ली बुलवाया और इसके दूसरे दिन महाराजा की नजरबन्दी और अलवर के प्रशासक के रूप में के० बी० लाल की नियुक्ति की घोषणा कर दी गई। इसके साथ ही केन्द्रीय सरकार की फौजे अलवर राज्य में आ पहुँची और हवाई जहाज से साँझ को के० बी० लाल भी अलवर आ गये। के० बी० लाल ने तुरन्त ही आवश्यक विभागों पर नियन्त्रण कर लिया। केन्द्रीय सरकार के टैंक सभी जरूरी जगहों पर तैनात कर दिये गये और शहर में तीन दिन के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया। यह सारी कार्यवाही इतनी तेजी से की गई कि विरोधियों को कुछ करने का अवसर ही न मिल सका। अलवर में हुआ केन्द्रीय सरकार का हस्तक्षेप राजस्थान मे पहला हस्तक्षेप था और सारे भारतवर्ष में भी इस तरह का दूसरा हस्तक्षेप था।

श्री के० बी० लाल का प्रशासन एक माह और कुछ दिन रहा। इस बीच में महाराजा ने अपने राज्य को भारत संघ में विलय करने के लिए आवश्यक संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। फरवरी १९४८ में सरदार पटेल अलवर आये और राजर्षि कॉलेज के खेल-मैदान मे एक विशाल सभा मे उनका भाषण हुआ। भाषण में सरदार पटेल ने जोर देकर कहा कि नये युग में भंगी की झाड़ू राजपूत की तलवार से कम महत्वपूर्ण नही मानी जायेगी। सरदार पटेल का यह

भाषण अखिल भारतीय महत्त्व का था। इस भाषण मे भारत के उन समस्त राजा-महाराजाओं को चेतावनी दी गई थी जिन्होंने तब तक भारत-विलय की सन्धि पर हस्ताक्षर नही किये थे। केन्द्रीय सरकार अलवर में अधिक दिन तक केन्द्रीय प्रशासन चलाने के पक्ष मे नही थी और शीघ्र ही लोकप्रिय शासन स्थापित करने की इच्छुक थी। शीघ्र ही इस सम्बन्ध मे योजना बना ली गई और अलवर, भरतपुर, धौलपुर तथा करौली राज्यो को मिलाकर मत्स्य-सघ बनाने का निश्चय किया गया। १९ मार्च सन् १९४८ ई० को अलवर मे मत्स्यसघ का उद्घाटन हुआ। अलवर मत्स्यसघ की राजधानी बनायी गइ और अलवर प्रजामडल के प्रसिद्ध नेता श्री शोभाराम मत्स्य सघ के मुख्यमत्री बने। मत्रीमण्डल मे उनके अतिरिक्त पाच मन्त्री और थे—

(१) श्री भोलानाथ।

(२) श्री जुगलकिशोर चतुर्वेदी।

(३) श्री गोपीलाल यादव।

(४) डा० मगलसिह।

(५) श्री चिरजीलाल।

करौली महाराज मत्स्य सघ के राजप्रमुख थे और अलवर महाराज उप-राजप्रमुख। इस प्रकार अलवर मे उत्तरदायी और लोकप्रिय शासन की स्थापना हुई। प्रजामण्डल भग कर दिया गया और उसके स्थान पर काग्रेस की पुन स्थापना की गई। मत्स्य सघ के चारो जिलो में काग्रेस के निर्माण के साथ मत्स्य कांग्रेस का भी सगठन किया गया और श्री रामानन्द अग्रवाल श्री राजबहादुर के साथ मत्स्य कांग्रेस के मन्त्री बनाये गये। मा० आदित्येन्द्र मत्स्य काग्रेस के अध्यक्ष बने। नवम्बर १९४८ मे अलवर मे मत्स्य-कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ जिसमे श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन और आचार्य कृपलानी ने भी भाग लिया।

मत्स्य सरकार ने सिफ १ वर्ष काम किया पर एक वर्ष मे ही अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य मत्स्य-सरकार ने किये। १९४७ ई० की साम्प्रदायिक अशान्ति के बाद बहुत सारे मेव पाकिस्तान तथा अन्य जगहो पर भाग गये थे। महाराजा के शासन ने उनकी छोडी हुई जमीन अपने आदमियो को ठेके पर देदी थी। मत्स्य सरकार ने उन ठेको को रद्द किया और किसानो को सिर्फ लगान पर पट्टा अधिकार के साथ जमीन देने का निर्णय किया और इस निर्णय पर अमल भी किया। शरणार्थियो को बसाने मे भी मत्स्य सरकार ने सराहनीय कार्य किया। ४ व्यक्ति या इससे कम सदस्य वाले परिवारो को १०-१० बीघा जमीन दी गई, ४ से ७ तक सदस्य वाले परिवारो को ११ बीघा और ७ से अधिक सदस्य वाले परिवारों को २५ बीघा जमीन दी गई। इसके अलावा परिवार के सदस्यो की सख्या को ध्यान मे रखते हुये १०००) तक का ऋण भी दिया गया तथा प्रत्येक परिवार को ६ महिने का राशन भी दिया गया। मत्स्य सरकार ने शरणार्थियों की पूर्व स्थिति का ध्यान न रखकर सबको बराबर सहायता दी, सहायता कार्य मे उसने गरीब अमीर का भेद नही किया। भ्रष्टाचारी अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की माँग

प्रजामंडल बहुत दिनों से कर रहा था, मत्स्य-सरकार ने १५ भ्रष्टाचारी अधिकारियों की सूची बनाई और उन्हें उच्च स्थानों से हटाकर अन्य साधारण कार्यो पर लगाया। मत्स्य-सरकार के इस कार्य से भ्रष्टाचारियों पर आतंक छा गया। मत्स्य-कांग्रेस ने इस सम्बन्ध में एक भ्रष्टाचार विरोधी विधेयक भी बनाया पर वह लागू नही हो सका।

मत्स्य-सरकार के शासन की एक अन्य उल्लेखनीय घटना-सरकारी कर्मचारियों का आन्दोलन है। यह आन्दोलन अध्यापको ने शुरू किया था किन्तु शीघ्र ही सारे कर्मचारी इसमें शामिल हो गये। आन्दोलनकारियों की मुख्य माँगे सस्ता राशन और वेतन-वृद्धि के सम्बन्ध में थी। आन्दोलन काफी सफलता से चला। कांग्रेस का एक प्रगतिशील हिस्सा भी आन्दोलन-कारियों से सहानुभूति रखता था। अन्त मे सरकार और कर्मचारियो के बीच समझौता हो जाने से हड़ताल समाप्त हुई।

मत्स्य-संघ भारत-संघ का सबसे छोटा प्रान्त था और इतने छोटे प्रान्त का अलग अस्तित्व व्यवहारिक नही था। राजपूताने की अन्य देशी-रियासतो के विलय से राजस्थान प्रान्त बनने पर मत्स्य-संघ भी २२ मार्च १९४९ ई० को राजस्थान प्रान्त में विलय हो गया और अलवर राज्य राजस्थान का एक जिला बन गया। मत्स्य-सघ के मुख्य-मंत्री श्री शोभाराम राजस्थान-राज्य मंत्री-मंडल मे राजस्व मंत्री बनाये गये।

अवरोह—अवरोह

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आरम्भ में अलवर जिला कांग्रेस अपनी उन्नति के चरम शिखर पर थी। १९५० ई० में अलवर शहर में वयस्क मताधिकार के आधार पर पहला चुनाव हुआ और उसमें हिन्दूमहासभा के मुकाबिले मे कांग्रेस ने शानदार विजय प्राप्त की।

इससे भी ज्यादा शानदार विजय कांग्रेस ने पहले आमचुनाव में प्राप्त की। पहले आम चुनाव में अलवर जिला ८ विधानसभा क्षेत्रों मे बाँटा गया जिनमें ९ सदस्यों का चुनाव होना था। कांग्रेस का एक उम्मीदवार लक्ष्मणगढ़-राजगढ़ क्षेत्र से निर्विरोध चुना गया और अन्य सभी क्षेत्रों मे भी कांग्रेस के उम्मीदवारों ने सफलता प्राप्त की। रामगढ़ क्षेत्र में कांग्रेस के उम्मीदवार को ६९·२ प्रतिशत मत मिले। अलवर जिला में कांग्रेस को शत-प्रतिशत सफलता मिली जब कि सम्पूर्ण राजस्थान में उसे पचास प्रतिशत सफ़लता मिली थी। अलवर जिला में कांग्रेस को ५३·६ प्रतिशत मत मिले जबकि सम्पूर्ण राजस्थान में उसे केवल ३९·५ प्रतिशत मत मिले थे। लोकसभा के चुनाव मे राजशाही जमाने के गृहमंत्री श्री रघुवीरसिंह और कानपुर के सेठ श्री पुरुषोत्तम सिंहानिया को कांग्रेसी उम्मीदवार श्री शोभाराम ने पचास हजार से भी अधिक मतो से हराया।

मगर इसके बाद अलवर में कांग्रेस की कहानी निरन्तर अवरोह की कहानी है। प्रथम चुनाव से पहले ही श्री कृपादयाल माथुर कांग्रेस छोड़कर साम्यवादी दल में शामिल हो गये थे। चुनाव के तुरन्त बाद श्री रामानन्द अग्रवाल और श्री नारायणदत्त भी कांग्रेस छोड़कर साम्यवादी

वादी दल में शामिल हो गये। १९५४ ई० मे श्री रामचन्द्र उपाध्याय भी काग्रेस से अलग हो गये। १९५४ ई० मे अलवर नगरपालिका के चुनाव मे काग्रेस पहली बार पराजित हुई और तीन वर्ष बाद १९५७ ई० में उसकी पराजय और भी भयानक हुई।

१९५७ ई० के दूसरे आम चुनाव मे कांग्रेस पहली बार दो विधान सभा क्षेत्रो मे पराजित हुई। थानागाजी मे कांग्रेस के पुराने क्रान्तिकारी नेता प० भवानीसहाय पराजित हुए और बहरोड मे श्रीमती शान्ति गुप्ता। श्री शोभाराम ने १९५७ ई० मे भी लोकसभा के चुनाव मे विजय प्राप्त की किन्तु उनका बहुमत १९५२ ई० की तुलना मे काफी कम हो गया। इस चुनाव मे काग्रेस को ४८ ९ प्रतिशत मत मिले जो पहले की तुलना मे पांच प्रतिशत कम थे। रामगढ क्षेत्र मे कांग्रेस को पहले ६६ २ प्रतिशत मत मिले थे किन्तु इस चुनाव मे उसे इस क्षेत्र मे केवल २८ प्रतिशत मत मिले।

१९६२ ई० के तीसरे आम चुनाव मे काग्रेस की और भी बडी पराजय हुइ। इस बार काग्रेस चार विधानसभा क्षेत्रो मे पराजित हुई, *बानसूर मे स्वास्थ्य मत्री श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता* और तिजारा मे वनमत्री श्री सम्पतराम भारी बहुमत से पराजित हुए। लक्ष्मणगढ मे काग्रेस के वरिष्ठ नेता श्री भोलानाथ एक नये उम्मीदवार से पराजित हुए और अलवर मे श्री छोटूसिह पराजित हुए। इससे भी आगे बढकर काग्रेस ने लोकसभा क्षेत्र मे भी पराजय का *सामना किया। श्री शोभाराम दो बार चुनाव जीतने के बाद इस बार श्री काशीराम गुप्ता से* पराजित हो गये। चुनाव से पहले श्री काशीराम गुप्ता और श्री शान्तिस्वरूप डाटा ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया था। इस चुनाव मे कांग्रेस के मत और भी ज्यादा घटकर केवल ४३ ५ प्रतिशत रह गये। चुनाव के बाद १९६४ ई० मे श्री रामजीलाल अग्रवाल ने भी कांग्रेस छोड दी।

१९६७ ई० के चौथे आम चुनाव मे काग्रेस ने पांच विधानसभा-क्षेत्र खोये हैं यद्यपि लोकसभा का क्षेत्र उसने फिर से प्राप्त कर लिया है। श्री सम्पतराम इस चुनाव मे पुन पराजित हुए। लगातार तीन चुनाव जीतने के बाद राजस्व उपमत्री श्री घासीराम यादव इस बार चुनाव हार गये। अलवर बानसूर और राजगढ क्षेत्रों मे भी कांग्रेस को पराजित होना पडा। इस चुनाव मे काग्रेस का मत प्रतिशत और भी अधिक घटकर ३६ ९ प्रतिशत रह गया। चौथे आमचुनाव मे सम्पूर्ण राजस्थान मे कुल मिलाकर कांग्रेस का मत प्रतिशत बढा है किन्तु अलवर जिले मे कांग्रेस का मत प्रतिशत लगभग सात प्रतिशत कम हुआ।

१९५२ ई० के आरम्भ से ही कांग्रेस के पुराने प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ता धीरे-धीरे कांग्रेस से अलग होते जा रहे हैं—श्री कृपादयाल माथुर, श्री रामानन्द अग्रवाल, श्री फूलचन्द गोठडिया, श्री रामचन्द्र उपाध्याय, श्री काशीराम गुप्ता, श्री रामजीलाल अग्रवाल और श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता। *कांग्रेस के पुराने प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ताओ मे अब श्री शोभाराम और श्री भोलानाथ ही* कांग्रेस मे रह गये हैं और इसके अतिरिक्त श्री शान्तिस्वरूप डाटा पुन कांग्रेस मे आ गये हैं।

आरोह—मगर बिखराव

अलवर जिला की राजनीति में कांग्रेस की शक्ति निरन्तर कम होती जा रही है, मगर विरोधी दलों की स्थिति भी कुछ अच्छी नही है। मत्स्य संघ बनने के समय अलवर में प्रमुख विरोधी दल थे हिन्दू महासभा और समाजवादी दल। हिन्दू महासभा पुरानी राजशाही द्वारा समर्थित संस्था थी अतः जनता में उसकी बहुत प्रतिष्ठा नही थी। १९५० ई० के पहले नगरपालिका चुनाव में ही यह स्पष्ट हो गया और फिर १९५२ ई० के चुनाव ने भी इसकी पुष्टि की। पहले चुनाव में हिन्दू महासभा ने दो स्थानो पर और रामराज्य परिषद् ने चार स्थानों पर चुनाव लड़ा और सब जगह पराजित हुये। १९५७ ई० मे हिन्दू महासभा के प्रसिद्ध नेता श्री गिरधर शर्मा सिद्ध अलवर क्षेत्र मे अपनी जमानत भी नहीं बचा सके। इसके बाद हिन्दू महासभा का राजनैतिक अस्तित्व अलवर जिला मे समाप्त हो गया।

समाजवादी दल की स्थापना १९४९ ई० मे श्री राममनोहर लोहिया द्वारा हुई। आरम्भ में कांग्रेस और प्रजामण्डल के अनेक पुराने नेता सजाजवादी दल में शामिल हुए जैसे श्री नत्थूराम मोदी, श्री कुंजबिहारीलाल मोदी, श्री इन्द्रसिंह आजाद और पं० विशम्भरदयाल शर्मा। समाजवादी दल ने अपना कार्य नीमराणा से शुरू किया। उन्होंने नीमराणा राज्य को अलवर जिला में मिलाने के लिये आनन्दोलन किया। इसके बाद समाजवादी दल ने बहरोड़ में लेवी वसूली के विरुद्ध आन्दोलन किया जिसमें सभी प्रमुख नेताओं ने जेलयात्रा की। मत्स्य सरकार के दिनों में समाजवादी दल ने झारखेड़ा, बुर्जा, दादर, किशनगढ बास आदि अनेक स्थानों पर किसानो को जमीन दिलाने का आन्दोलन सफलता पूर्वक किया। अलवर शहर मे समाजवादी दल ने तांगा स्टैण्ड बनाने के लिये और होप-सर्कस से स्टाल हटाने के लिये आन्दोलन किया। मगर समाजवादी दल का उत्कर्ष बहुत अल्पकालीन रहा। १९५० ई० के नगरपालिका चुनाव में समाजवादी दल का सिर्फ एक उम्मीदवार सफल हुआ। १९५२ ई० में आम चुनाव में समाजवादी दल ने चार स्थानों पर चुनाव लड़ा मगर एक भी स्थान पर सफल नही हो सके और उन्हे केवल ३·६ प्रतिशत मत मिले। अलवर शहर में उनके उम्मीदवार को सबसे कम मत मिले।

बहरोड़ समाजवादी दल का सबसे मजबूत कार्यक्षेत्र रहा है और स्व० पं० विशम्भरदयाल वहाँ के मान्य नेता रहे हैं, किन्तु वे १९५७ ई० में पराजित हुए और १९६२ ई० मे भी। १९६२ ई० के बाद कुछ नये कार्यकर्त्ताओं ने समाजवादी दल को फिर से सुसंगठित करने का प्रयत्न किया मगर वह प्रयत्न सफल नही हुआ। १९६६ ई० के नगरपालिका चुनाव में समाजवादी दल का एक भी उम्मीदवार सफल नहीं हो सका और हार से क्षुब्द होकर अनेक कार्यकर्त्ता वामपन्थी साम्यवादी दल में चले गये।

१९६७ ई० के चुनाव के समय समाजवादी दल फिर प्रबल रूप में दिखाई दिया। संसद सदस्य श्री काशीराम गुप्ता समाजवादी दल में शामिल हुए। समाजवादी दल ने इसके अतिरिक्त अन्य चार विधानसभा क्षेत्रो में भी चुनाव लड़ा और बहरोड़ में पहली बार सफलता प्राप्त की।

किन्तु बाद मे सफल उम्मीदवार कांग्रेस मे शामिल हो गया। पराजित होने के बाद श्री काशीराम गुप्ता समाजवादी दल के प्रति उदासीन हो गये है। १९६८ मे फिर से समाजवादी दल को सुगठित करने के प्रयत्न हुए हैं और अनेक नौजवान कायकर्त्ता समाजवादी दल के सदस्य बने हैं, किन्तु समाजवादी दल अभी तक अलवर की राजनीति का प्रभावशाली तत्व नहीं बन सका है।

अलवर की राजनीति मे १९५४ ई० के बाद प्रमुख विरोधी दल का कार्य साम्यवादी दल करता आ रहा है। साम्यवादी विचारधारा का प्रचार अलवर जिला मे १९४७ ई० से पूर्व ही आरम्भ हो गया था और आरम्भ मे श्री रामजीलाल अग्रवाल साम्यवादी-विचारधारा के समर्थकों के केन्द्रबिन्दु थे। १ मई १९५१ ई० को अलवर मे साम्यवादी दल की विधिवत स्थापना हुई और *श्री ऐशीलाल विद्यार्थी उसके प्रथम मंत्री बने, इसके पहले साम्यवादी कायकर्त्ता जनवादी* युवक सघ बनाकर काम करते थे। प्रथम चुनाव से पहले साम्यवादी दल मे दो पुराने काग्रेस-नेता सम्मिलित हुए श्री कृपादयाल माथुर और श्री फूलचन्द गोठडिया। श्री फूलचन्द गोठडिया ने रामगढ क्षेत्र से विधानसभा का चुनाव भी लडा मगर सफल नही हो सके।

साम्यवादी दल की उन्नति का आरम्भ पहले आम चुनाव के बाद हुआ। चुनाव के शीघ्र बाद श्री रामानन्द अग्रवाल और श्री नारायणदत्त कांग्रेस छोडकर साम्यवादी दल मे आये। श्री रामानन्द अग्रवाल अलवर के बडे कर्मठ कायकर्त्ता है, उन्होने साम्यवादी दल मे आने के बाद बहुत कमठता से कार्य आरम्भ किया। अलवर साम्यवादी दल के दूसरे श्रेष्ठ कायकर्त्ता श्री हारूमल तोलानी है, वे पहले चुनाव के समय ही साम्यवादी दल मे आ गये थे। १९५२ ई० मे साम्यवादी दल की पहल पर भ्रष्टाचार विरोधी मोर्चा बना किन्तु थोडे समय बाद यह असफल हो गया। १९५३ ई० के आरम्भ मे साम्यवादी दल के नेतृत्व मे सवाई जमा के विरुद्ध आन्दोलन हुआ और प्रदशन करते समय श्री रामानन्द अग्रवाल पुलिस की लाठियो से घायल हुए। इस आन्दोलन के फलस्वरूप नौ नेताओ पर १० साल से भी अधिक समय मुकदमा चला। इस आन्दोलन की सफलता ८ वष बाद देखने को मिली जब सरकार ने मई १९६१ ई० मे सवाई जमा का तीन करोड रुपया छोड दिया।

१९५४ ई० के नगरपालिका चुनाव मे साम्यवादी दल की पहल पर विरोधी दलों का एक सयुक्त मार्चा स्थापित हुआ जिसने कांग्रेस को नगर पालिका चुनाव मे पराजित किया। उस समय शहर मे काग्रेस विराध का वातावरण इतना तीव्र था कि काग्रेस के वरिष्ठ नेता और नगरपालिका के अध्यक्ष श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता एक हरिजन कर्मचारी नेता श्री पाँचाराम से पराजित हो गये। आज श्री पाँचाराम अलवर शहर साम्यवादी दल के मत्री हैं। १९५४ ई० मे अलवर शहर मे साम्यवादी दल ने बेदखली विरोधी आन्दोलन चलाया और किसानो की बेदखली के विरोध मे श्री रामान्द अग्रवाल ने ११ दिन का अनशन किया। आन्दोलन समाप्त होने के बाद सरकार ने बेदखल किये किसानो को शहर के पास ही दूसरी जमीन दी। १९५६

ई० में साम्यवादी दल के नेतृत्व में मोटर-ड्राइवरों ने आन्दोलन लड़ा। १९५७ ई० के विद्यार्थी आन्दोलन में भी साम्यवादी दल के कार्यकर्त्ता बड़ी संख्या में जेल गये।

१९५७ ई० के दूसरे चुनाव में साम्यवादी दल यद्यपि किसी क्षेत्र में विजय प्राप्त नहीं कर सका किन्तु फिर भी उसे अच्छी सफलता मिली। इस चुनाव में साम्यवादी दल ने पहली बार संसद-क्षेत्र के लिये चुनाव लड़ा और उसके उम्मीदवार श्री कृपादयाल माथुर ३८,००० मतों से पराजित हुए। विधानसभा के लिये साम्यवादी दल ने चार स्थानों पर चुनाव लड़ा और सम्पूर्ण जिले के वैधमतों के १६·६ प्रतिशत मत प्राप्त किये। अलवर और रामगढ़ में उसके उम्मीदवार एक हजार से थोड़े अधिक मतों से पराजित हुए।

१९५७ ई० के नगरपालिका चुनाव में साम्यवादी दल के नेतृत्व में नागरिक दल की स्थापना हुई जिसने चुनाव में भारी सफलता प्राप्त की। १९५८ ई० में साम्यवादी दल ने किशनगढ़ में वेदखली विरोधी आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन में लगभग ३५० व्यक्ति जेल गये और जेल के भीतर भी सत्याग्रहियो ने आन्दोलन चलाया। यह आन्दोलन दो महीने तक चला।

१९६२ ई० के आम चुनाव में साम्यवादी दल ने पहली बार विजय प्राप्त की। अलवर में श्री रामानन्द अग्रवाल ने श्री छोटूसिंह को पराजित किया और वनमंत्री श्री सम्पतराम तिजारा में श्री हरिराम चौहान के द्वारा पराजित हुए। इसके अतिरिक्त साम्यवादी दल द्वारा समर्थित निर्दलीय उम्मीदवार श्री नत्थीसिंह ने श्री भोलानाथ को पराजित करने में भी सफलता पाई। रामगढ क्षेत्र में साम्यवादी-उम्मीदवार श्री हारूमल केवल पांच सौ मतों से पराजित हुए। संसद-क्षेत्र में श्री काशीराम गुप्ता की विजय में साम्यवादी दल ने प्रमुख हिस्सा लिया। इस चुनाव में साम्यवादी दल ने जिले के दस विधानसभा क्षेत्रों में से चार में चुनाव लड़ा और दो स्थानों पर सफलता प्राप्त की। उन्हे सम्पूर्ण जिले के १८·४ प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

१९६२-१९६७ ई० के बीच साम्यवादी दल उतना सक्रिय नही रहा। इस बीच अखिल भारतीय प्रवृत्तियों के अनुसार अलवर जिला में भी साम्यवादी दल का विभाजन हो गया। वामपन्थी साम्यवादी दल के नेता बने श्री कृपादयाल माथुर और श्री हरिराम चौहान। बाद में श्री कृपादयाल माथुर वामपन्थी साम्यवादी दल से त्यागपत्र देकर सम्पूर्ण राजनैतिक कार्यो से अलग हो गये। आजकल वामपन्थी साम्यवादी दल के जिला मंत्री श्री हरिराम चौहान हैं। अलवर जिला में वामपन्थी दल की तुलना में दक्षिण पंथी साम्यवादी दल अधिक प्रवल है और विभाजन पूर्व साम्यवादी दल के अधिकांश सदस्य दक्षिण साम्यवादी दल के साथ हैं। वामपन्थी साम्यवादी दल ने किसानो के बीच अपना कार्य बढ़ाने का प्रयत्न किया है। शहर में दल के कार्यकर्त्ताओ ने लकड़हारो के बीच विशेष रूप से कार्य किया है। १९६६ ई० के बाद वामपन्थी दल को समाजवादी दल से भी कुछ कार्यकर्त्ता प्राप्त हुए हैं।

तीसरे और चौथे आमचुनाव के बीच साम्यवादी दल के नेतृत्व में फरवरी १९६४ ई० में एक जिला राजनैतिक-सम्मेलन किया गया। इसमें समाजवादी कार्यकर्त्ता और निर्दलीय

कार्यकर्ता भी सम्मिलित थे। इस सम्मेलन मे अलवर जिला की सभी समस्याओ पर विचार किया गया और बिजली की अच्छी व्यवस्था, जक्शन बनाने, उद्योग-बस्ती स्थापित करने, एम० ए० तथा कानून-कक्षा खोलने के विषय मे प्रस्ताव पास किये गये। मगर सम्मेलन की भावना कुछ दिनो बाद समाप्त हो गई और प्रस्तावो को व्यावहारिक रूप देने के लिये कोई अमली कदम नही उठाया गया। इसी वर्ष जुलाई मे साम्यवादी दल ने अलवर शहर मे मँहगाई-विरोधी आन्दोलन किया जिसमे ३००-४०० व्यक्ति गिरफ्तार हुए। दो वष बाद जुलाई १९६६ ई० मे लक्ष्मणगढ तहसील मे रूँध तोडो आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन की मुख्य मांग थी कि रूँध (जगल) तोडकर उसकी जमीन भूमिहीन किसानो मे वितरित की जाये। इसी वष वामपन्थी साम्यवादी दल ने अलग से रूँध तोडो आन्दोलन किया।

१९६७ ई० के आम चुनाव मे दोनो साम्यवादी दलो ने अलग अलग भाग लिया। खैरथल का क्षेत्र इस चुनाव मे दोनो दलो के बीच विवाद का मुख्य कारण था और इस विवाद के कारण सम्पूर्ण राजस्थान मे दोनो दलो के बीच समझौता टूट गया। अन्त मे दोनो साम्यवादी दलो ने खैरथल मे चुनाव लडा और दोनो पराजित हुए। वामपन्थी दल के नेता श्री हरिराम चौहान जमानत भी नही बचा सके। इस चुनाव मे वामपन्थी दल ने दो क्षेत्रो मे चुनाव लडा और दोनो ही स्थानो पर उनकी जमानत जब्त हुई। उन्हे सम्पूर्ण जिले मे २.४ प्रतिशत मत मिले। दक्षिण साम्यवादी दल ने इस चुनाव मे चार स्थानो पर चुनाव लडा मगर केवल अलवर मे ही सफलता प्राप्त कर सके। अलवर मे श्री रामानन्द अग्रवाल ने अपने विरोधी ११ उम्मीदवारो को हराया जिनमे ९ उम्मीदवारो की जमानत जब्त हुई। दक्षिण-साम्यवादी दल को इस चुनाव मे सम्पूर्ण जिले के ६.१ प्रतिशत मत प्राप्त हुए जो तीसरे चुनाव की तुलना मे आधे हैं।

आम चुनाव के बाद दोनो साम्यवादी दलो ने किसानो की समस्याओ पर विशेष ध्यान दिया है। दक्षिण-साम्यवादी दल के नेतृत्व मे अलवर के किसान दो बार जयपुर मे प्रदर्शन कर चुके है और एक बार वामपन्थी साम्यवादी दल के नेतृत्व मे। दक्षिण साम्यवादी दल ने जून १९६८ ई० मे अलवर शहर मे किसानो की मागो के लिये सत्याग्रह किया जिसमे लगभग चार सौ व्यक्ति गिरफ्तार हुए। अलवर शहर की समस्याओ को लेकर साम्यवादी दल ने पिछले कई वर्षों से कोई बडा आन्दोलन नही किया है।

राजस्थान मे अलवर का साम्यवादी दल सबसे प्रबल माना जाता है। वर्तमान मे राजस्थान साम्यवादी दल के महामन्त्री और राजस्थान किसानसभा के अध्यक्ष अलवर साम्यवादी दल के कार्यकर्त्ता ही हैं। अलवर के अनेक साम्यवादी कार्यकर्त्ता राज्य समिति के सदस्य भी हैं किन्तु अलवर जिले मे साम्यवादी दल का विस्तार अब भी तीन चार तहसीलो तक ही सीमित है। अलवर शहर में किसान और मजदूरों में साम्यवादी दल का विशेष नाम है और अब हरिजनो में भी उसका काम बढ रहा है। देहाती क्षेत्रो में पुरुषार्थी किसानों में साम्यवादी दल का प्रभाव सबसे अधिक है और अब स्थानीय किसानो में भी उसका प्रभाव बढने लगा है। साम्यवादी दल का मुख्य कार्यक्षेत्र रामगढ, लक्ष्मणगढ, गोविन्दगढ क्षेत्र हैं। तिजारा, किशनगढ

और मुँडावर क्षेत्र में भी उसका प्रभाव है मगर जिले के अन्य भागों में उसका प्रभाव नगण्य है।

जनसंघ का आरम्भ, अलवर में, १९५३ ई० मे कुछ व्यक्तियों की विचारगोष्ठी के रूप में हुआ। १९५७ ई० के नगर-पालिका चुनाव मे जनसंघ के एक कार्यकर्त्ता ने सफलता प्राप्त की। १९५७ ई० के आम चुनाव में जनसंघ ने हिन्दू-महासभा के उम्मीदवार का समर्थन किया। १९६० ई० में अलवर में राजस्थान प्रदेश जनसंघ का अधिवेशन हुआ। १९६२ ई० तक जन-संघ ने अलवर शहर से आगे बढकर राजगढ, खैरथल और वहरोड़ में भी शाखा-कार्यालय स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। १९६२ ई० मे कठूमर के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री गंगासहाय ने जनसंघ के चुनाव निशान पर चुनाव लड़ा मगर सफल नही हो सके। बाद में श्री गंगासहाय जनसघ मे शामिल हो गये और कठूमर-खेरली मे जनसंघ के प्रभाव को बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील हुए। १९६४ ई० में जनसंघ आरम्भ में मँहगाई-विरोधी आन्दोलन मे शामिल हुआ मगर फिर अलग हो गया। १९६५ ई० में जनसंघ ने जनाना अस्पताल को पुरानी इमारत मे ही रखने का आन्दोलन चलाया। १९६६ ई० के नगरपालिका चुनाव में जनसंघ के दो सदस्य चुनाव में सफल हुए। १९६७ ई० के चुनाव में जनसंघ भारी तैयारी के साथ शामिल हुआ। जनसंघ का सबसे अधिक प्रयत्न अलवर-क्षेत्र मे विजय पाने का था किन्तु उनके उम्मीदवार को तीसरा स्थान मिला। बानसूर में भी उनके उम्मीदवार को तीसरा स्थान मिला मगर कठूमर में श्री गंगा-सहाय ने इस बार सफलता प्राप्त की। जनसंघ को इस चुनाव में ८·७ प्रतिशत मत प्राप्त हुए। चुनाव के बाद अनेक वकील जनसंघ में शामिल हुए है। अलवर जिला में जनसंघ अभी तक शहर और कस्बों तक सीमित है, देहाती क्षेत्र में जनसंघ का प्रभाव शून्य है।

स्वतंत्र-पार्टी ने १९६२ ई० के आम चुनाव के साथ अलवर की राजनीति में प्रवेश किया। १९६२ ई० के आम चुनाव में स्वतंत्र पार्टी की ओर से तीन उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ा और उन्हें कुल १·७ प्रतिशत मत प्राप्त हुए। १९६७ ई० मे स्वतंत्र पार्टी ने अलवर जिला में मुख्य विरोधी दल बनने का प्रयत्न किया। इस चुनाव मे संसद-क्षेत्र के अतिरिक्त स्वतंत्र पार्टी ने सात विधानसभा क्षेत्रों में भी चुनाव लडा। संसद-क्षेत्र के चुनाव मे स्वतंत्र-पार्टी के उम्मीद-वार को तीसरा स्थान प्राप्त हुआ और विधानसभा क्षेत्रों के सात उम्मीदवारों मे से चार उम्मीद-वारों की जमानत जब्त हुई। राजगढ़ क्षेत्र मे उसके उम्मीदवार ने सफलता प्राप्त की मगर चुनाव के बाद सफल उम्मीदवार कांग्रेस मे शामिल हो गया।

चौथे आम चुनाव के अवसर पर राजस्थान के अन्य जिलों के समान अलवर जिले मे भी जनता पार्टी का निर्माण हुआ। अलवर में इसका नेतृत्व कांग्रेस के वरिष्ठ नेता श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता ने किया। श्री गुप्ता ने बानसूर क्षेत्र से चुनाव मे भी सफलता प्राप्त की। चुनाव के बाद इस दल का कोई कार्य जनता के सामने नही आया है।

अलवर जिला मे सक्रिय विरोधी दलों के रूप मे साम्यवादी दल और जनसंघ का नाम लिया जा सकता है। जनसंघ की सक्रियता सभा और जुलूसों तक सीमित है। दक्षिण-

साम्यवादी दल अलवर का प्रमुख विरोधी दल है और वह बड़े आन्दोलन चलाने में समर्थ है, किन्तु वह इस स्थिति में नहीं है कि अकेला कांग्रेस को चुनौती दे सके। अलवर के विरोधी दल मिलकर कांग्रेस को पराजित कर सकते हैं, कर देते हैं पर उनकी एकता अस्थाई, बहुधा चुनाव तक ही रहती है, उनके बीच एकता के सूत्र कम हैं, बिखराव के ज्यादा हैं।

गाथा एक शताब्दी की

अलवर क्षेत्र मे स्वायत्त शासन की एक शताब्दी खामोशी मे पूरी होने वाली है। स्वायत्त-शासन का अर्थ है किसी गांव, कस्बे या शहर को अपने घरेलू मामलों को खुद तय करने का अवसर देना, घरेलू मामलो मे बाहरी सत्ता पर निर्भरता का अभाव, अपने विकास के लिये खुद प्रयत्न करना। अलवर के निवासियो को ऐसा अवसर पहले-पहल महाराजा शिवदानसिंह के शासन काल मे मिला। १८७१ ई० म प० रूपनारायण की अध्यक्षता म अलवर मे पहली नगरपालिका कायम की गई और नगरपालिका की आमदनी के लिये नगर की आमदनी पर फी रुपया दो पाई (एक रुपए म १९२ पाई होती थी) महसूल लगाया गया। इससे नगर-पालिका को ८०००) प्रतिवर्ष की आमदनी होने लगी और नगरपालिका सफाई, रोशनी तथा पुलिस का खर्चा करने लगी। नगरपालिका ने शादी तथा मृत्यु भोजो के खर्च को सीमित करने का प्रयत्न किया। स्वामी शूनरमन और मोतीलाल ने इस काय मे विशेष दिलचस्पी ली।

१८७३-७४ मे आमदनी के स्थान पर व्यापार पर महसूल लगाया गया और नगरपालिका ने २२ हजार रुपये का ठेका दिया। इस वर्ष राजगढ और तिजारा मे भी नगर कमेटियाँ बनाई गई। १८७४-७५ ई० मे नगरपालिका ने रोशनी के प्रबन्ध के लिये अलवर के बाजार और गलियो मे लालटेन लगवाई जो मिट्टी के तेल से जलती थी। अब बिजली की रोशनी के सामने वे हार मानकर काल के गाल मे लुप्त हो गई हैं मगर द्वितीय महायुद्ध तक वे ही शहर के बाजार-गलियो को रात्रि के आदिम अन्धकार मे उजागर रखती थी। १८७६-७७ मे अलवर नगरपालिका की आय १८,५००), तिजारा की आय १०,०००) और राजगढ की आय ५५००) थी।

१९१९-२० ई० का वर्ष अलवर मे स्वायत्त-शासन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण वर्ष है। इस वर्ष महाराजा जयसिंह ने अलवर राज्य के सभी कस्बा मे टाउन कमेटियाँ स्थापित की। ये कमेटिया अलवर नगरपालिका के आधीन थी और इनका कार्य सरकार द्वारा नामजद सदस्य चलाते थे। इन टाउन कमेटियों का काम था—सफाई और रोशनी का प्रबन्ध और जनता के आपसी झगडो को निबटाना। गाँवो मे नामजद पचायतें बनाई गई जो छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी मामलो का निबटारा करने लगी। आरम्भ मे पचायतों ने बडा अच्छा कार्य किया मगर फिर वे ज्यादा जुर्माना करने के कारण बदनाम हो गई और कष्ट का कारण बनने लगी। १९३४ ई० मे महाराजा जयसिंह के देश निष्कासन के बाद तत्कालीन प्रधानमत्री श्री बायली ने पचायत और टाउन कमेटियों को समाप्त कर दिया। अलवर, राजगढ और तिजारा की नगरपालिकायें अपने पुराने रूप मे चलती रही।

१६३६ ई० में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री हार्वे ने अलवर नगरपालिका में निर्वाचित सदस्यों के बहुमत की स्थापना की। उस वर्ष से अलवर नगरपालिका में २० सदस्य निर्वाचित और ४ सदस्य नामजद होने लगे। मतदाता सूची का भी विस्तार किया गया और उप-सभापति का निर्वाचन भी होने लगा। पहले चुनाव में हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर प्रोग्रेसिव पार्टी बनाई और चुनाव में स्वतंत्रदल को पराजित किया। श्री लक्ष्मण त्रिपाठी जो उस समय अलवर कांग्रेस के अध्यक्ष थे, पहले निर्वाचित उप-सभापति बने। १६४४ ई० में राजगढ़ और तिजारा में भी चुनाव की प्रथा आरम्भ की गई और वहां भी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होने लगा।

अगस्त १६४५ ई० में अलवर नगरपालिका में निर्वाचित अध्यक्ष होने की घोषणा राज्य सरकार की ओर से की गई और श्री काशीराम गुप्ता पहले अध्यक्ष निर्वाचित हुए। राज्य सरकार से मतभेद हो जाने पर उन्होंने इस्तीफा दे दिया तो कुछ समय के लिये श्री पृथ्वीनाथ भार्गव अध्यक्ष रहे। सितम्बर १६४६ ई० में नगरपालिका के सभी कांग्रेसी सदस्यों ने 'गैर जिम्मेदार मंत्रियों कुर्सी छोड़ो' आन्दोलन के समर्थन में इस्तीफा दे दिया। बाद में नगरपालिका के नये निर्वाचन का कांग्रेस ने बहिष्कार किया तो शासन-समर्थक उम्मीदवार निर्विरोध निर्वाचित हो गये और श्री योगेशचन्द्र कटोरीवाला नगरपालिका के अध्यक्ष बने।

मत्स्य-संघ स्थापित होने के बाद मत्स्य-शासन ने इस नगरपालिका को भंग कर दिया और पाँच नामज़द सदस्यों की एक समिति स्थापित की। इसके अध्यक्ष श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता थे और अन्य सदस्य थे—श्री नारायण दत्त, श्री जयनारायण गुप्ता वकील, श्री सूरजभान भार्गव और श्री प्रहलादसिंह वकील। १६५० ई० में अलवर नगरपालिका के लिये पहली बार बालिग मताधिकार के आधार पर चुनाव हुआ और कांग्रेस ने इसमें अच्छी सफलता प्राप्त की। नये निर्वाचन के पश्चात् श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता नगरपालिका के अध्यक्ष बने और उन्होंने शहर में सफाई तथा रोशनी का उत्तम प्रबन्ध करके सबसे प्रशंसा प्राप्त की।

१६५३ ई० में पहलीबार नगरपालिका के विरुद्ध एक बड़े आन्दोलन की तैयारी हुई। आन्दोलन-कर्त्ताओं में व्यापारी वर्ग की प्रधानता थी। उनका कहना था कि अलवर नगर-पालिका की चुंगी की दरें भारतवर्ष में सबसे अधिक हैं और ये दरें उनकी व्यापारिक प्रगति में बहुत बाधक है। मगर आन्दोलन आरम्भ होने से पहले ही नगरपालिका ने चुंगी की दरें ५० प्रतिशत कम कर दी इसलिये आन्दोलन आरम्भ होने से पहले ही समाप्त हो गया।

१६५४ ई० के चुनाव में विरोधी दलों के संयुक्त मोर्चे के सामने कांग्रेस विजय प्राप्त नहीं कर सकी। इस चुनाव में नगरपालिका-अध्यक्ष श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता नगरपालिका के एक हरिजन कर्मचारी श्री पाँचाराम से पराजित हुए। भूतपूर्व उपाध्यक्ष श्री उमादत्त एड्वोकेट ने चुनाव नहीं लड़ा और विरोधी दलों के संयुक्त मोर्चे की मदद की। चुनाव के द्वारा पहली बार शहर के कच्चे वार्डों से निर्वाचित होकर समाजिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के अनेक प्रतिनिधि नगरपालिका में आये और नगरपालिका सच्चे अर्थों में सारे शहर

का प्रतिनिधित्व करने लगी। चुनाव के बाद श्री जयमहेशसिंह सयुक्त मोर्चे के उम्मीदवार के रूप में नगरपालिका के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

मगर कुछ समय बाद सयुक्त मोर्चे मे फूट पड गई और अनेक सदस्य कांग्रेस मे शामिल हो गये। सयुक्त मोर्चे का बहुमत कम हो जाने पर श्री जयमहेशसिंह ने इस्तीफा दे दिया और कांग्रेस की ओर से श्री गोपालनारायण शर्मा नगरपालिका के नये अध्यक्ष निर्वाचित हुए। श्री गोपालनारायण के दिनो मे शहर की छोटी गलियो की सडकें पक्की सीमेंट की बनवाई गई। उनकी अध्यक्षता-काल मे हरिजन कर्मचारियो ने एक भारी हडताल की मगर हडताल असफल रही। कुछ समय बाद श्री गोपालनारायण शर्मा राजकीय सेवा मे सम्मिलित हो गये और राजस्थान सरकार ने निर्वाचित नगरपालिका भग करके श्री मदनलाल भार्गव, एडवोकेट की अध्यक्षता मे पाँच सदस्यो की मनोनीत समिति स्थापित की।

१९५७ ई० के चुनाव मे विरोधी दलो द्वारा सयुक्त रूप मे गठित नागरिक दल ने कांग्रेस के मुकाबले मे भारी सफलता प्राप्त की। कुल २४ स्थानो मे से नागरिक दल को १९ और कांग्रेस को पाँच स्थान मिले। श्री रामचन्द्र उपाध्याय नागरिक दल की ओर से नगरपालिका के अध्यक्ष निर्वाचित हुये। श्री उपाध्याय ने बहुत कमठता से नगरपालिका का कार्य सँभाला और सारे शहर मे प्रशसा प्राप्त की।

दुर्भाग्य से बाद मे नागरिक दल मे फूट पड गई और श्री इन्द्रलाल मित्तल के नेतृत्व मे छ सदस्य नागरिक दल से अलग हो गये। अलग हुए सदस्यो ने कांग्रेस के सहयोग से श्री उपाध्याय के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया मगर प्रस्ताव स्वीकृत नही हो सका। बाद मे श्री उपाध्याय ने स्वय अध्यक्ष-पद से त्याग पत्र दे दिया और उनके स्थान पर श्री इन्द्रलाल मित्तल कांग्रेस के सहयोग से अध्यक्ष निर्वाचित हुये।

१९६१ ई० की गर्मियो मे नगरपालिका का नया चुनाव हुआ और इस चुनाव मे १० वर्ष बाद कांग्रेस ने पुन सफलता प्राप्त की। श्री रामजीलाल आर्य कांग्रेस की ओर नगरपालिका के अध्यक्ष बने। १९६६ ई० के चुनाव मे भी कांग्रेस ने सफलता प्राप्त की और श्री आर्य पुन अध्यक्ष चुने गये, मगर इस बार कांग्रेस दल मे फूट पड गई और एक वर्ष बाद श्री रामजीलाल आर्य ने त्याग-पत्र दे दिया। उनके स्थान पर विरोधी दलो के उम्मीदवार श्री प्रभुदयाल गुप्ता नये अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

वर्तमान मे अलवर नगरपालिका के प्रति शहर मे काफी असन्तोष देखा जाता है। सफाई की दशा बहुत खराब हो गई है। नगरपालिका के कर्मचारी अपने वेतन के लिये बार बार आन्दोलन करते रहते हैं। नगरपालिका की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई है और वह अपने कर्मचारियो को समय पर वेतन भी नही दे पाती है। नगरपालिका की आमदनी का मुख्य स्रोत है—चुगी, मगर चुगी से जो आमदनी होती है वह नगरपालिका के पूरे खर्च को सँभाल नही पाती है। चुगी की दर बढाने पर व्यापारी-वर्ग अप्रसन्न होता है। गृहकर

लगाने का प्रश्न तीन-चार साल से अधर में झूल रहा है। सिद्धान्त: गृहकर लगा दिया गया है मगर वसूली नहीं की जाती है। नगरपालिका शहर की प्रतिनिधि संस्था है फिर भी शहर में जितनी विरक्ति इस संस्था के प्रति देखी जाती है, उतनी विरक्ति शायद ही किसी संस्था के प्रति देखी जाती हो।

विस्तार के आयाम

अलवर में सरकार की ओर से शिक्षा-विस्तार के प्रयत्नों की शतवार्षिकी चुपचाप बीत चुकी है। उस वर्ष अलवर के विद्यार्थी विदेशी सरकार को हटाने के लिए डाकखानों को नष्ट करने की योजना बना रहे थे और तीन विद्यार्थी गिरफ्तार भी हुए थे। सबसे पहले महाराजा विनयसिंह ने १८४२ ई० में अलवर में मदरसा कायम किया जो पहले सागर पर राजा-बख्तावरसिंह की छतरी में चलता था। १८७३ ई० तक, तीस वर्षों तक वह स्कूल वहीं चलता रहा। आज की सरकार भी वहाँ एक स्कूल चला रही है यद्यपि अलवर का वह पहला मदरसा समय के तीव्रगामी प्रवाह में कभी का लुप्त हो चुका है।

महाराजा शिवदानसिंह ने पहलीबार अलवर में शिक्षा-विस्तार की आवश्यकता महसूस की और अपने शासनकाल के आरम्भ में मालगुजारी पर एक प्रतिशत शिक्षा-कर लगाया। उससे सरकार को १७,५००) वार्षिक शिक्षा-कर मिलने लगा। किन्तु १८६५-६६ में शिक्षा-विभाग का खर्चा शिक्षा-कर से अधिक बढ़ गया तब शिक्षा का व्यय एकदम कम किया गया। इतना कम किया गया कि सरकार के खजाने में पाँच हजार पाँच सौ रुपया बचने लगा अर्थात् शिक्षा-विभाग का खर्चा बारह हजार निश्चित कर दिया गया।

मगर थोड़े समय बाद शिक्षा-विभाग का खर्चा फिर बढ़ने लगा और महाराजा शिवदान-सिंह के अधिकारच्युत हो जाने पर पोलिटिकल एजेन्सी के दिनों में शिक्षा-विभाग का खर्चा आमदनी से, सवा गुना हो गया। १८७० ई० तक महाराजा विनयसिंह का मदरसा बढ़कर हाई स्कूल बन चुका था, इसके अलावा १६ तहसीली और ४४ हलकाई स्कूल भी चल रहे थे। १८७१ ई० में अलवर राज्य में २७८५ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे।

जनवरी १८७१ ई० में सरदारों के लिए नोबिल स्कूल या ठाकुर स्कूल खोला गया। आम विद्यार्थी को उसमें प्रवेश नहीं मिलता था, वह केवल उनके लिये थे जिन्हें आगे चलकर सरकारी अफसर, जागीरदार बनना था। १८७२-७३ में हाई स्कूल और ठाकुर स्कूल के लिए कलकत्ता से दो बंगाली प्रधानाध्यापक बुलाये गये पर वे सफल नहीं हो सके और तीन महिने बाद चले गये। बाद में उनकी जगह पंजाब से आये दो अध्यापकों ने सँभाली।

पं० रूपनारायण के प्रयत्नों से १८७२ ई० में पहली बार शहर में दो कन्या-पाठशाला खुली जिनमें ६४ छात्रा शिक्षा पाने लगी। बाद में, १८७४ ई० में पंडितजी के प्रयत्नों से ही कन्या-पाठ-शालाओं की संख्या दो से बढ़कर चार हो गई और राज्य के अन्य कस्बों में भी दस कन्या-पाठ-शाला खुली। शीघ्र ही शहर में शिक्षा पाने वाली छात्राओं की संख्या सौ से आगे बढ़ गई।

१८७४ ई० मे अलवर राज्य मे पहली बार विद्यार्थियो पर शिक्षा-शुल्क लगाया गया। शिक्षा-शुल्क सिर्फ उन्ही विद्यार्थियो से लिया गया जिनके अभिभावक शिक्षा-कर नही देते थे, मगर फिर भी शिक्षा-शुल्क लगाने के बाद विद्यार्थियो की सख्या मे भारी कमी हुई। शिक्षा-शुल्क लगाने के बाद सरकार सारी किताबें देने लगी और विद्यार्थियों की सख्या घटने पर भी स्कूलो की सख्या घटाई नही गई, बल्कि १८७५ ई० मे राज्य मे स्कूलो की सख्या ७६ से बढकर ८६ हो गई।

१८७६ ई० मे अलवर हाई स्कूल के एक छात्र ने कलकत्ता जाकर पहली बार एन्ट्रेंस (हाई स्कूल दसवी कक्षा) की परीक्षा पास की। शिक्षा का व्यय तब तक बढकर ३४२६८) हो गया था। बाद मे यह सख्या ४२ हजार तक पहुँच गई। महाराजा मगलसिंह के जमाने मे स्कूलो की सख्या और व्यय दोनो साथ-साथ बढते रहे। आगरा के मेडिकल कॉलेज मे राजकोष के व्यय से अनेक छात्र डाक्टरी शिक्षा पाने के लिए भेजे गये। महाराजा मगलसिंह ने पजाब विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा मे सस्कृत मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले को प्रति वर्ष *स्वर्णपदक देने की भी घोषणा की।*

महाराजा जयसिंह ने शिक्षा के क्षेत्र मे अनेक परिवर्तन किये। १६१६ ई० मे उन्होंने १८७४ ई० से चले आये शिक्षा-शुल्क को समाप्त किया और फिर से समस्त शिक्षा नि शुल्क की। तत्कालीन अपराधी जातियो (मीना, बावरिया) के बालकों के लिए अनिवार्य शिक्षा की घोषणा की गई। महाराजा जयसिंह ने धार्मिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया। राजगढ के अग्रेजी मिडिल स्कूल को हाई स्कूल किया। सबसे बढकर यह कि उन्होंने १६३० ई० मे अलवर मे पहले कॉलेज की स्थापना की घोषणा की और १६३१ ई० मे राजर्षि इटर कॉलेज हो आरम्भ गया।

राजर्षि कॉलेज इतिहास की दृष्टि मे—

२ अक्टूबर १६३० ई० को महाराजा जयसिंह ने अलवर मे राजर्षि कॉलेज की स्थापना करने की घोषणा की और नवम्बर १६३० ई० मे यह घोषणा सरकारी गजट मे प्रकाशित हुई। महाराज आरम्भ मे ही इसे स्नातकोत्तर कॉलेज बनाना चाहते थे किन्तु आगरा विश्वविद्यालय से अनुमति न मिलने के कारण १६३१ ई० मे राजर्षि इटर कॉलेज ही आरम्भ हुआ। यह वास्तव मे अलवर के पुराने हाई स्कूल का नया रूप था। श्री के० के० नानावती कॉलेज के प्रथम प्रिन्सिपल बने। पहले सत्र मे कॉलेज मे ४६ छात्र थे और प्रिन्सिपल, ५ प्राध्यापक तथा ६ अध्यापक उनको पढाते थे। आरम्भ मे कॉलेज रामकुन्ज (वर्तमान कॉलेज छात्रावास) मे चलता था फिर तीन वर्ष बाद 'विनय विलास' मे लगने लगा। इसका कारण रामकुन्ज मे स्थान की कमी थी। आगरा विश्वविद्यालय के निरीक्षकों ने भी स्थान की कमी पर आपत्ति की थी।

१६३३ ई० में कॉलेज को नया स्थान मिलने के साथ नये प्रिन्सिपल श्री एस० पी० भार्गव भी मिले। लगभग १२ वर्ष तक, १६४५ ई० तक श्री भार्गव कॉलेज के प्रिन्सिपल रहे, केवल

उनकी अनुपस्थिति मे वीच में तीन वर्ष के लिए १९४१ से १९४४ तक श्री ए० जी० पाई कॉलेज के प्रिन्सिपल वने। उनके समय मे कॉलेज के इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाये घटित हुई। १६ अगस्त १९३३ ई० को कॉलेज 'विनय-विलास' मे आया। १९३५ ई० मे कॉलेज पुस्तकालय गोल कोठी मे आया जहाँ वह आज भी चल रहा है। १९३५ ई० में कॉलेज की पत्रिका 'विनय' का प्रथम अक प्रकाशित हुआ। १९३६ ई० से 'विनय' साल मे दो वार प्रकाशित होने लगी। और १९४३ ई० तक अर्धवार्षिक के रूप मे प्रकाशित होती रही। १९४४ ई० मे भी अंक प्रकाशित हुआ मगर फिर पत्रिका के जीवन मे व्यवधान हो गया और पाँच वर्ष वाद पत्रिका को पुनर्प्रकाशन मिल सका। १९४९ के वाद पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। १९४३ ई० मे विज्ञान की इन्टर कक्षाये आरम्भ हुई और १९४५ ई० मे राजर्षि इन्टर कॉलेज डिग्री कॉलेज वना।

१९४४ ई० मे कुछ समय के लिए श्री वी० वी० गोयल कॉलेज के अस्थाई प्रिन्सिपल वने फिर श्री भार्गव के जाने के वाद १९४६ ई० मे श्री जयपालसिंह कॉलेज के प्रिन्सिपल वने। इसी वर्ष कॉलेज का पूर्वी ब्लाक वना। इसे वनाने का निर्णय १९४२ ई० मे किया गया था मगर युद्ध के कारण निर्माण में देर हुई। अगले वर्ष कॉलेज मे एम० ए० कक्षा और कानून की कक्षाये आरम्भ हुई। इसी वर्ष विज्ञान की स्नातक कक्षाये भी आरम्भ हुई। १९४८ ई० में विनय-विलास के दोनों ओर विज्ञान-थियेटरो का निर्माण हुआ। दुर्भाग्य से १९४८ ई० मे एक वर्ष वाद ही एम० ए० कक्षाये समाप्त हो गई और कॉलेज को फिर से एम० ए० कक्षा प्राप्त करने के लिए २० वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। १९४९ ई० मे कानून की कक्षायें भी समाप्त हो गई जो अभी तक फिर से आरम्भ नही हो पाई हैं।

१९४८ ई० में श्री वी० वी० गोयल राजर्षि कॉलेज के स्थाई प्रिन्सिपल वने और दस वर्ष तक उन्होने इस पद पर काम किया। उनके समय में कॉलेज में सहशिक्षा आरम्भ हुई। १९४९ में पहली वार कॉलेज मे ५ छात्राओं ने प्रवेश लिया। १९५३ ई० मे विज्ञान के अन्तर्गत जीव-विज्ञान की शिक्षा आरम्भ हुई। १९५५ ई० मे पश्चिमी ब्लाक का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। १९५४-५५ के सत्र में कॉलेज के विद्यार्थियो की संख्या एक हजार से अधिक हुई। इसी सत्र मे विज्ञान में पहली छात्रा ने प्रवेश लिया। अक्टूबर १९५५ ई० में कॉलेज में रजत-जयन्ती मनाई गई जिसमे अनेक उत्तम आयोजन हुए। उस अवसर पर दो अखिल भारतीय प्रतियोगिताएँ आरम्भ की गई, अखिल भारतीय वाद-विवाद प्रतियोगिता और अखिल भारतीय हॉकी टूर्नामेंट। १९५५ ई० में, २५ वर्ष वाद कॉलेज की छात्र-संख्या ४५ से वढ़कर १२०१ हो चुकी थी और कॉलेज में ३० प्राध्यापक तथा ६ स्नातक अध्यक्ष अध्यापन-कार्य कर रहे थे।

१९५८ ई० में श्री रामपाल सॉवल कॉलेज के प्रिन्सिपल वने। उनके समय में कॉलेज में समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र और भूगोल की शिक्षा आरम्भ हुई। कॉलेज में जन्तु-शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र और रसायनशास्त्र के अलग भवन वने। छात्राओं के लिए एक अलग से भवन वना मगर स्थानाभाव के कारण वह अध्ययनकक्षों मे ही शामिल कर दिया गया।

कॉलेज के चायघर के लिए भी अलग भवन बना, और छात्रो के लिए वाचनालय कक्ष भी, वह आज प्राध्यापक कक्ष बन गया है। खेल कूद के मैदान के चारो ओर उन्होने पक्का अहाता खिचवाया और कॉलेज टैंक के आगे एक तिकाना उपवन भी लगवाया।

१९६२ ई० मे श्री पुरुषोत्तम सिंहा कॉलेज के प्रिंसिपल बने। उनके समय मे १९६८ ई० मे कॉलेज मे पुन स्नातकोत्तर कक्षाये प्रारम्भ करने की घोषणा हुई। इस बार कला (अर्थ-शास्त्र विषय मे) वाणिज्य और विज्ञान (रसायन शास्त्र विषय मे) मे एक साथ स्नातकोत्तर कक्षायें आरम्भ हुई हैं। श्री पुरुषोत्तम सिंहा ने अपने काय काल मे छात्रो के लिए बहुविध सुविधाये प्रदान की जिनमे रात्रि पुस्तकालय उल्लेखनीय है। स्नातकोत्तर कक्षायें खुलने के बाद १९६८ के सत्र से उनके अग्रज श्री बिशन सिन्हा प्रिन्सिपल हो गये हैं। वर्तमान मे राजर्षि कॉलेज राजस्थान के प्रमुख कॉलेजो मे से एक है। अजमेर के राजकीय कालेज के बाद राजस्थान के राजकीय कॉलेजो म सबसे अधिक छात्र इस कालज मे अध्ययन कर रहे हैं। वतमान मे राजर्षि कॉलेज मे छात्र सख्या १७५६ है। प्राध्यापको की सख्या ७१ है इनमे दो स्नातकोत्तर अध्यक्ष भी सम्मिलित है। कॉलेज म कला सकाय के अ तगत १० विषयो मे और विज्ञान-सकाय के अ तगत ५ विषयो मे शिक्षा प्रदान की जाती है। सामान्य स्नातक एव स्नातकोत्तर कक्षाओ के अतिरिक्त कॉलेज मे हि दी राजनीति शास्त्र, भूगाल, इतिहास गणित और रसायन-शास्त्र म आनस कक्षायें भी चलती हैं।

शिक्षा का विस्तार—

१९३० ई० के बाद अलवर राज्य और १९४८ ई० के बाद अलवर जिले मे शिक्षा का तीव्र विस्तार हुआ है। १९३० ई० मे अलवर राज्य मे १ कॉलेज, २ हाई स्कूल ९ मिडिल स्कूल और ८८ प्राईमरी स्कूल थे। १५ वष बाद १९४५ ई० मे यह सख्या बढकर १ कॉलेज, ५ हाई-स्कूल, ३० मिडिल स्कूल, और २०० प्राईमरी स्कूल हो गई। इसके अतिरिक्त स्त्री शिक्षा के अन्तर्गत एक हाई स्कूल, एक अग्रेजी मिडिल स्कूल, दस लाग्नर मिडिल और हि दी मिडिल स्कूल तथा दस प्राईमरी स्कूल भी चल रहे थे। १९६६-६७ के वष मे अलवर जिले मे दो बहुद्देश्यीय उच्चत्तर माध्यमिक स्कूल, १४ उच्चत्तर माध्यमिक स्कूल, ३३ हाई स्कूल ९७ मिडिल स्कूल, ९५७ प्राईमरी स्कूल और ६६ जूनियर बेसिक स्कूल चल रहे थे। इन सब स्कूलो मे शिक्षा पाने वाले छात्रो की सख्या १,३५,२४८ थी और कुल अध्यापको की सख्या ४१०० थी।

माध्यमिक शिक्षा की इन सस्थाओ के अतिरिक्त उच्च शिक्षा के लिए अलवर जिले मे इस समय मे तीन कॉलेज चल रहे हैं—अलवर मे स्नातकोत्तर राजर्षि कॉलेज, छात्राओ के लिए राजकीय गौरीदेवी महिला-कॉलेज और राजगढ मे राजकीय स्नातक कॉलेज। औद्योगिक शिक्षा के लिए १९६० से अलवर मे पॉलीटेक्निक कॉलेज भी चल रहा है। औद्योगिक शिक्षा के लिए एक और सस्था आई० टी० आई० (औद्योगिक शिक्षण सस्था) भी चल रही है। अलवर मे महिला अध्यापिकाओ के लिए एस० टी० सी० स्कूल है और राजगढ मे पुरुष अध्यापको के लिए एस० टी० सी० स्कूल है। इस वष अलवर मे जैन समाज की ओर से बी०

एड० की शिक्षा के लिए भी कॉलेज का आरम्भ हुआ है जिसमें एक सौ वीस अध्यापक शिक्षा प्राप्त कर रहे है। इसके अतिरिक्त अलवर में एक संस्कृत कॉलेज भी काफी दिनों से चल रहा है।

एक दूसरी तस्वीर—

मगर विस्तार के इन आयामों के पीछे एक और कहानी भी है। भारत में औसतन पांच प्राथमिक शालाओं के पीछे एक मिडिल स्कूल चल रहा है किन्तु अलवर जिले में १०२३ प्राथमिक शालाओं के लिए केवल ६७ मिडिल स्कूल हैं। अखिल भारतीय औसत के अनुसार यह संख्या दो सौ पांच होनी चाहिए। माध्यमिक शिक्षा का विस्तार अलवर जिले में खूब हुआ है किन्तु यह विस्तार सारे जिले में एकसा नही है। उमरैन पंचायत समिति क्षेत्र में पांच मिडिल स्कूलों के लिए सिर्फ एक हायर सैकेन्ड्री स्कूल है जबकि रैणी पंचायत समिति क्षेत्र में दो मिडिल स्कूलों के लिए दो हाई स्कूल और एक हायर सैकेन्ड्री स्कूल है। मुण्डावर पंचायत समिति क्षेत्र में ११ मिडिल स्कूलों के लिए ३ हाई स्कूल और एक हायर सैकेन्ड्री स्कूल है जबकि बहरोड़ पंचायत समिति क्षेत्र में पांच मिडिल स्कूलों के लिए ४ हाई स्कूल और दो हायर सैकेन्ड्री स्कूल है। कठूमर पंचायत समिति क्षेत्र मे पांच मिडिल स्कूलों के लिए सिर्फ एक हाई स्कूल है जबकि लक्ष्मणगढ़ पंचायत समिति क्षेत्र में चार मिडिल स्कूलों के लिए तीन हाई स्कूल और एक हायर सैकेन्ड्री स्कूल है।

१९६१ ई० की जनगणना भी एक और कहानी कहती है। अलवर जिला की कुल आबादी १०९००२६ है इसमें केवल ११०६४ व्यक्ति ऐसे है जिन्होने हाई स्कूल या उससे अधिक शिक्षा प्राप्त की है अर्थात् १·०८ प्रतिशत। अलवर जिले में कुल साक्षर व्यक्तियों की संख्या १६६२४३ है अर्थात् सारी संख्या का १५·२५ प्रतिशत। सम्पूर्ण भारत में साक्षरता प्रतिशत २४ है, अलवर जिले में साक्षरता प्रतिशत भारत के औसत साक्षरता प्रतिशत से ९ प्रतिशत कम है। यदि महिला-शिक्षा के आंकड़ों पर अलग से विचार किया जावे तो स्थिति और भी निराशाजनक है। अलवर जिला में ५१३७६२ स्त्रियां हैं इनमें से केवल २५०१५ साक्षर अथवा शिक्षित है और इनमें भी केवल १०६४ स्त्रियों ने हाई स्कूल या उससे अधिक शिक्षा प्राप्त की है।

देहाती इलाकों की कुल आबादी १०१२१३४ है। इनमें ८६९८५१ व्यक्ति पूर्ण निरक्षर है, साक्षर व्यक्तियों की कुल संख्या १३२२८३ है अर्थात् १३·२ प्रतिशत। देहाती इलाकों में स्त्रियों की संख्या ४७३२२३ है, इनमें हाई स्कूल या उससे अधिक शिक्षा पाने वाली स्त्रियों की संख्या केवल २९४ है। कुल साक्षर स्त्रियों की संख्या १५७२९ है अर्थात् ३·३२ प्रतिशत। अलवर जिले में अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों की संख्या १९४०२८ है, १७९६६७ व्यक्ति निरक्षर हैं, साक्षर-शिक्षितों की संख्या केवल १४३६१ है अर्थात् अनुसूचित आबादी का ७·४ प्रतिशत। अनुसूचित जातियों में स्त्री संख्या ९३६७८ है इनमें केवल ४६९ स्त्रियाँ साक्षर-शिक्षित हैं अर्थात् ०·५ प्रतिशत।

राजस्थान का साक्षरता प्रतिशत १५.२१ है, उसकी तुलना में अलवर जिले का साक्षरता प्रतिशत ०४ प्रतिशत अधिक है मगर राजस्थान में ९ जिलो (अजमेर, बीकानेर, कोटा, झूंझूनू, जोधपुर, जयपुर, चूरू, गगानगर, सीकर) के बाद साक्षरता प्रतिशत में अलवर का स्थान है। राजस्थान में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत ५ ८४ है जबकि अलवर में स्त्री-साक्षरता का प्रतिशत ४ ८७ है। उक्त ९ जिलो के अतिरिक्त उदयपुर, नागौर, सिरोही और पाली में भी स्त्री साक्षरता का प्रतिशत अलवर से ऊँचा है।

एक शताब्दी से अधिक का समय बीत गया है और इस बीच शिक्षा का काफी विस्तार हुआ है, मगर आँकडो की कहानी साफ कहती है कि अभी जितना करना बाकी है उसकी तुलना में जो कुछ हुआ है वह बहुत कम है। अलवर शहर के कॉलेज और हाई स्कूल छात्रो की भारी सख्या के नीचे हाँफ रहे हैं, अलवर को एक दूसरे कॉलेज की बहुत आवश्यकता है और एक नये हाई स्कूल की भी। जिले के उत्तरी भाग में शिक्षा का विस्तार अन्य भागो से ज्यादा है, एक कॉलेज की माँग उस क्षेत्र की पुरानी माँग है। राजर्षि कॉलेज में स्नातकोत्तर विषयो का शीघ्र विस्तार भी अपेक्षित है।

आ प्रकृति कितना देती है

वन शब्द की कल्पना से एक विशेष अनुभूति होती है। भय, सिहरन, आनन्द व उल्लास का एक सयुक्त चित्र मस्तिष्क पर उभर आता है। वन हमारे साधनास्थल, अध्ययनकक्ष, साहसिक कार्यो के प्रेरणा स्रोत होने के साथ देश की सम्पदा तथा मर्यादा के द्योतक व रक्षक भी होते हैं। देश की जलवायु पर उनका महत्वपूर्ण प्रभाव होने के कारण, भौगोलिक परिस्थितिया देश के इतिहास की पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। युद्ध मे नष्ट सम्पदा, वैभव व मर्यादा पुन प्राप्त की जा सकती है, परन्तु एक बार नष्ट हुए वन, इतिहास ने पुन नही लौटाये हैं।

अलवर के वन राजस्थान ही नहीं अपितु समस्त भारत के प्रमुख वनो मे गिने जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान से चले यात्री, गर्म रेगिस्तान की धूल भरी आधियो को पार कर जब अलवर के वनो मे प्रवेश करते हैं, तो हरी भरी पहाडियाँ, सुखद समीर, कलकल करते झरने, सघन हरियाली से भरे मैदान आँखो मे शीतलता और हृदय मे उल्लास भर देते हैं।

सरिस्का अभयारण्य—

स्वतन्त्रता से पूर्व अलवर के नरेश वनो व वन प्राणियो का सरक्षण करते थे, परन्तु वैज्ञानिक प्रबन्ध एव विकास की कल्पना न होने के कारण, समय के साथ वन क्षेत्र कम होते गये। अलवर के नरेश शिकार के शौकीन थे, अत वन प्राणियो की कमी होना स्वाभाविक था किन्तु स्वतन्त्रता के बाद कभी 'अधिक अन्न उपजाओ' अभियान और कभी 'खेती का सरक्षण' कार्यक्रम चलाकर वन क्षेत्र व वन प्राणियो का विनाश किया गया है। अगर यही स्थिति चलती रहती तो भावी इतिहास के एक काल मे पश्चिमी पजाब के वनों की भाति इनका भी वर्णन मात्र शेष रह जाता और रेगिस्तान पूर्वी राजस्थान को पार करता हुआ दिल्ली या उत्तरप्रदेश तथा

मध्यप्रदेश की ओर बढ़ता चला जाता। यद्यपि वन-विभाग की स्थापना तथा उसके प्रयास से यह भय कुछ कम अवश्य हुआ है, परन्तु वास्तविक भय अब भी बना हुआ है। सिरस्का अभयारण्य की स्थापना तथा वन-रोपण द्वारा वन व वन-प्राणियों के संरक्षण और पोषण का कार्यक्रम उत्साह वर्धक रहा है, परन्तु जे० जे० स्पिलेट (यू० एस० ए०) के अनुसार "...... इससे पूर्व कि सिरस्का अपनी वन्य-प्राणियों की बड़ी सख्या को, जिसे वह सम्भवतः संहारने में समर्थ है, प्रयास कर प्राप्त कर सके, अनेक समस्याओं का सामना करना और उन्हें जीतना शेष है।" उनके अनुसार पालतू जानवरों के लिए अभयारण्य में चरागाह बनाना, संरक्षण के नियमों के विरुद्ध है, और इससे भूमि का कटाव भी काफी होता है। इसके अतिरिक्त छोटे २ गाँव अभयारण्य मे बसे हुए है। वहाँ के निवासी पशु चराने व लकड़ी काटने का काम करते है। वे फसल भी बोते है और उसकी रक्षा के लिए वन्य जीवों को मारते हैं।

इतना होने पर भी सिरस्का की पहाड़ियो के ढाल सघन वन से ढके हुए हैं। उनके बीच अनेक रमणीक स्थान, झरने, पाण्डूपोल का मन्दिर, पशुविहार, शेर देखने की मीनार आदि पर्यटकों के लिए आकर्षण के केन्द्र बने हुए है और राज्य सरकार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आर्थिक या अन्य प्रकार के लाभ देते है। कुल मिलाकर ८० वर्गमील में फैला हुआ यह वन अनेक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

वन उपज—

अलवर के वनों की मुख्य उपज ईंधन की लकड़ी, कोयला बनाने की लकड़ी, कत्था बनाने की लकड़ी, छाल, बांस, बीड़ी के पत्ते, पत्तल व दोने बनाने के पत्ते, शहद पंखे बनाने के पत्ते, इमारती लकडियां, औषधि देने वाले पौधे आदि के रूप में प्राप्त होती है। ईंधन व कोयला के लिए धौक (Anogeissus pendula) व सालर (Boswellia serrata) की लकड़ियाँ काम आती है। धौक की लकड़ी विश्व में ईंधन के लिये तीसरे स्थान को प्राप्त करती है। खेजड़ा, सिरस, बेरी, ढाक व कीकर की लकड़ियाँ भी ईंधन के लिए उपयुक्त रहती है। कत्था खैर की लकड़ी के मध्य काठ से तैयार किया जाता है। कीकर की लकड़ी से उतरने वाली छाल चमड़ा रंगने के लिए बाहर भेजी जाती है। बांस उद्योग अलवर के हजारों व्यक्तियों की रोजी का साधन है। अलवर जिले की मांग को पूरा करने के अलावा कुछ कच्चा व पक्का बांस का माल बाहर भी भेजा जाता है। आजकल बांस व बेत के बने हुए घर की सजावट के सामान व फर्नीचर बहुत लोकप्रिय होते जा रहे हैं। अतः बांस उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है। बांस उद्योग की कुछ सहकारी समितियां भी स्थापित की जा चुकी है। बीड़ी बनाना भी कुछ परिवारों के लिए कुटीर उद्योग बन गया है। छीला, सालर, कीकर व खैर से विभिन्न प्रकार के गोंद प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग औषधियों, वार्निश, कागजी सामान आदि के बनाने में होता है। औषधियाँ बनाने के लिए मुख्य रूप से आंवला, नागर मोथा, रत्ती या चिरमी, अश्वबंध, अड़ूसा या बांसा, बेलगिरी, मकोय, धतूरा, शतावर (मूसली), अमलतास, लेमुआ, सनाय, गुग्गल, खींप, आकड़ा, अपंग, गोखरू, जंगली-तुलसी आदि पौधे काम आते है। इनके अतिरिक्त अनेक पौधे ऐसे हैं जिनकी आवश्यकता बहुत कम होती है और उनके उपयोग भी अभी प्रमाणित नही हुए हैं।

वन्य पशु-पक्षी—

अलवर की वन सम्पदा मे वन्य पशुओ का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमे से कुछ ऐसे हैं जो इतनी बडी सख्या या झुण्ड मे केवल अलवर के वनो मे ही देखने को मिलते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो विशेष किस्म के हैं। साँभर, नीलगाय, चौसिंगा, चिकारा, जगली सूअर, शेर, चीते आदि यहाँ के कुछ प्रमुख जन्तु हैं। ये अभयारण्य की सडको पर से भी आसानी से देखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त लकडबग्घा, भेडिया, सियार, लोमडी, खरगोश, मृग, जगली बिल्ली, साही, नेउला आदि जीवो की भी कमी नही है। इन सबका शिकार करना सख्त मना है। अपनी शिकार पर आक्रमण करते हुए शेर को दिखाने का विशेष प्रबन्ध है। इन पशुओ को अपने प्राकृतिक वातावरण मे विचरते हुए देखना, दिल्ली से जयपुर जाते हुए विदेशी सैलानियो का प्रमुख आकर्षण है।

वन्य पशुओ की भाति पक्षी भी बडी तादाद मे पाये जाते हैं। इनमे मुख्य मोर, हरियल, तीतर कमेडी, बुलबुल, आरियोल आदि हैं। कुछ विदेशी पक्षी भी शीतकाल मे यहाँ देखे गए हैं।

वन विकास के प्रयास—

अलवर के वनो से होने वाली आय मे मुख्य स्थान लकडी व घास से होने वाली आय का है। वन विभाग से प्राप्त कुछ आकडे इस प्रकार हैं—

वन उपज	प्राप्त आय रुपयो मे				
	१९६४ ६५	१९६५-६६	१९६६ ६७	१९६७-६८	अनुमानित
१ लकडी	१२०००	२४३००	१३३००	५५०००	
२ घास (चराई शुल्क सहित)	३६०००	३६०००	४४०००	४६०००	
३ बास	२४००	६४००	—	१३०००	
४ अन्य (पत्ते, गोद आदि)	१००००	१२०००	२२०००	२५०००	
कुल	६०४००	८१७००		१३९०००	

लकडी काटने का काय योजनाबद्ध है और वन की प्राकृतिक स्थिति को ज्यो का त्यो बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। चराई द्वारा यद्यपि वन व भूमि को नुकसान पहुँचता है, परन्तु वन के विकास कार्यों के लिए आवश्यक धन का एक भाग इस आय से ही मिलता है। अत अभी इसको बिल्कुल बद करना विकास मे बाधक होगा। कोशिश यह की जानी चाहिए कि चराई के लिए वे स्थान चुने जावें जहाँ वन्य-जीव व वन की मुख्य पट्टियाँ न हो या कम हो। विकास कार्य के अन्तर्गत वन विभाग द्वारा कुछ क्षेत्र सुरक्षित (Reserved) घोषित किये गये हैं और अन्य को सरक्षित (Protected) क्षेत्र के रूप मे विकसित किया जा रहा है।

जिन वन क्षेत्रों में लकड़ी काटने या चराई द्वारा अधिक नुकसान हो चुका है, उनमें वृक्षारोपण द्वारा वन विकसित किये जा रहें है। इस विधि द्वारा धौक व बांस के वन क्रमश: १२०० एकड़ व २०० एकड़ में तैयार किये गये है। करीव २००० एकड़ के पुराने वनों को भी विकसित किया गया है।

वनों के विकास को वैज्ञानिक तरीकों द्वारा सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों का, प्रशिक्षण आवश्यक है। सरकार द्वारा सन् १९५४ में एक "वन प्रशिक्षण विद्यालय" खोला गया है। इसमें अव तक ३५० वनपाल (Forester) एवं ३०० वन-रक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

अलवर के वनों से लकड़ियां काटकर करीव ६०० परिवार अपना पेट पालते है। अव उनकी सहकारी समितियां उनके रोजगार की व्यवस्था करती है और उन्हें ठेकेदारों पर निर्भर नही रहना पड़ता है।

अलवर के वनों का ऐतिहासिक महत्व भी कम नही हैं। गढ़ नामक स्थान पर हाल की खुदाई में दसवी शताब्दी के पुराने मन्दिरों के अवशेष मिले है। कांकवाड़ी का खण्डहर हुआ किला किसी समय में औरंगजेव के आतंक से भागे हुए दारा का शरण स्थल रहा था, ऐसा कहा जाता है।

वनों का भविष्य—कुछ वैज्ञानिक दृष्टिकोण—

अलवर के वनों का भारत में महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिमी रेगिस्तान को पूर्व की ओर वढ़ते हुए देखकर इनका महत्व और भी अविक हो जाता है। सेन्ट्रल एरिड जोन रिसर्च द्वारा पश्चिमी राजस्थान में रेगिस्तान को वढ़ने से रोकने के लिए कुछ प्रयास किये गये हैं परन्तु पूर्ण सफलता अभी दूर मालूम पड़ती है। अत: साथ की साथ दक्षिण पूर्वी व पूर्वी राजस्थान के वनों का विकास यदि योजनावद्ध तरीकों से तेजी से किया जाय तो भविष्य के खतरे का आसानी से मुकावला किया जा सकेगा।

पिछले १५ वर्षो की सभी योजनाओं में वन विकास को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है और वन उपज को वढ़ाने के प्रयास किये गये है, इससे प्राकृतिक असंतुलन का भय वनने लगा है। सौभाग्य से हमने इस स्थिति को समझ लिया है और आशा है कि भविष्य अच्छा होगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अलवर उष्णकटिवंधीय ,पतझड़ी वन (Tropical Deciduous Forest) के लिए उपयुक्त है, परन्तु इनके विकास की गति धीमी रहती है। चट्टानों की अधिकता के कारण पानी इकट्ठा होकर नालों के रूप में वहकर जमीन को काटता है और नये पौधों को चट्टानों पर जमने नहीं देता है। मिट्टी में पानी रोकने की कम क्षमता, गर्मी का अधिक तापक्रम तथा अक्टूवर से जून तक का लम्बा सूखा काल (यद्यपि दिसम्वर-जनवरी में कुछ वर्षा हो जाती है लेकिन वह कम व अनियमित है।) नये पौधों को विकसित होने में काफी

हानिकारक सिद्ध होते है। चट्टाने खडी व पथरीली होने के कारण बीजो को जमने मे सहायक नही होती। अरावली की ये शृखलाएँ विभिन्न दिशाओ मे फैली हुई हैं। सूय के प्रकाश व वायु की दिशा के प्रभाव से इन पर विभिन्न प्रकार के पौध समूह पाये जाते है। इन कारणो से कुछ वन क्षेत्र अच्छे वनो मे विकसित नही हो सके है। यदि वैज्ञानिक तरीका द्वारा इन पर विकास कार्य शुरु किया जाय तो सफलता कठिन नही, क्योकि अन्य देशो म कुछ ऐसे ही क्षेत्रो मे सफलतापूर्वक वन विकसित किये गये हैं। फिर क्यो न हम भी अपनी इन निधियो का विकास कर भावी इतिहास का एक पृष्ठ तैयार करें।

धरती के नीचे दबा खजाना

किसी स्थान की खनिज सम्पदा का वर्णन करने का विचार करने पर जमीन से आकाश की ओर ऊँचे उठे उन पहाडो की याद आ जाती है जो हमारी सीमाओं की रक्षा और जलवायु पर नियत्रण तो करते ही हैं, देश के वैभव को भी अपने गभ मे छुपाकर रखते है। राजस्थान का अरावली पहाड पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान को पूव की ओर बढने से रोकता है तथा दक्षिणी पूर्वी राजस्थान के किसान का भाग्य निर्माण करता है और इसके साथ कितने ही बहुमूल्य खनिजो को भी गर्भ मे छुपाकर रखता है। अलवर नगर तथा अलवर जिले क कितने ही गाव कस्बे अरावली की छाया मे बसे हुये है। अलवर के पास अरावली की शृखलाये मुख्य रूप से उत्तर से दक्षिण की ओर फैली हुई है, यद्यपि कुछ पूव से पश्चिम की ओर भी फैली हुई है।

अरावली विश्व का सबसे प्राचीन पहाडो मे से एक है। पृथ्वी की रचना के बाद सबसे पहले बनने वाले पहाडो मे से अरावली प्रमुख है। इन्हे आकतनिक (आरकियन) क्रम मे रखा जाता है। अरावली की प्रमुख चट्टानें करीब ३५०० करोड वर्ष पूर्व बनी होगी। ये आग्नेय, क्वाट्ज अभ्रक, बिदरशिला, ग्रेनाइट, स्लेट या अन्य इसी प्रकार के पदार्थो की बनी हुई हैं। अरावली की आधारभूत चट्टानो पर बाद के अन्य युगो की रूपान्तरित प्रस्तरीभूत चट्टाने भी बन गई हैं, इन्हे धारवाड क्रम मे सम्मिलित करते हैं। क्वार्ट्ज तथा सगमरमर जैसे पदाथ इनके मुख्य अवयव है। धारवाड क्रम आर्थिक दृष्टि से उपयोगी है, इसमे ही औद्योगिक खनिजो के मुख्य भण्डार मिलते हैं। हाल के वर्षों मे अरावली शृखलाओ का विस्तृत सर्वेक्षण हुआ है। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण सस्थान ने इस कार्य के लिये अनेक इकाइयाँ बनाई है जिनका एक दल अलवर के निकट भी सर्वेक्षण कार्य कर रहा है।

अलवर राज्य के प्राचीन खनिज उद्योग—

अलवर राज्य के खनिजो के बारे मे कुछ प्राचीन लेख व उपलब्ध विवरणो से ज्ञात होता है कि अलवर मे कुछ खनिज प्रचुर मात्रा मे पाये जाते रह है। परन्तु उनके उत्पादन व उपयोग पर या तो बहुत अधिक लागत आती थी या उसी प्रकार के विदेशी खनिज देश मे अधिक सस्ते मिल जाते थे अत खनिज उद्योगो का विकास नही हो सका। इसमे सम्भवत कुछ विदेशी चाल व चतुराई भी थी। विदेशी माल का विज्ञापन अधिक था। देशी माल पर नियत्रण

आदि के कारण भी विदेशी माल की मांग बढ़ती थी। देशी माल के उत्पादन के लिए सुविधायें नहीं दी जाती थी और उत्पादन भी अविकसित साधन होने के कारण घटिया किस्म का होता था।

ताँबा उद्योग—

मि० हेकट ने भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग की रिपोर्ट के खण्ड १० (१८७३ ई०) पृष्ठ ६१ में लिखा है कि ताँबा दरीबा जोड़ावास, भानगढ़, कुशालगढ़, बगोनी, प्रतापगढ़ व जैसिंहपुरा में पाया जाता है। इसमें दरीबा के बारे में विशेष विवरण दिया गया है। यह खनिज 'पाइराइट्स' के रूप में 'आरसेनिकल लोह' के साथ मिश्रित अवस्था में मिलता है। मि० केडल ने 'गजेटियर ऑफ अलवर (१८७५) के पृष्ट ८२ पर इस खनिज से ताँबा अलग करने की विधि का उल्लेख किया है। खनिज को गोबर के साथ मिलाकर गर्म किया जाता है और फिर एक बन्द भट्टी में पिघलाया (Smelting) जाता है। फिर कोयले की खुली आग में शोध लिया जाता है। इस कार्य मे प्रति ३० पौण्ड खनिज पर १२० पौण्ड कोयले की आवश्यकता होती है और कुल ५½ पौंड ताँबा मिलता है जो खनिज का केवल १६·६ प्रतिशत होता है। पिछले १२ वर्षों में (उस समय से) प्रतिवर्ष औसत उत्पादन ३ टन ८ क्विंटल हुआ है, परन्तु यह कम होता जा रहा है। राज्य सरकार इस पर ⅓ रॉयल्टी लेती है। करीब ८८ आदमी (३२ परिवार) इस उद्योग में लगे है।

लोहा उद्योग—

मि० हेकट ने बताया है कि भानगढ़ में लोह खनिज निकालने के सुदृढ़ प्रमाण मिले है। उन्होंने कोई सौ गज लम्बी व २०-३० गज चौड़ी, एक खाई देखी जिससे कभी खनिज निकाला गया होगा। मि० केडल के अनुसार राज्य में करीब ३० भट्टियां थी जिनसे १५,००० मन (५३६ टन) लोहा प्रतिवर्ष पैदा होता था। लोहा प्राप्त करने में करीब २० घन्टे पिघलाने (Smelting) में लगते थे और ४४० पौंड खनिज से २००-२८० पौंड का एक पिण्ड प्राप्त होता था। उत्पादन पर १० प्रतिशत रॉयल्टी देनी पड़ती थी। लोहे का भाव ११२) प्रति टन था। अत: करीब ७० आदमियो के एक भट्टी पर काम करने वाले समूह के लिए कोई फायदा नही होता था।

सीसा उद्योग—

जोडावास (इन्दावास) में मि० हेकट ने करीब २०-३० फुट गहरी खाई बतलाई, जिससे खनिज निकालने के प्रमाण मिले। 'गेलेना' नामक खनिज में कर्नल डिकन्स ने १ प्रतिशत चाँदी तथा ८० प्रतिशत सीसा का होना बताया। उन्होने यह भी बताया कि गुढा में भी यह खनिज इधर-उधर फैला हुआ है।

वर्तमान खनिज भंडार—

पहले भारत के खनिज भंडार के मानचित्र में राजस्थान का कोई स्थान नही था परन्तु अब राजस्थान कई प्रान्तों की तुलना में अधिक खनिज देने लगा है। अब राजस्थान में तांबा, सीसा, जस्ता, यूरेनियम, अभ्रक, घीया पत्थर, बेरिलियम, पन्ना आदि खनिजों के अच्छे भंडार

खोज लिये गये है। अलवर के आस-पास व अलवर जिले मे पाये जाने वाले मुख्य खनिज इस प्रकार है।

सफेद सगमरमर (डोलोमाइट अथवा केल्शियम मेगनीशियम कार्बोनेट)—

यह एक प्रकार का चूने का पत्थर कहा जा सकता है परन्तु महगा होने के कारण चूना बनाने की बजाय मकान मे कीमती पत्थर के स्थान पर काम मे लाया जाता है। इसमे मेगनीशियम की मात्रा अधिक होने पर मकान बनाने के उपयोग मे नही ले सकते क्योकि इससे कुछ दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अत इसका मुख्य उपयोग लोहा, सीसा व ताँबा गलाने वाली भट्टियो मे एक "फ्लॅक्स" के रूप में किया जाता है। इसमे चूना ३०४ प्रतिशत व मेग्नीशियम आक्साइड २१७ प्रतिशत प्राप्त होता है। अलवर मे प्रमुख खान टाडीकर, खो, भिरी और बल्देवगढ मे है।

घीया पत्थर (सोपस्टोन अथवा स्टीटाइट)—

यह टॉल्कम पाउडर मकानो मे खूब सूरत नमूने, रेडियो व टेलीविजन के कुछ पुर्जे, पेन्ट, कागज व कपडा बनाने के उपयोग मे आता है। बढिया किस्म के पोरसिलेन व स्टील को जग से बचाने के लिए बढिया पेट अब इससे ही बनने लगे हैं। राजस्थान मे इसके प्रमुख भण्डार हैं। अलवर मे सिरिस्का व कुशालगढ के पास के पहाडो मे पाया जाता है।

बेराइट (बेरियम सल्फेट)—

यह प्रमुख रूप से शिराओ मे चट्टानो के बीच पाया जाता है और अलवर मे पाया जाने वाला मुख्य खनिज है। भारत मे हाल ही के वर्षो मे जो बेराइट का उत्पादन हुआ वह करीब ४०८०० टन है। इसमे से ४००० टन अलवर व भरतपुर के हाथोडी नामक स्थान से प्राप्त हुआ। अलवर के २½ मील दक्षिण मे भालेडा व राजगढ स्टेशन से ७ मील दक्षिण पूर्व मे जामरोली नामक स्थानो पर इसके बडे भण्डार हैं। इसके अतिरिक्त पडीसल स्टेशन से ३½ मील उत्तर पूव मे सैनपुरी स्थान पर करीब ११० फुट लम्बी व १५ फुट मोटी एक शिरा अभी मालूम हुई है।

इसका मुख्य उपयोग सफेद पेन्ट (लिथोफोन) बनाने, लोहा व मेग्नीज गलाने, कागज बनाने व चीनी मिट्टी के बतनो पर चमकदार कलई करने मे होता है। इसके अलावा कपडा, प्रिंटिंग स्याही और ग्रामोफोन रिकार्ड बनाने मे भी यह काम आने लगा है। शीशे का उत्तम किस्म का सामान बनाने मे भी इसका उपयोग होने लगा है। बेराइट को कारबन के साथ मिलाकर एक योगिक "बेल्साइन" बनाया जाता है जिसका औषधि विज्ञान मे अब बहुत महत्त्व है। इससे बेरियम क्लोराइड बनाकर शहरो मे कठोर पानी को बदलकर मृदु पानी बनाया जाता है जो पीने मे उपयुक्त होता है।

इमारती पत्थर—

अलवर में डडीकर में मिलने वाले सफेद संगमर्मर का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त मांढन में स्लेट की खान है। यह सस्ते किस्म के फर्श के चौके बनाने के लिए उपयुक्त है, परन्तु कुछ अवगुण होने से कम समय में ही खराब होने का डर है। अजबगढ़ में अभ्राल क्वार्ट्जाइट पाया जाता है। यह फर्श व छत दोनों के पटाव में उत्तम माना जाता है। राजगढ़ में छत व फर्श के उत्तम किस्म के तरासे हुए पटाव व सेतीर तैयार किये जाते हैं। मोकनपुरा व किरवारी की खान से प्राप्त पटाव मजबूत और सस्ते किस्म का है। केवल खूबसूरती तथा कण में कुछ घटिया होने के कारण इसे कम कीमत प्राप्त होती है, अन्यथा अन्य गुणों में किसी भी अच्छे किस्म के पत्थरों से कम नही है। अलवर के गरीब किसानों, मजदूरों व अन्य वर्गो के मकानों की समस्या हल करने में इन खानों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

हिमेटाइट व मेगनेटाइट (लोहे के खनिज)—

ये लोहे का प्रमुख खनिज है जो अलवर मे जहा-तहां पाया जाता है। आधुनिक युग में लोहे की महत्ता किसी से छुपी नही है। किसी भी देश की सम्पदा में सोने की बहुमूल्यता के बाद लोहे का ही स्थान आता है। ये दोनो खनिज लोहे के आक्साइड है, इन्हें कोक (कोयला) के साथ गलाने पर लोहा प्राप्त हो जाता है। इसलिए लोहे के इन खनिजों की खान के पास कोयला और चूने के पत्थर की खान होना आवश्यक है। इनकी कमी होने से किसी स्थान पर कारखाना लगाना मुश्किल होता है। हाल के वर्षो में लोहे की खोज का कार्य बहुत विस्तार से हुआ है परन्तु अलवर में कोई बड़ा भंडार नही मिल सका है।

मेंग्नीज—

ये खनिज लोहे से एक विशेष प्रकार का स्टील तैयार करने मे काम आते है। ब्लिचिंग पाउडर बनाने, शीशे का सामान बनाने तथा एक आक्सीकारक के रूप में इसके अनेक योगिक काम में लाये जाते है। राजस्थान के बांसवाड़ा व उदयपुर के भंडारों की तुलना में अलवर के भंडार कम माने जाते है। परन्तु सम्भवतः जितना अब तक मालूम हुआ है उससे अधिक मेंग्नीज के भंडार अलवर में मौजूद हैं, क्योंकि यह लोहे के खनिज के साथ एक संयुक्त खनिज के रूप में मिलता है। इनमे १० से ३० प्रतिशत तक मेंग्नीज होता है।

अभ्रक—

अभ्रक भारत का निर्यात किया जाने वाला प्रमुख खनिज है और यह अनेक स्थानों पर पाया जाता है। यह आरकियन चट्टानों का प्रमुख मणिभ माना जाता है। यह घनत्व मे कम, बिजली व ताप का कुचालक, पारदर्शक, अग्नि से सुरक्षित, लचकदार तथा न छिटकने वाला होने से बिजली उद्योग व हवाई जहाज में शीशे के स्थान पर काम में आता है। आयुर्वेदिक औषधि निर्माण में अभ्रक का उपयोग बहुत प्राचीन काल से भारत में होता रहा है। अभ्रक बड़ी व चौड़ी चद्दरों के रूप में अधिक उपयोगी है, परन्तु आजकल छोटे-छोटे टुकड़े भी अधिक

दबाव डालकर (किसी जोडने वाले पदार्थ से) बडी पर्त या चद्दर मे बदले जाने लगे हैं। राजस्थान मे प्रथम महायुद्ध के बाद से ही अभ्रक उद्योग को विकसित करने का कार्य प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि अलवर के भडार अन्य स्थानो (भीलवाडा, उदयपुर, जयपुर, टोंक आदि) की तुलना मे छोटी अभ्रक देते हैं फिर भी स्थानीय व देश की माग को पूरा करने मे महत्त्वपूर्ण रहे हैं। भारत अभ्रक उपजाने मे विश्व मे प्रथम है और विश्व की माग को ८० प्रतिशत पूरा करता है।

अन्य—

उपरोक्त खनिजो के अलावा अलवर मे एस्बेस्टस के कुछ कम प्रमुख भडार हैं। आग और ताप से न प्रभावित होने के कारण मकान व कारखानो की छत की चद्दरें, विशेष प्रकार के रस्से, कागज, अग्निरोधक कपडे और अग्निरोधक तिजोरिया बनाने मे यह उपयोगी है।

हाल के सर्वेक्षण मे फ्लोराइट के खनिज भी मिल है। चूने का फ्लोराइट, लोहे के बतनो पर इनेमल चढाकर जग से बचाने के काम आता है। ऐसे बर्तन साफ करने मे आसान, सस्ते, हल्के, कृमिरोधक व कृमिनाशक माने जाते हैं। अत इनका उपयोग बढता जा रहा है।

मिट्टी के बतन, चुनाई की ईंट, घमन भट्टी की लिपाई की मिट्टी बसवा गेट के पास पाई जाती है जो बहुत उत्तम किस्म की है। चूना बनाने के ककर तो अलवर मे अनेक स्थानो पर बहुतायत से मिलते हैं। हाल ही मे सीसे का खनिज (गैलेना) गुढा किशोरीबाम नामक स्थान पर पाया गया है।

खनिज उद्योग की वर्तमान स्थिति—

अलवर के खनिज उद्योग पर राज्य-सरकार एव भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग का नियन्त्रण है। खानो का पांच वर्ष के लिये 'लीज' पर ठेका छोडा जाता है और ठेकेदार को सरकार द्वारा निर्धारित रायल्टी देनी पडती है। राज्य-सरकार उत्पादन एव निर्यात किये गये खनिज का लेखा-जोखा भी रखती है। १९६० मे सरकार को करीब ४ लाख रुपये रायल्टी के मिले थे। १९६५-६६ ई० मे यह रकम ५ लाख ८ हजार और १९६६-६७ ई० मे ६ लाख ६० हजार थी। मगर १९६७-६८ ई० मे यह रकम घटकर ५ लाख ७ हजार हो गई है।

इस समय अलवर भू क्षेत्र मे ४० मुख्य खनिज खान और १६ लघु खनिज खान चालू है। राजगढ और अलवर तहसील मे वेराबट की २२ मुख्य खान चालू हैं। थानागाजी तहसील के भिरी स्थान मे डोलोमाइट की ३ मेजर खान चल रही हैं। सोप स्टोन की ४ मुख्य खान भिरी और खुशालगढ मे हैं। मुंडावर और ततारपुर मे फेलसपार की दो मुख्य खान चालू है। राजगढ और आनन्दपुरा मे क्लेज की ३ मुख्य खान काम कर रही हैं। सेनपुरी और खोदरीबां की तांबे की खान पर हिंदुस्तान कापर लिमिटेड का नियन्त्रण है। इस खान का उत्पादन ५ लाख टन है जिसमे ०.६ से लेकर १.०० प्रतिशत तक ताबा होता है। टेहला के पास भगोनी की तावे की खान पर भारतीय भू-गर्भ सर्वेक्षण विभाग का नियन्त्रण है। इस खान का उत्पादन १० लाख टन है जिसमे १ से लेकर १.५ प्रतिशत तक ताबा होता है।

सन् १९६७ के खनिज उत्पादन व निर्गम का विवरण इस प्रकार है—

(स्रोत—सहायक खान अभियन्ता अलवर)

नाम खनिज	उत्पादन टन-क्विं.-किलो.	निर्गम टन-क्विं.-किलो.	रायल्टी की दर
१. वेराइट	५७५३-५-५३	५५५१-५-४२	३ रुपये से ५ रुपये प्रति टन।
२. डोलोमाइट	७५०९-३-१०	७११५-५-८०	१ रुपये प्रति टन।
३. सोप स्टोन	१०७८-९-९०	११३८-३-४७	३ रुपये प्रति टन।
४. क्वार्ट्ज	५५३-५-००	४७९-६-२५	०·५० रुपये प्रति टन।
५. फेल्सपार	२९७-७-६८	३२४-०-४५	बिक्री दर का ७ प्रतिशत।
६. स्कूल स्लेट	१३०-०-००	१३०-०-००	बिक्री दर का १० प्रतिशत।
७. चाइनाक्ले	१५३-०-००	११६-२-५०	१·०० रुपये प्रति टन।
८. तांबा	३-५-९०	८-२-९०	बिक्री दर की ७ प्रतिशत।
कुल जोड़	१५४७९-७-११	१४८६४-४-७९	

राज्य सरकार व केन्द्र सरकार की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत अलवर मे भी खनिज उद्योग की प्रगति के उपाय शुरू किये गये है। राजगढ़ तहसील, रामसिंहपुरा में करीब १७००० रुपये से वेराइट का सर्वेक्षण व ड्रिलिंग कार्य पूर्ण हुआ है। माइन्स एण्ड क्वेरी हायर स्कीम में ठेकेदारों को ट्रक, ट्रालियां, कम्प्रेसर आदि उपकरण दिये गये हैं। तांबे के खनन का कार्य अब नेशनल मिनरल डिवलपमेंट के हाथ में देने की योजना है। आशा है भविष्य में इस जिले के खनिज भंडार राजस्थान के भाग्य को पलटने मे सहायक होंगे।

टेढ़ी राह की लम्बी यात्रा

अलवर में औद्योगिक-प्रगति की कहानी एक टेढी राह पर निराशापूर्ण लम्बी यात्रा की कहानी है, एक ऐसी यात्रा की कहानी है जिसमें प्रगतिरूपी पथिक टेढ़ी राह पर जितना आगे बढ़ा है, सफलता की मंजिल उतनी ही दूर होती गई है। यह निरन्तर बढ़ती सफलता की कहानी नहीं है, निरन्तर बढ़ती असफलता की कहानी है स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो यह कि अलवर में उद्योगों की यात्रा उन्नति की ओर नही, अवनति की ओर रही है। आजादी से पहले राजाओं की उपेक्षा और अंग्रेज सरकार द्वारा देशी उद्योगों की कीमत पर विलायती व्यापार को बढ़ावा देना इसका कारण रहा। दुर्भाग्य से आजादी के बाद भी उपेक्षा की इस कहानी में कोई परिवर्तन दिखाई नही दिया है।

इतिहास के पृष्ठ—

१८७८ ई० मे लिखित 'वाकये राजपूताने' नामक इतिहास ग्रन्थ मे लिखा गया है। "यहाँ (अलवर क्षेत्र मे) कोयले की लकडी बहुत मिलती है। १८७१-७२ मे ४ लाख, १० हजार मन कोयला मादरी यानी लोहे की भट्टियो के खर्च मे काम आया। इन पहाडो मे मादनी (खान) पैदावार बहुत होती है, अहनी बूरी (लोहे का खनिज) तो जमीन से बहुत करीब मिलती है। दुकाने तांबें की चान्द साल से जारी हैं, मगर इनसे फायदा कम होता है। चादी, सीसा, गधक भी कलील मिकदार (कम मात्रा) मे मिलता है, मगर उनके निकलने से कुछ फायदा नहीं। मौजा भिरी, परगना प्रतापगढ मे सफेद सगमरमर की खान है" इसके अलावा इस किताब मे और भी बहुत से उद्योग धन्धों का जिक्र किया गया है। मालाखेडा मे बर्फ का कारखाना है, छरोली, करहटा, खोरा मलावली, बूँटोली मे पत्थर की चक्की, कोडे आदि बनते हैं। कमालपुर, देवला, लक्ष्मणगढ, खेडली मे नमक बनता है। पृथ्वीपुरा, अकबरपुर, बालेटा, खोह बहादरी हमीरपुर मे लोहा गलाने की भट्टियाँ हैं, राजगढ मे टक्साल है जहा चाँदी और तांबें के सिक्के बनते हैं, मांचाडी मे बन्दूक बनती है, राजगढ मे लोहे की खान है और खोह दरीबा मे तांबे की, बानसूर मे अभ्रक की खान है, मांडन मे सलेट का पत्थर मिलता है, तिजारा मे कागज बढिया बनता है, राजगढ में चूना भी बनता है और लक्डी का काम भी होता है, तिजारा, और अलवर मे चमडे का काम बढा हुआ है, टपूकडा, तिजारा, कठूमर गल्ला-व्यापार की मडी है, बसई मे खजूर की चटाई बनती है, सालेटा मे मकान मे काम आने वाली पत्थर की पट्टियो की खान है आदि आदि। लोहे बनाने के कारखानो के विषय मे लिखा गया है जाबजा केट के ढेर होने से साबित है कि किसी जमाने मे लोहा बहुत तैयार होता था मगर अब सिर्फ ३० छोटी मादरी जारी है जिनमे पूरे साल मे १५ हजार मन लोहा तैयार होता है मगर अब अग्रेजी लोहा बक्सूत आने से लोहे की कीमत दिन ब दिन कम होती जाती है, शायद आखिर मे कारखाने बन्द हो जायें।

इसके अगले वर्ष ही राजा मगलसिंह ने अग्रेज सरकार से एक समझौता किया जिसके अनुसार अलवर रियासत मे नमक लगाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और बाहर से आने वाली अफीम तथा स्प्रिट पर चु गी खतम करदी गई।

१८८२ ई० मे बूँटोली (तहसील लक्ष्मणगढ)मे हाथरस के व्यापारियो की नील की कोठी व्यापार चला रही थी। १८६५ ई० मे उसने ३८ क्वाटरवेट नील कलकत्ता भेजी थी। अलवर के पूर्व मे कुछ मील पर जमीन से निकले हुए लवणो से घटिया शीशा बनाने का कारखाना था। बीसवी शताब्दी के आरम्भ होने से १६ वर्ष पहले अर्थात् १८८४ ई० मे अलवर मे भाप से चलने वाला पहला कारखाना भी लग गया था, यह सूई का पेच था जो आज के रेलवे स्टेशन के पास लगा था।

बीसवीं शताब्दी शुरू होने के बाद अलवर मे औद्योगिक प्रगति या अवनति की रफ्तार कितनी तेज रही, इसकी एक कसौटी जनसख्या की स्थिति भी हो सकती है। जनसख्या के

विशेषज्ञ बढ़ती जनसंख्या को बढ़ती सम्पन्नता का प्रतीक मानते हैं और घटती जनसंख्या को बढ़ती दरिद्रता का। इस सन्दर्भ में अलवर की जनसंख्या का विकास देखा जाये तो मालूम होगा कि—

१८९१ ई० में अलवर राज्य की कुल आबादी ७,६०, ४४६ थी, १९०१ ई० में यह बढ़कर ८, २८, ८८८ हुई। मगर इसके बाद १९११ ई० में आबादी घटकर ७,९१,६८८ रह गई, १९२१ ई० में आबादी और भी घटकर ७,०१,१५४ रह गई, १९३१ ई० में आबादी थोड़ी बढ़ी मगर १९०१ ई० से फिर लगभग ८०,००० कम रही।

सम्भावनाओं का प्रतिवेदन—

बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक के आरम्भ में राज्य सरकार ने पंजाब राज्य के उद्योग-धन्धों के निदेशक श्री रामलाल को राज्य की औद्योगिक उन्नति की सम्भावनाओं पर एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिये आमन्त्रित किया। १९३३ ई० में उन्होंने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने प्रतिवेदन में बतलाया कि आयात-निर्यात के भारी करों से व्यापार मर चुका है और नये उद्योग-धन्धों की शुरूआत के लिये जनता में प्रशासन की दृढ़ता एवं विश्वसनीयता के प्रति आस्था उत्पन्न होना जरूरी है। हालत यह है कि जमींदार जमीन में खेती करने से अच्छा जमीन को परती छोड़ देना समझते हैं। १९२३-२४ ई० की सेंटिलमेन्ट रिर्पोट में अलवर राज्य की आमदनी कृषि के अतिरिक्त ७३९४०८ रु० बताई गई थी उन्होने इसमें सन्देह किया और इसे काल्पनिक बताया। तिजारा का कागज उद्योग और नील उद्योग तब तक बन्द हो चुके थे। राज्य के उद्योगों के रूप में उन्होने अजरका और खेड़ली की कपास मिल तथा कुछ तेल के कोलतओं का ही उल्लेख किया।

अपने प्रतिवेदन में ही श्री रामलाल ने अनेक सुझाव भी दिये। उन्होंने रूई उद्योग बढ़ाने पर जोर दिया (१९२५-२६ में रुई का उत्पादन ३३९४५ मन था, ६ वर्ष बाद १९३१-३२ में यह सिर्फ २०७० मन रह गया था) और बांधों के पास की जमीन पर गन्ना बोने की सिफारिश की जिससे गुड़-खांडसारी उद्योग का विकास हो सके। थानागाजी को इसके लिये उन्होंने विशेष उपयुक्त बतलाया। बांधों के पास उन्होंने शहतूत के बाग लगाने का सुझाव दिया जिससे रेशम के कीड़े पाले जा सके और शहतूत की लकड़ी से खेलकूद का सामान भी बनाया जा सके। उनके अनुसार पंजाब की अपेक्षा अलवर में लाख उद्योग के विकास की अधिक सम्भावनायें थी क्योंकि अलवर के वनों में ढ़ाक, बेरी, खैर, पीपल, कीकर पर लाख के कीड़े आसानी से पाले जा सकते हैं। सरसों के निर्यात की जगह उन्होने अलवर में ही तेल उद्योग के विकास की सलाह दी। तेल उद्योग के साथ घटिया तेल के उपयोग से साबुन-उद्योग का विकास भी हो सकता था। बेराइट के उपयोग से पेन्ट बनाने का कारखाना और केओलिन, फेल्सपार, क्वार्टज आदि के उपयोग से पॉटरी का कारखाना चालू करने का सुझाव भी उन्होंने दिया।

प्रगति के प्रयत्न—

मगर उनके प्रतिवेदन के बाद एक दशक तक अलवर में औद्योगिक विकास के लिये राज्य की ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इस दशक में अलवर में कुछ कल-कारखाने खुले

जरूर पर उनका श्रेय राज्य शासन को नही था। १६२८-२६ ई० में श्री काशीराम गुप्ता ने मगतबांस (तहसील मुँडावर) मे स्लेट पत्थर की खान में कार्य शुरू किया। १६३३-३४ ई० मे आज की तहसील के पीछे श्री जादूराम ने पहली तेल मिल लगाई। रामनारायण ब्रादर्स ने १६३५-३६ ई० मे स्टोन चिप्स और पीली मिट्टी पीसने का कारखाना शुरू किया। १६३७ ई० मे हीरा आइस फैक्टरी शुरू हुई। चार वर्ष बाद हीरा आइस फैक्टरी के साथ हीरा आइल मिल भी काम करने लगी। दो वर्ष बाद एक और बडी तेल मिल रानीवाला आयल मिल बनी। १६४०-४१ मे अलवर के रेलवे स्टेशन पर खनिज-पदार्थ पीसने का पहला आधुनिक कारखाना लगा जो आज गोपाल मिनरल्स के नाम से चल रहा है। हीरा आइस मिल और रानीवाला आइल मिल अब काल के पर्दे के पीछे छुप चुकी हैं।

अलवर राज्य की ओर से औद्योगिक उन्नति का पहला महत्वपूर्ण प्रयत्न १६४३ ई० मे हुआ। उस समय श्री बापना अलवर राज्य के प्रधानमंत्री थे। वे औद्योगिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान देते थे। रेलवे स्टेशन के आगे फैली हुई जमीन पर उन्होने एक औद्योगिक बस्ती की स्थापना की। इस औद्योगिक बस्ती मे रामनारायण ब्रादर्स को १५० बीघा जमीन बहुत कम दाम पर दी गई। रामनारायण ब्रादर्स ने ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी के रूप मे अलवर पेन्ट एव वार्निश फैक्टरी स्थापित की। शीघ्र ही औद्योगिक बस्ती में एक सूती मिल की इमारत भी बनने लगी। कुछ दिनो बाद पोसलिन फैक्टरी भी काम करने लगी और होजरी तथा माचिस मिल भी चालू हो गई। मगर श्री बापना के जाने के साथ अलवर की औद्योगिक उन्नति का *सपना भी चला गया। उनके जाने के बाद सूती मिल की अधूरी इमारत अधूरी ही* रह गई, पेन्ट वार्निश फैक्टरी असफल हो गई और धीरे धीरे दूसरी फैक्ट्रियाँ भी बन्द होने लगी। पेन्ट और वार्निश फैक्ट्री का अब भी चल रही है। मगर दूसरी फैक्ट्रियो के सिर्फ खण्डहर अतीत की कहानी कहने को रह गये है। और अब तो खण्डहर भी धीरे-धीरे साफ होते जा रहे हैं क्योंकि उनकी जगह राज्य सरकार ने बेकन फैक्टरी की विशाल इमारत बनवा दी है।

आजादी के उपरान्त—

मत्स्य शासन ने अलवर की पहली औद्योगिक बस्ती को समाप्त कर दिया। राजस्थान मे सम्मिलित होने के दो वर्ष बाद १६५२ ई० मे अलवर जिले मे कुल ७ औद्योगिक इकाइया थी। ८ वर्ष बाद १६६०-६१ ई० मे इनकी सख्या बढकर १३ हुई अर्थात् ८ वर्षो में ६ औद्योगिक इकाइयाँ अलवर मे बढी। १६६०-६१ ई० के बाद अलवर मे एक *बार फिर औद्योगिक बस्ती बनाने की घोषणा* की गई मगर परिणाम पहले जैसा रहा। सूती मिल का लाइसेन्स मिला और तीन वर्ष तक पडा रहा। अन्त में वह मिल भीलवाडा मे स्थापित हो गई क्योंकि अलवर मे बिजली-शक्ति का पूरा प्रबन्ध नही था और न रेल की बडी लाइन थी। अलवर राज्य मे रेल की लाइन पहली बार १८७५ ई० में आई थी। लगभग एक शताब्दी के बाद भी वह लाइन उसी रूप मे चली *आ* रही है। *आवश्यक बिजली और* रेल की बडी लाइन का अभाव अलवर के औद्योगिक पिछडेपन के दो प्रमुख कारण हैं। कुछ

वर्षो बाद अलवर की औद्योगिक बस्ती दूसरी बार भी समाप्त कर दी गई और अब औद्योगिक बस्ती के क्षेत्र में पोलोटेक्निक कॉलेज कार्य कर रहा है।

जनसम्पर्क विभाग के अनुसार १९६६ ई० में अलवर में ८० औद्योगिक इकाइयां चल रही थी जिनमें ४३ तेल निकालने की इकाइयाँ थी। अन्य इकाइयों में कुछ लोहे के बक्स बनाने की इकाइयां, कुछ रसायनिक संस्थान और कुछ खनिज संस्थान थे। राजकीय क्षेत्र में अलवर जिले को कुक्कट शाला और शूकर प्रजनन केन्द्र मिला है। अब शूकर-मांस तैयार करने के लिये बेकन फैक्ट्री भी बन रही है। रामनारायण ब्रादर्स का खनिज पीसने का पुराना कारखाना अब भी चल रहा है। १९५७-५८ ई० से रामनारायण ब्रादर्स वर्फ का कारखाना भी चला रहे हैं। इसके अतिरिक्त वे अन्य अनेक कार्य भी करते है जिनमें प्रमुख हैं डी. डी. टी. का पाउडर बनाना। गोपाल मिनरल्स के नये स्वामी अपने कारखाने के विकास के लिये प्रयत्नशील हैं। हीरानाथ बाबाजी के स्थान के सामने भारत मेटल वर्क्स चल रहा है। उससे आगे राजस्थान स्टोन इण्डस्ट्रीज में संगमरमर की चिप्स और चिप्स का पाउडर बनता है। पुराने औद्योगिक क्षेत्र में अलवर केमीकल इण्डस्ट्रीज चल रही है जिसमें बेरियम से हैवी केमीकल्स-पदार्थ बनाये जाते हैं। मगर सैनेटरी के काम में आने वाली चीजें बनाने वाला कारखाना आर. सी. आई. (राजस्थान केमीकल इण्डस्ट्रीज) इन दिनों बन्द है। औद्योगिक इकाइयों के नाम पर अलवर में तेल निकालने की इकाइयाँ प्रमुख हैं। उनके मालिक उन्हें मिल कहते हैं किन्तु अधिकतर के पास दो या तीन से अधिक कोल्हू नहीं है। तेल निकालने की चालू बड़ी इकाई सिर्फ पड़ाव की चक्की मोहल्ले में स्थित श्री निवास आयल मिल है।

अन्त में—

अलवर के इस औद्योगिक पिछड़ेपन के अनेक कारण दिये जा सकते हैं, अलवर में औद्योगिक उन्नति का कोई दृढ़ आधार नही है। पर्याप्त बिजली नहीं है, रेल की बड़ी लाइन नहीं है, पर्याप्त कच्चा माल नहीं है, बहुत तरह के खनिज मिलते हैं मगर पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते हैं, पूंजी का अभाव है आदि। मगर इन सब के ऊपर जो कारण है वह है, उन व्यक्तियों द्वारा जिले के औद्योगिक विकास के प्रति उदासीनता जो जिले में औद्योगिक उन्नति का दृढ़ आधार निर्माण करने में समर्थ हो सकते थे और हो सकते हैं। यही कारण है कि अलवर में किसी बड़े उद्योग के स्थापित होने की चर्चा तो बार-बार उठती है मगर वह चर्चा चर्चा ही होकर रह जाती है, हकीकत नहीं बन पाती है।

हरा-भरा फैला है आँचल

कृषि अलवर जिले का मुख्यतम उद्योग है। लाभदायक रूप से कार्यरत आबादी का ८० प्रतिशत भाग केवल कृषि में लगा हुआ है और जिले की आय का लगभग दो तिहाई भाग कृषि से प्राप्त होता है। खेती बाड़ी की दृष्टि से राजस्थान में अलवर की स्थिति अनुकूल है। साधारण वर्षों में जिले में फसलों के लिये वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है। इसकी भूमि उपजाऊ दोमट की बनी है, पश्चिमी भाग में बालू के दोमट और पूर्वी भाग में चिकनी मिट्टी के दोमट

पाये जाते हैं। जिले मे भूमिगत जल-सग्रह पर्याप्त मात्रा मे प्रनीत होता है। यदि इस सग्रह को उचित प्रकार से निकाला जाये तो कृषि सम्बन्धित सम्पन्नता प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त कई नदी नालो का पानी जो अलवर की पहाडियो से निकलता है, सिचाई के लिये तालाबो मे अवरुद्ध किया जा सकता है।

भूमि का वर्गीकरण—

भूमि के विभिन्न उपयोगो मे काश्तकारी अलवर जिले का प्राय मुख्यतम उपयोग है। जिले के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का लगभग दो तिहाई जेरे काश्त है, इसमे लगभग २५ प्रतिशत भूमि मे प्रति वर्ष दो फसलें होती हैं। काश्त के योग्य कुल भूमि का केवल थोडा सा भाग ही परती पडा हुआ है। वर्तमान समय मे इसको मवेशियो की चराई के काम मे लाया जाता है। चराई की जमीन और परती जमीन सारे जिला क्षेत्र के लगभग १० प्रतिशत भाग मे फैली हुई है। फिर भी इस बात की ओर सकेत करना जरूरी है कि काश्त के योग्य परन्तु परती पडी समस्त भूमि को जेरे काश्त नहीं लाया जा सकता। इसमे से कुछ भूमि निस्सन्देह काश्त के लायक नही है। वन अलवर की पहाडियो मे ही सीमित हैं। बजर एव अकृषि कार्यों मे काम आने वाली भूमि जिले के कुल क्षेत्रफल का २५ प्रतिशत भाग है। अरावली के अनेक चट्टानी टीले जो जिले के दक्षिण से उत्तर के पार पाये जाते हैं, बजर भूमि के अधिकाश भाग का कारण हैं। थानागाजी, राजगढ व बानसूर की तहसीलो मे, जहाँ अरावली के टीले काफी मात्रा मे भूमि को घेरे हुये हैं, बजर भूमि का अधिकतर भाग पाया जाता है। तथापि ये पहाडिया वर्षा ऋतु मे अस्थायी रूप से चरागाहो का काम देती हैं और ईंधन प्राप्ति का साधन भी हैं। इन टीलों को ज्यादा अच्छे उपयोग मे लाया जा सकता है यदि इनको वनो के लिये सुरक्षित किया जाये जैसा कि सरिस्का के आसपास की पहाडियो को किया गया है।

सिचाई—

अलवर जिले मे फसलें प्राय बारानी भूमि पर पैदा की जाती है। बाजरा, ज्वार, चना, सरसो और जौ जैसी फसलो को साधारणत सिचाई की आवश्यकता नही होती है। परन्तु वर्षा पर निर्भरता सन्देहयुक्त है, क्योकि अलवर जिले मे एक वर्ष से दूसरे वर्ष वर्षा की मात्रा मे काफी परिवर्तन हो जाता है। सिचाई के पानी की सुनिश्चित प्राप्ति जिले की कृषि की मुख्य आवश्यकता है। आजकल शुद्ध काश्तशुदा क्षेत्रफल का केवल १२ प्रतिशत भाग ही सिंचित क्षेत्र है।

'अलवर जिले मे सिचाई के प्रमुख साधन कुएँ, नहरें और तालाब है। कुएँ सिचाई के प्राय मुख्यतम साधन है। सिंचित क्षेत्रफल के ६४ प्रतिशत भाग की सिचाई कुओं से होती है। इसके बाद नहरो का स्थान है—छोटी-छोटी नहरें जो मगलासर, सिलीसेढ, और जयसमद के छोटे-छोटे बाधो से निकाली गयी हैं। इनसे सिंचित क्षेत्रफल के ३५ प्रतिशत भाग को पानी दिया जाता है। शेष सिंचित भूमि तालाबो से जल प्राप्त करती है।

सिंचाई-विस्तार के लिये अलवर जिले में काफी सम्भावना है। भूमिगत जल-संग्रह को कूओं तथा पम्पसेट सम्पन्न ट्यूब-वैल्स से निकाला जा सकता है। जिले में सिंचाई-विस्तार के लिये नलकूप तथा ट्यूब वैलस श्रेष्ठतर विकल्प हैं, क्योंकि वे दूसरे साधनों की अपेक्षा अधिक सस्ते व क्षमतापूर्ण सिंचाई साधन प्रमाणित होंगे। यदि कृपकों को कुछ आर्थिक सहायता दी जाये तो कूप-सिंचाई की गति तेज हो सकती है। जिले के नदी-नालों पर बांध बांधकर उनके बाढ़ के पानी को भी सिंचाई के लिये संचित किया जा सकता है।

क्षेत्रफल तथा फसलों की पैदावार—

अलवर जिले में कम उष्ण तथा कम नम जलवायु के कारण खेतों में कई प्रकार की फसलें उगाई जा सकती हैं। जिले मे पैदा की जाने वाली फसलों में मुख्य चना, बाजरा, सरसों, गेहूं, ज्वार तथा जौ हैं। जिले की कोई ६ लाख हेक्टर भूमि में कुल मिलाकर सारी फसलें पैदा की जाती हैं। चना प्रमुख फसल है, यह काश्त शुदा क्षेत्रफल के २४ प्रतिशत भाग में बोया जाता है। दूसरा स्थान बाजरा को प्राप्त है जो जेरेकाश्त क्षेत्रफल के २१ प्रतिशत भाग में पैदा किया जाता है। इसके बाद सरसों का स्थान है। यह जेरेकाश्त क्षेत्रफल के लगभग १८ प्रतिशत भाग में उत्पन्न किया जाता है, मगर आर्थिक दृष्टि से सरसों, चने या बाजरे से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिले में जो अन्य फसलें पैदा की जाती हैं, वे है, मूंग, उड़द, मोंठ, आलू, तम्बाकू, मिर्च, गन्ना इत्यादि। ये कुल मिलाकर जेरेकाश्त क्षेत्रफल के कोई १० प्रतिशत भाग में पैदा होती है।

चना जिले की प्रमुख फसल है। यह औसतन १३०००० हेक्टर भूमि पर पैदा किया जाता है और इसकी सम्पूर्ण उपज ७०००० टन से अधिक है। यह प्रायः बारानी भूमि पर उपजाया जाता है—साधरणतः ऐसे खेतों में जहां से खरीफ की फसलें काट ली गई हों। जिले के पूर्वी भाग में चना डहरी भूमि पर भी उत्पन्न किया जाता है जो वर्षा ऋतु में जेरेआब रहती है। जब भूमि वर्षा ऋतु के उपरान्त पानी से निकल आती है तो इस पर शीघ्रता से हल चलाये जाते हैं और चना बो दिया जाता है।

जिले में बाजरा की फसल को दूसरा स्थान प्राप्त है। यह १२०००० हेक्टर भूमि में उपजाया जाता है। बाजरा की औसतन वार्षिक उपज ३५००० टन है। यह मुख्यतः रेतीली भूमि पर पैदा किया जाता है और इसी कारण से यह जिले की पश्चिमी तहसीलों की प्रमुख है, जहां रेतीली दोमर भूमि पायी जाती है।

सरसों की काश्त के लिये अलवर विख्यात है। यह एक लाख हेक्टर से भी अधिक भूमि पर पैदा किया जाता है। परन्तु सरसों की काश्त एक जुआ है। सरसों का पौधा बहुत कोमल होता है। कीट व व्याधियां इसका शिकार बहुत करती हैं और पाले का इस पर बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है। यदि सरसों की फसल प्रकृति-प्रकोप से बच जाए तो इसका कुल उत्पादन ५०००० टन से अधिक हो सकता है। ऐसे वर्षों में यह कृपकों के लिये सम्पन्नता का कारण बनती है। यदि सरसों की फसल कीट आक्रान्त हो जाये अथवा इसे पाला मार जाये तो इसकी

उपज नगण्य हो सकती है। फिर भी अलवर की स्थिति सरसो की काश्त के लिये अनुकूल है। इसकी शरद ऋतु हरियाणा तथा पजाब की भाति ठडी नही है और न ही दक्षिणी राजस्थान की भाँति गरम है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी-पश्चिमी एव उत्तरी-पूर्वी दिशा मे फैली अरावली की श्रेणिया सरसो की फसल को उत्तरी-पश्चिमी ठडी हवाओ से सुरक्षित रखती हैं। भौतिक वातावरण के इन कारणो से अलवर जिले मे सरसो की खेती व्यापक रूप से की जाती है।

सिचाई-प्राप्त भूमि पर गेहू मुख्तम उपज है। ४०००० हेक्टर से कुछ अधिक भूमि पर इसका उत्पादन किया जाता है। गेहू की उपज अन्य बहुत सी फसलो से अधिक होती है। इसकी औसतन कुल उपज ४०००० टन है। यदि सिचाई का विस्तार हो जाये तो अलवर जिले मे गेहू के जेरेकाश्त क्षेत्रफल को भी बढाया जा सकता है।

जौ जिले मे अधिक उत्पादन देने वाली एक दूसरी फसल है। यह ३५००० हेक्टर भूमि मे उगायी जाती है। जौ की औसतन उपज तकरीबन ४०००० टन होती है। जौ प्राय बारानी भूमि मे पैदा किया जाता है जो वर्षा ऋतु मे बिना काश्त के पडी रहती है। ज्वार भारी दरभर भूमि पर उगायी जाने वाली खरीफ की मुख्य फसल है। यह अनाज एव चारा दोनो कामो के लिये उगायी जाती है। ज्वार की काश्त लगभग ४०००० हेक्टर भूमि मे होती है, परन्तु उपज केवल १२००० टन की ही है। आलू, मिर्चे और अन्य साग-सब्जियाँ जिले के सभी कस्बो की नजदीक ही भूमि पर की प्राय उगायी जाती हैं। केवल एक हजार हेक्टर भूमि इन सबके जेरेकाश्त हैं।

अलवर जिले को इस बात का गौरव है कि उसने पहली पचवर्षीय योजना मे खाद्यान उत्पादन मे ४१ प्रतिशत वृद्धि की और किसानो ने अपनी सूझबूझ का परिचय दिया। सन् १९५५-५६ मे जिले का खाद्यान उत्पादन १ लाख २६ हजार टन था। १९६०-६१ मे यह उत्पादन बढकर १ लाख ८२ हजार टन हो गया। तृतीय पच वर्षीय योजना मे कृषि विकास के प्रयत्नो मे और भी तेजी आई। नये सिचाई के कायक्रम हाथ मे लिये गये, सघन कृषि योजना के अन्तर्गत कृषि उत्पादन बढाने के तेजी से प्रयत्न किये गये और तीसरी योजना के प्रारम्भ मे इस योजना काल के अन्तर्गत करीब ४२ प्रतिशत कृषि उत्पादन बढाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये विभिन्न योजनाओं को सपादित करने हेतु २०.९२ लाख रुपये का प्रावधान रक्खा गया था। हालांकि तीसरी पचवर्षीय योजना काल अलवर ही नही सारे राजस्थान के लिये असन्तुलित मौसम और कम उपलब्धियो का समय माना जाता है पर फिर भी अलवर जिले मे इस योजना काल मे भी कृषि उत्पादन मे समुचित वृद्धि हुई।

परिशिष्ट

रेखांकित तिथियां—

१७७५ ई०	महाराजा प्रतापसिंह द्वारा अलवर दुर्ग पर अधिकार; अलवर राज्य की स्थापना ।
१७९१ ई०	महाराजा प्रतापसिंह का देहावसान ।
१८०३ ई०	लासवाड़ी युद्ध; अलवर राज्य और ईस्ट इंडिया कम्पनी के बीच सन्धि; अलवर राज्य को नीमराणा, मुंडावर, माढ़न, बीजवाड़ के परगने मिले ।
१८०५ ई०	अलवर राज्य को ईस्ट इंडिया कम्पनी से तिजारा, टपूकड़ा, कठूमर के परगने मिले ।
१८१५-१८५७ ई०	महाराजा विनयसिंह का शासन काल ।
१८२६ ई०	अलवर राज्य का विभाजन; तिजारा के अलग राज्य की स्थापना ।
१८४२ ई०	अलवर में पहले सरकारी मदरसे की स्थापना ।
१८४४ ई०	सीलीसेढ़ और महल का निर्माण ।
१८४५ ई०	राजा बलवन्तसिंह के नि:संतान मरने पर तिजारा का अलवर राज्य में पुन: विलय ।
१८५७-१८७४ ई०	महाराजा शिवदानसिंह का शासन काल ।
१८५९ ई०	पोलिटिकल एजेन्ट के रूप में कर्नल एम्पी द्वारा शासन-गर्व सँभालना ।
१८७० ई०	मेजर केड़ल पोलिटिकल एजेन्ट बनकर आये; शासन-संचालन के लिये कौंसिल का निर्माण; केड़ल गंज की स्थापना ।
१८७१ ई०	अलवर शहर में नामजद नगरपालिका की स्थापना ।
१८७४-१८९२ ई०	महाराजा मंगलसिंह का शासन काल ।
१८७५ ई०	अलवर राज्य में रेल का आगमन ।
१८९२-१९३३ ई०	महाराजा जयसिंह का शासन काल ।
१८९२-१९०३ ई०	कौंसिल का शासन ।
१९०३ ई०	महाराजा जयसिंह को शासनाधिकार की प्राप्ति ।
१९०८ ई०	अलवर राज्य की राज्य-भाषा हिन्दी घोषित की गई ।
१९२५ ई०	नीमराणा में आन्दोलन; राज्य द्वारा सख्ती से दमन ।
१९२८ ई०	नामजद पंचायत बोर्ड और टाउन कमेटियों की स्थापना ।
१९३० ई०	राजर्षि इन्टर कॉलेज की स्थापना ।
१९३२-१९३३ ई०	मेवात में भयानक आन्दोलन ।

१९३३ ई०	महाराजा जयसिंह अंग्रेजी सरकार द्वारा निष्कासित, राज्य मे पोलिटिकल एजेन्ट की नियुक्ति ।
१९३७ ई०	महाराजा जयसिंह की पेरिस मे मृत्यु ।
१९३७-४८ ई०	महाराजा तेजसिंह का शासनकाल ।
१९३७ ई०	अलवर मे कांग्रेस की स्थापना ।
१९३८-३९ ई०	शिक्षा शुल्क विरोधी आन्दोलन ।
१९४० ई०	अलवर राज्य प्रजामडल का शासन द्वारा पजीकरण ।
१९४३ ई०	अलवर मे राजस्थान के विभिन्न प्रजामडलो के कार्यकर्त्ताओ का सम्मेलन ।
१९४५ ई०	राजर्षि कॉलेज मे स्नातक कक्षाओ की शुरुआत ।
१९४६ ई०	प्रजामडल द्वारा उत्तरदायी शासन के लिये आन्दोलन ।
१९४७ ई०	साम्प्रदायिक अशान्ति, मेवा का निष्क्रमण और शरणार्थियो का आगमन ।
फरवरी १९४८ ई०	भारत सरकार द्वारा अलवर राज्य पर अधिकार ।
मार्च १९४८ ई०	मत्स्य सघ मे अलवर राज्य का विलीनीकरण ।
मार्च १९४९ ई०	राजस्थान मे मत्स्य सघ का विलीनीकरण ।
१९५० ई०	अलवर शहर मे वयस्क मताधिकार के आधार पर नगरपालिका के प्रथम चुनाव ।
१९५० ई०	शुल्क वृद्धि के विरोध मे विद्यार्थी आन्दोलन ।
१९५२ ई०	प्रथम आम चुनाव ।
१९५३ ई०	सवाई जमा के विरुद्ध किसान आन्दोलन ।
१९५४ ई०	अलवर शहर मे बेदखली के विरोध मे किसान-आन्दोलन ।
१९५४ ई०	नगरपालिका के चुनाव मे कांग्रेस की पहली बार पराजय ।
१९५७ ई०	विद्यार्थी आन्दोलन ।
१९५७ ई०	द्वितीय आम चुनाव ।
१९५८ ई०	किशनगढ मे बेदखली विरोधी आन्दोलन ।
१९६० ई०	अलवर जिले मे पचायतो के प्रथम आम चुनाव ।
१९६२ ई०	तृतीय आम चुनाव ।
१९६४ ई०	अलवर शहर मे विरोधी दलों द्वारा जिला राजनैतिक सम्मेलन का आयोजन ।
१९६६ ई०	लक्ष्मणगढ मे रूंध तोडो आन्दोलन ।
१९६७ ई०	चौथा आम चुनाव ।
१९६८ ई०	राजर्षि कॉलेज मे बीस वर्ष बाद पुन स्नातकोत्तर कक्षाओ का प्रारम्भ ।

सहायक ग्रंथ एवं पत्रिकाएँ

१. अलवर का भूगोल	...	आर० के० गुप्ता
२. अलवर राज्य	...	आर० के० गुप्ता
३. अलवर का इतिहास	...	पिनाकीलाल
४. राजर्षि अलवरेन्द्र	...	पिनाकीलाल
५. अलवर के साधु संत	...	पिनाकीलाल
६. अलवर एण्ड इट्स आर्ट ट्रेजर	...	हैण्डले
७. रूलर्स एण्ड चीफ्स ऑफ़ राजपूताना	...	हैण्डले
८. अलवर म्यूजियम	...	डॉ० सत्यप्रकाश
९. अलीबख्श का साहित्य	...	जीवनसिंह
१०. अरजंग तिजारा	...	मकड़भ थानवी
११. तवारीख मेवात	..	अबू मुहम्मद अब्दुलशकूर
१२. तवारीख फरिश्ता	...	मीर हसन
१३. मुरक्का अलवर	...	मकड़भ थानवी
१४. तवारीख अलवर	...	दीवान जयगोपालजी
१५. मुरक्का मेवात	...	शर्फुद्दीन अहमद
१६. नरूवंश दीपक	...	सेढमलजी
१७. चरणदास	...	डॉ त्रिलोकीनाथ दीक्षित
१८. वीर विनोद	...	श्यामलदास
१९. वाकाया राजपूताना	...	मुंशी ज्वालाप्रसाद
२०. राजस्थानी चित्रकला और कृष्ण काव्य		डॉ० जयसिंह नीरज
२१. राजस्थानी चित्रकला	...	रामगोपाल विजयवर्गीय
२२. म्यूरल्स ऑफ राजस्थान	...	मोहनलाल विजयवर्गीय
२३. साहित्यिकी	...	रमेशचन्द्र शर्मा
२४. राजपूताने का इतिहास—३	...	जगदीशसिंह गहलोत
२५. इण्डस्ट्रियल डिवलपमैण्ट इन अलवर स्टेट		
२६. प्रगतिशील अलवर—१९६६		
२७. अरावली—अलवर अंक		
२८. अलवर पत्रिका राजस्थान अंक		
२९. गजेटियर ऑफ़ अलवर	...	पी० डब्लू० पाउलट
३०. राजहंस—राजगढ़ स्कूल पत्रिका १९६६		
३१. तिजारा महाविद्यालय पत्रिका १९६६		
३२. नारायणपुर महाविद्यालय पत्रिका १९६७		

अलवर-साहित्य : ग्रन्थ-सूची

१	भक्तिसागर	चरणदास
२	श्री कृष्ण दानलीला	राजा बख्तावरसिंह
३	बखत विलास	भोगीलाल
४	साहित्य सुधाकर	भोगीलाल
५	शृंगार तरंगिणी	मुरलीधर भट्ट
६	वाणी भूषण	उमेदराम
७	प्रताप रासो	खुलास कवि
८	विजय संग्राम	खुमान
९	रूप रागावली	पूर्णमल भट्ट
१०	राम रास	रूपदेवी
११	समर विलास	चंद कवि
१२	काव्य कुतुहल	चतुरलाल
१३	वृत्त बोधिनी	चतुरलाल
१४	वृत्तालंकार मंजरी	चतुरलाल
१५	रसिक रंजनी	चतुरलाल
१६	पद्य सारोद्धार	चतुरलाल
१७	वृत्त रत्नावली	चतुरलाल
१८	विनय प्रकाश	हरिनाथ
१९	राजश्री दूषण भूषण वर्णन	हरिनाथ
१०	विनय विलास	हरिनाथ
२१	शिवदान चन्द्रिका	मान कवि
२२	विनय प्रकाश	मान कवि
२३	वनवृत विलास	जयकृष्ण
२४	शिवदान-विनोद	चन्द्रशेखर वाजपेयी
२५	शिवदान प्रकाश	इन्द्र कंवर
२६	वृंदावन शतक	शिवबक्स
२७	हंस हिंडोल	हंसास्वरूप
२८	आत्म बोध	रणजीतसिंह बेनामी
२९	अंजुमने वहशत	राजा जयसिंह
३०	चमने वहशत	राजा जयसिंह

३१.	राधिका शतक	...	जयदेव
३२.	वर्ण माला	...	जयदेव
३३.	यमक पच्चीसी	...	जयदेव
३४.	बजरंग विनय	...	जयदेव
३५.	जय विनोद	...	महेशचन्द्र जोशी
३६.	नीराजन	...	रामकुमार गुप्ता
३७.	तारक छाया	...	लक्ष्मण त्रिपाठी
३८.	युग धर्म	...	हरिनारायण किंकर
३९.	जीवन के मंत्र	...	हरिनारायण किंकर
४०.	विषाद योग	...	नाथूराम शर्मा भारद्वाज
४१.	महाभियान	...	रामलाल सावल
४२.	तैरते सपने : टूटा शीशा	...	विगन सिन्हा
४३.	विभावरी	...	कमलेश जोशी
४४.	नील जल सोई परछाइयाँ	...	जयसिंह नीरज
४५.	हमारे काव्यकार	...	गुलजारीलाल जैन
४६.	धूप भरी सुबह	...	जुगमन्दिर तायल
४७.	रोशनी का रथ	...	जुगमन्दिर तायल
४८.	सूरज सब देखता है	...	जुगमन्दिर तायल
४९.	धरती हँस उठी	...	जुगमन्दिर तायल
५०.	युग पुरुष की विदा पर	...	भागीरथ भार्गव
५१.	उत्सव-विलास	...	युवराज श्री प्रतापसिंह
५२.	नित्य-विलास	...	युवराज श्री प्रतापसिंह
५३.	साहित्यिकी—१	...	रमेशचन्द्र शर्मा
५४.	साहित्यिकी—२	...	जयसिंह नीरज
५५.	विजय संग्राम	...	सुमाल कवि
५६.	विनय प्रकाश	...	मानसिंह चन्द्रावत